मराठाकालीन गुजरात

(अलेक्जेण्डर किन्लॉक फार्ब्स रचित रासमाला का हिन्दी अनुवाद)

अनुवादक एवं टिप्पणी लेखक
गोपालनारायण बहुरा

सम्पादिका
डॉ. (श्रीमति) चन्द्रमणि सिंह

प्रकाशक
पब्लिकेशन स्कीम
जयपुर इन्दौर

प्रकाशक :
पब्लिकेशन स्कीम
57, मिश्रराजाजी का रास्ता
जयपुर-302001

ब्रांच :
पालदा, साजन नगर, इन्दौर

प्रथम संस्करण : 1985
मूल्य : 75 रुपये

वितरक :
शरण बुक डिपो
गलता मार्ग, जयपुर-302003
फोन : 44105

मुद्रक :
प्रद्युम्न कुमार शर्मा
बालचन्द्र यन्त्रालय
दुर्गापुरा रोड, जयपुर-302015

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

विषयानुक्रम

अनुवादकीय

आमुख

प्रकरण पहला

गुजरात मे मरहठो का आगमन, अहमदाबाद पर अधिकार 1–12

प्रकरण दूसरा

गुजरात मे ब्रिटिश का आगमन 13–23

प्रकरण तीसरा

आनन्दराव गायकवाड 24–32

प्रकरण चौथा

मल्हारराव गायकवाड़ 33–44

प्रकरण पाँचवाँ

काठियावाड़ की मुल्कगीरी 45–53

प्रकरण छठा

बाघेल–धोलका के कसबाती–झाला 54–70

प्रकरण सातवाँ

धोलेरा के चुडासमा–गोहिल 71–97

प्रकरण आठवाँ

बहुचराजी–चुंवाल 98–118

विशेष टिप्पणी 119–122

प्रकरण नवाँ

महीकाँठा 123–130

प्रकरण दसवाँ
ईडर के महाराजा आनन्दसिंह–शिवसिंह–
भवानीसिंह एवं गम्भीरसिंह 131–151
प्रकरण ग्यारहवाँ
दाँता 152–172
प्रकरण बारहवाँ
ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह (1) 173–192
प्रकरण तेरहवाँ
ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह (2) 193–202
प्रकरण चौदहवाँ
ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह (3) 203–217
प्रकरण पन्द्रहवाँ
महीकाँठा का प्रबन्ध 218–236
अनुक्रमणिका 237–257



पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

अनुवादकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'मरहठा कालीन गुजरात' वास्तव में अलेक्जेण्डर किन्लॉक फॉर्ब्स लिखित गुजरात के इतिहास 'रासमाला' के तीसरे भाग का हिन्दी अनुवाद है। विविध स्रोतों से जुटाकर प्रासंगिक टिप्पणियाँ भी इसमें संदृब्ध की गई है जैसा कि प्रथम दो भागों मे हुआ है। दूसरे भाग का प्रकाशन 1964 ई. मे सम्पन्न हो चुका था। इसके बाद ही मुझे पूर्व प्रकाशक महोदय ने भाग 3 और 4 का काम भी शीघ्र पूरा कर देने को कहा। तदनुसार मैंने 1965 मे यह कार्य समाप्त करके पाण्डुलिपि सौंप दी। तब से 1977 तक यह उनके पास पड़ी रही और उनको प्रकाशन के लिए अनुकूल समय नही मिला। अन्त मे 1977 के मध्य मे मुझ पर सदय होकर उन्होंने अपनी विवशता प्रकट करते हुए पाण्डुलिपि लौटा दी और मुझे अन्य प्रबन्ध करने को कह दिया।

सन् 1967 मे राज्य-सेवा से निवृत्त होने के बाद मैंने जयपुर के महाराजा सग्रहालय (अब म. सवाई मानसिह द्वि सग्रहालय) में कार्य करना आरम्भ कर दिया था। यहीं आकर श्री मंगल जी ने मुझे सामग्री लौटाई थी। उस समय मेरा स्वास्थ्य बहुत शिथिल चल रहा था अतः मैंने पाण्डुलिपि यहीं पड़ी रखी और मेरा मन इस ओर से खिन्न-सा हो गया। इसी बीच इस सग्रहालय की रजिस्ट्रार डॉ. (श्रीमति) चन्द्रमणि जी ने उत्सुकतावश इस पाण्डुलिपि को मेरे पास देखा और बड़े चाव से पढ़ डाला। तदनन्तर ये इसको छपवाने का अनुरोध करने लगी परन्तु मुझे कोई उत्साह नहीं हो रहा था। परन्तु डॉ. चन्द्रमणि कला के साथ-साथ विद्यानुरागिणी भी हैं। शायद इनको मेरे श्रम के व्यर्थ चले जाने का भी विचार हुआ। अतः इन्होने पाण्डुलिपि मे आवश्यक संशोधन आदि करके इसको टंकित भी करा लिया और प्रकाशन का अवसर ढूँढने में सचेष्ट रही। संयोग से हम लोगों को पब्लिकेशन स्कीम जयपुर के अधिष्ठाता सियाशरणजी नाटाणी मिल गये और इन्होंने पुस्तक का प्रकाशन करना स्वीकार कर लिया। मैंने अपनी ओर से सम्पूर्ण कार्य चन्द्रमणिजी पर ही छोड दिया। सौभाग्य से इन्ही दिनों मे मेरे परम आत्मीय गुरुकल्प मित्र स्व. पण्डित मोतीलालजी शास्त्री के पौत्र चि. प्रद्युम्न कुमारजी शर्मा भी सम्पर्क में आये और मुद्रण कार्य के लिए रुचिपूर्वक तत्पर हुए। इन्ही हितैषियों ने मिलकर यह पुस्तक छापकर तैयार कर दी है। पुस्तक की अनुक्रमणिका तैयार करने में मेरे मातुल पुत्र चि. रवीन्द्र (श्याम) ने सहायता की स्वास्थ्य शैथिल्य के कारण मुझसे इतना हो भी नही पाता अतः मैं इनका हृदय से आभारी हूँ और इनके लिए मंगलकामना करता हूँ।

गुजरात प्रान्त का चित्रोपम इतिहास विशेषताओं से भरा पड़ा है। रासमाला मे तो फॉर्ब्स साहब ने स्थानीय रास-साहित्य के आधार का साज सजाया जिससे यह सामान्य पाठक के लिए भी रस लेने योग्य बन गया है। अनुवाद मे उपलब्ध मूल रासो के पाठ और उनका हिन्दी रूपान्तर देने का प्रयास किया गया है। इसके द्वारा इतिहास के साथ-साथ साहित्यिक और भाषायी अध्ययन के लिए भी अवसर मिलता है। मूल पुस्तक, गुजराती अनुवाद तथा अन्य सन्दर्भों से भी टिप्पणियां सम्मिलित की गई हैं। इस भाग मे बहुत से दफ्तरी कागज-पत्र और राजाओ के आपसी पत्र-व्यवहार भी उद्धृत हैं। उनके अनुवाद की भाषा ने विषयानुकूल रूप ले लिया है तथा अनेक स्थानो पर राजस्थानी, गुजराती के ठेठ शब्दो का भी प्रयोग हो गया है अतः यदि पाठकों को इसमे भाषा के एकरूप न रहने का आभास हो तो क्षमा करेंगे।

इस पुस्तक में जिस काल का वर्णन है उस समय गुजरात और काठियावाड मे बहुत से छोटे मोटे जमीदार, ठाकुर, पटायत, जिलायत और राजा थे। इनमे से कुछ तो स्वतन्त्र थे और बाकी करद के रूप में भूमि का स्वामित्व भोगते थे। उनका बर्ताव कुछ ऐसा था कि वे जोरदार या बलशाली प्रबन्धको को तो आसानी से कर की रकम चुका देते थे परन्तु यदि वह कुछ सीधा सादा या कमजोर होता तो उससे लड़ाई करने को तैयार हो जाते थे। इनमें आपसी होड़ और द्वेषभाव की भी कमी नही थी इसलिए संघर्ष चलता ही रहता था; छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई ठन जाती और आपसी नुकसान होता रहता; मनुष्यो और जानवरों का अपहरण होता, धाड़े पड़ते और लूटमार होती और खून-खच्चर होते। इन सभी परिस्थितियों का लाभ उठाकर मरहठों ने इस प्रान्त पर आधिपत्य और करभार स्थापित किये। परन्तु इससे आन्तरिक अशान्ति और अव्यवस्था मे कोई कमी नही आई। परिणामस्वरूप अंग्रेजों का हस्तक्षेप हुआ और अन्ततः यहां उनकी प्रभुसत्ता की स्थापना हो गई। इन छोटी-मोटी लड़ाइयों, देशी-विदेशी चालो और राजनीतिक उथल-पुथल का वर्णन भी इस भाग में हुआ है जो लघु कहानियों की तरह पढ़ा जा सकता है। फिर भी इनमें सूत्र रूप से ऐतिहासिक और सास्कृतिक संघटनाएं यथावत् विद्यमान हैं।

आशा है, यह सब पाठकों को रुचिकर होगा और शोधार्थियो को इससे सूचनाएं प्राप्त करने मे सुविधा मिलेगी।

गोपालनारायण

: सी-50, गौरनगर, सागर वि.

आमुख

हरा भरा गुजरात प्रदेश भारत के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित है। साबरमती और और माही नदियों से सिंचित इस क्षेत्र के खेत सदैव हरी भरी फसलों से लहलहाते रहते हैं और वृक्ष सुस्वाद फलों से लदे, अधिकांश पहाड़ी भाग में खेती नहीं होती पर जहां भी थोड़ी बहुत होती है, वहां बहुत हरियाली दिखाई देती है। कच्छ के रन का रेगिस्तान भी पश्चिमी गुजरात में है पर इसकी क्षतिपूर्ति बन्दरगाहों से हो जाती है जो इतिहास के प्रारम्भ से ही प्रमुख व्यापारिक केन्द्र रहे हैं। एक महाराष्ट्र लेखक लिखता है कि सैकड़ो मीलों तक फैला हुआ यह प्रदेश इंगलिस्तान के उमरावों के अच्छे से अच्छे बगीचों से भी बढ़कर होने का दावा कर सकता है। एलफिन्स्टन ने लिखा है कि हिन्दुस्थान का और कोई प्रदेश इतना फलो-फूलों से भरा और रमणीय नहीं है।

यह क्षेत्र भारत के तीनों जैन, बौद्ध एवं हिन्दूधर्मों के लिए पवित्र माना जाता है।। प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ ने यही शत्रुंजय पर्वत पर तपस्या की थी; यही जूनागढ में प्रसिद्ध बौद्ध सम्राट अशोक ने अपना शिलालेख खुदवाया और यही राजा शीलादित्य बौद्ध धर्म मे प्रवृत हुआ था। हिन्दुओं के चार प्रसिद्ध धामों में श्री कृष्ण की द्वारका पुरी इसी क्षेत्र में है।

पुरातत्त्व की दृष्टि से यह इलाका मन्दिरों, जलाशयों व अन्य भव्य भवनो से भरा हुआ है। समुद्र किनारे होने के कारण गुजरात निवासी व्यापार मे सदैव अग्रणी रहे फलस्वरूप आर्थिक समृद्धि आई और कला-संस्कृति के क्षेत्र मे सुरुचि सम्पन्नता एवं विविधता।

सम्पूर्ण गुजरात (सौराष्ट्र एवं काठियावाड़ सहित) छोटे-छोटे खण्डों मे बंटा हुआ था जिनके शासक प्रारम्भ में मैत्रक, गोहिल, चावड़ा, वाघेल एवं सोलंकी कुलो के राजपूत थे। रासमाला के प्रथम खंड में इन्हीं कुलों के आपसी संघर्ष की कथा है पर फार्बस की रासमाला केवल लडाईयों का इतिहास ही नही है वरन् तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियो को भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इस पुस्तक का आधार लोकरास साहित्य है, जो पुस्तक के रासमाला नाम से स्पष्ट है; इस कारण कहीं-कहीं ऐतिहासिक तिथियां बेमेल हैं और तथ्यों मे अतिशयोक्ति आ गई है परन्तु अन्य दृष्टि से इतिहास सरस और पूर्ण है और तथ्यों से समृद्ध भी क्योंकि इसमे दंत कथाओं का भी सहारा लिया गया है।

वलभी के गोहिलो की उत्पत्ति की गहराई में न जाकर विद्वान लेखक ने अपने सास्कृतिक अध्ययन को विशद रूप मे प्रस्तुत किया है। इसी के साथ गुजरात के प्रसिद्ध स्थानो की सस्थापना और विकास का इतिहास भी आ जाता है। अर्थात् शासक, शासित एव क्षेत्रीय सस्कृति का बडा ही सुन्दर समन्वय हुआ है। शुरुआत होती है वलभी के शीलादित्य से जो, प्राचीन कथाओ के अनुसार एक विधवा ब्राह्मणी का सूर्य के अश से उत्पन्न पुत्र था। वह अरबो से युद्ध करता हुआ मारा गया। यह बात लगभग 770 ई. की है।

अणहिलपुर पाटन गुजरात का प्रसिद्ध नगर है। इसका सस्थापक वनराज चावडा सोलकियो की चावड़ा शाखा मे उत्पन्न हुआ था। जन्म से पहले ही उसके पिता जयशेखर चावड़ा की मृत्यु रणक्षेत्र मे हो गई थी। वह वन मे पैदा हुआ और शीलगुण नामक जैन साधु के उपासरे में उसका बाल्यकाल बीता। बड़े होकर उसने अपने पराक्रम से राज्य अर्जित किया और उसकी वृद्धि भी की। अपने मित्र अणहिल नामक भीलके नाम पर उसने अपनी नई राजधानी का नाम अणहिलवाडा या अणहिलपुर पाटन (पत्तन) रखा। उसका जन्म 720 ई. मे हुआ था और अणहिलपुर मे 60 वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई (806 ई)। इस वंश मे योगराज और रत्नादित्य महान् शासक हुए। पर बाद मे सुयोग्य अधिकारियो के अभाव मे राज्य सोलकियो के हाथ मे चला गया। सोलकी वश मे मूलराज बड़ा प्रतापी राजा हुआ। मूल नक्षत्र मे पैदा होने के कारण उसका नाम मूलराज पडा था। रत्नमालाकार के अनुसार वह विश्वासघाती, दयाहीन और निरन्तर अपनी उन्नति मे तत्पर रहने वाला था। पर एक जैन आचार्य का कथन इसके विपरीत है। उसके अनुसार मूलराज संसार का उपकार करने वाला, उदार और सद्गुणों का भडार था। सब राजा लोग सूर्य के समान उसकी पूजा करते थे; जो लोग अपना देश छोड़कर उसके देश में बसते थे उन्हे सुख मिलता था; इसी कारण उसने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। यद्यपि उपर्युक्त दोनो मतो मे संगति नही बैठती पर इतना अवश्य है कि वह अत्यन्त सफल शासक हुआ। इस वश मे कई प्रसिद्ध राजे हुए। भीमदेव का पुत्र कर्ण सोलकी अपनी दया और उदारता के लिए प्रसिद्ध था। उसने कर्णावती नामक नगरी बसाई और "कर्ण सरोवर नामक" तालाब बधवाया। कर्णवती की स्थिति के विषय मे तो ठीक से नही कहा जा सकता पर अणहिलवाडा पाटन से दक्षिण की ओर कुछ ही मीलो की दूरी पर मोढेरा नगर के पास एक गाव है जो आजतक कनसागर (कर्णसागर) कहलाता है। गिरनार की पहाडी पर नेमिनाथ का एक भव्य मंदिर है। कहते हैं; यह भी राजा कर्ण का बनवाया हुआ है और इसीलिए "कर्ण विहार" कहलाता है। इसी कर्ण सोलकी का पुत्र सिद्धराज जयसिंह हुआ जिसका गुजरात के इतिहास में अद्वितीय स्थान है।

सिद्धराज जयसिंह (1094–1143) ने 51 वर्ष राज्य किया। वह बालक ही था तो उसके पिता कर्ण सोलकी का देहान्त हो गया। बाल्यकाल मे वह; अपनी

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

ाता मीनल देवी की सरक्षकता मे राज्य संभालता रहा। मीनल देवी राजकाज मे बड़ी निपुण और अत्यन्त उदार स्त्री थी। उसने वीरमगाव के पास मीनलसर और धोलका के पास मीनल तलाव नामक सरोवर बनवाए थे। उस समय सरोवर के क्षेत्र मे एक गायिका का घर भी आता था पर मीनलदेवी ने उसे न लेकर अपनी उदारता का परिचय दिया। सोमेश्वर मंदिर जाने वाले यात्रियो का कर भी मीनल देवी ने माफ करा दिया जिससे तीर्थयात्रियों को बड़ी राहत मिली। बड़े होने पर जयसिंह ने स्वतंत्र रूप से शासन कार्य अपने हाथ मे लिया उसने बहुत से देश जीते पर भोज की नगरी धारा जीत कर उसने चतुर्दिक ख्याति प्राप्त कर ली इस अवसर पर जैन आचार्य हेमचन्द्र ने उसका कीर्तिगान किया। उसने अनेकों मन्दिर बनवाए और प्राचीन मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाया जिनमे मूलराज के बनवाए श्रीस्थलपुर मे रूद्र महाकाल मन्दिर की मरम्मत उल्लेखनीय है। तब से श्रीस्थलपुर, सिद्धराज के नाम पर सिद्धपुर कहलाया। सिद्धराज का शासन काल गुजरात का स्वर्णयुग था। बड़े-बड़े विद्वान, सुयोग्य सरदार और कुशल राजनीतिज्ञ उसके राज्य की शोभा बढ़ाते थे। इन्ही सुयोग्य दरबारियो में धारा नगरी के परमार राजा उदयादित्य का पुत्र जगदेव पंवार भी था। कथा है कि उसने एक बार योगिनियो से वरदान मे राजा जयसिंह की आयु वृद्धि कराई थी। यह कथा काल्पनिक हो सकती है पर इससे उसकी स्वामिभक्ति का प्रमाण मिलता है। सिद्धर ज ने वढवाण अधिपति रा' खगार को हराया। इसी रा' खगार की पत्नी राणक देवी थी जिसके पातिव्रत्य की कथा प्रसिद्ध है। वस्तुत: इस कथा ने लोकगाथा का रूप ले लिया है और समस्त उत्तर भारत मे गाई जाती है। कथा इस प्रकार है—राणकदेवी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जयसिंह उससे विवाह करना चाहता था पर इसके पहले कि जयसिंह अपनी इच्छा कार्यान्वित करता राणक देवी सोरठ अधिपति रा' खगार की पत्नी बनगई कुछ दिनो बाद रा' खगार को शक हुआ कि उसका भानजा, जो सिद्धराज के कुल का था, रानी राणक दे से प्रेम करता है। इस पर भानजा नाराज होकर जयसिंह के पास जाता है और वहां से सेना सहित आकर आक्रमण करता है। युद्ध में जयसिंह की विजय होती है। वह राणकदे को सती होने से मना करता है और हर संभव प्रयत्न करता है कि वह रुक जाए पर रानी राणकदे नही मानती और रा' खगार के साथ सती हो जाती है। उसका रूदन बड़ा ही करुण और हृदय को हिला देने वाला है। सिद्धराज बहुत दु:खी हुआ पर कुछ कर नहीं सका। उसने राणकदे के दोनो पुत्रो को मार दिया था इसलिए सती ने शाप दिया कि सिद्धराज का वश नही चलेगा, और सचमुच उसको कोई संतान नही हुई। अतएव उसका निकट सबधी कुमारपाल राजा हुआ।

कुमारपाल जैन धर्म का बहुत बड़ा आश्रयदाता हुआ। जैन होते हुए भी उ युद्ध से विरक्ति नही थी। उसने कई राजाओ को हराया जिनमे अर्णोराज अ मालवराज बल्लाल मुख्य थे। 1157 ई० के एक ताम्रपट्ट (नादोल जैन

लय) मे उसे "राजाधिराज, प्रख्यात, राजकुल, का श्रृंगार, महाशूरवीर और अपने शस्त्रबल से शाकभरी के राजा को पराजित करने वाला कहा गया है। उसके सेनापति अम्बड ने कोकरण के राजा को हराया। कुमारपाल के शासनकाल में जैन आचार्य हेमचन्द्र की बहुत प्रधानता रही। कहते हैं कि जिस प्रकार चंद्रमा की कांति से समुद्र की लहरें आकर्षित होती हैं उसी प्रकार उनकी वाणी सुनकर राजा आनद लहरियो मे निमग्न हो जाता था। इन जैन आचार्य के पिता हिन्दू और मा जैन थी। एक बार जब उनके पिता व्यापार के सम्बन्ध मे विदेश गए थे, जैन मुनि देवचन्द्राचार्य बालक चगदेव (आचार्य हेमचन्द्र का दीक्षा पूर्व नाम) को माग कर ले गए। वही उपासरे मे चगदेव बडे हुए। आगे चल कर वह विख्यात विद्वान हुए और उन्होंने अभिधान चिन्तामणि, जिनदेव स्तोत्र (जिस पर 1292 ई० मे लिखी हुई एक टीका प्राप्त होती है) योगशास्त्र, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, विंशतिवीतराग-स्तोत्र, और 'द्व्याश्रय' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। हेमचन्द्र की प्रेरणा से राजा कुमार पाल ने इक्कीस ज्ञान भडार स्थापित किए और पुस्तको के लेखनकार्य को प्रोत्साहित किया। कुमारपाल ने पाटन स्थित सोमेश्वर मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। इस कार्य का भार एक कन्नौज निवासी ब्राह्मण भाव बृहस्पति को सौंपा गया, इसके लिए एक समिति बनाई गई जिसने भाव बृहस्पति के निर्देशन मे यह कार्य सम्पन्न किया। कुमारपाल ने अणहिलपुर पाटन मे कुमारपालेश्वर महादेव का देवालय बनवाया। देवपट्टन मे जैनधर्म का एक ऐसा सुन्दर मन्दिर बनवाया कि देश देश के लोग देखने आए। कुमारपाल के बाद उल्लेखनीय शासक भीमदेव द्वितीय (1179–1215) हुआ जो भोला भीम के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

भीमदेव द्वितीय शक्तिशाली राजा हुआ। मेरुत्तुग लिखता है कि उसके राज्य काल मे मालवा के राजा सोहडदेव ने गुजरात पर चढ़ाई की पर वह भीमदेव की धमकी सुनकर ही भाग गया। बाद मे सोहडदेव के पुत्र अर्जुनदेव ने गुजरात को लूटा। भीमदेव को चौहानों से निरंतर लडते रहना पडा और इसी के समय में मुहम्मदगोरी का आक्रमण भी हुआ जिसके बाद मुसलमानो का आगमन निर्बाध गति से शुरू हो गया। भीमदेव की चौहानो से लडाई का कारण जैतसी परमार की पुत्री इच्छन कुमारी थी जो चौहान पुत्र की वाग्दत्ता पत्नी थी। जब यह संघर्ष चल रहा था, तभी शाहबुद्दीन गोरी के हमलो का भी आतंक था। इस अवसर पर सभी सरदारो ने सलाह दी कि चौहानो से लड़ाई बन्द कर देनी चाहिए और सबको मिल-कर गोरी का सामना करना चाहिए—पीरम के गोहिल सामन्त ने कहा, "लडाई बन्द कर देनी चाहिए, परमार का कोई बडा अपराध नही है। यदि वह सिंह की सी कमर वाली इच्छनी को भेट कर दे तो बस यही पर्याप्त है। हमे इसी के लिए प्रयत्न सोचने चाहिए।" राणिङ्ग झाला ने कहा, "युद्ध के समय हमें युद्ध की ही बात सोचनी चाहिए, व्यर्थ बातो पर ध्यान नही देना चाहिए।" वीरमदेव बाघेला ने कहा,

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"हमे चौहान से पारस्परिक समझौता कर लेना चाहिए और मिलकर शाह का सामना करना चाहिए; उसको हराने से हमारे राज्य का विस्तार और कीर्ति का प्रसार होगा।" पर भोले राजा अथवा मूर्ख भीम ने किसी सामन्त की बात नही मानी और चौहान से लड़ाई मोल ले ली। बाद में उसे मुसलमानों से भी लड़ना पड़ा, अंततः भीमदेव की हार हुई। मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि जब कुतुबुद्दीन ने अणहिलवाडा के बाहर आकर डेरा डाला तो भीमदेव का सेनापति जीवणराय उसको देखकर भाग गया, पीछे से उसकी फौज भी भागी और इस पराजय की खबर सुनते ही भीमदेव राजधानी छोड़कर भाग खड़ा हुआ। इसके बाद गुजरात मे वाघेलो का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

भीमदेव के समय से ही लवणप्रसाद का प्रभाव बढ़ रहा था और उसके पुत्र वीरधवल के सहयोग से ही भीम राज्य कर रहा था। राजा भीम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए वीरधवल जीवन भर राणा ही बना रहा पर उसका पुत्र बीसलदेव आगे चलकर अणहिलवाड़ा की गद्दी पर बैठा। अबसे मुसलमान सुलतानों के आगमन से पहले तक गुजरात की राजनीतिक स्थिति अस्थिर ही रही पर सांस्कृतिक दृष्टि से इस युग की उपलब्धिया बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। इसी युग मे चन्द्रावती के परमार राजाओं ने अनुपम शिल्प का निर्माण करवाया जिसके उत्तम उदाहरण इन दिनों आबू संग्रहालय में सुरक्षित हैं। देलवाड़ा के प्रसिद्ध जैन देवालयो के निर्माता वस्तुपाल एवं तेजपाल भी इसी काल मे हुए। वे अजयपाल के मंत्री रहे। वस्तुपाल स्वय विद्वान, विद्याप्रेमी और विद्वानो का आदर करने वाला था। उसका लिखा हुआ षोडश सर्गात्मक 'नरनारायणानन्द' नामक महाकाव्य है जो अर्जुन-सुभद्रा परिणय की कथा पर आधारित है। उसने पुस्तकालयों को खुले हाथों दान दिया जिससे पुस्तक लेखन में बड़ी प्रगति हुई।

गुजरात की प्रमुख राजधानी अणहिलपुर पाटन का अन्त अलाउद्दीन खिलजी के हाथो हुआ। सन् 1296 मे अपने चचा जलाउद्दीन की हत्या कर वह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। अगले वर्ष ही उसने गुजरात विजय के लिए अपने भाई अलफखां और वजीर नुसरतखा जालेरदी को भेजा। विशाल मुसलमान सेना ने अणहिलपुर पाटन जैसे भव्य नगर को उजाड़ दिया। राजा कर्ण वाघेला भाग गया पर अपने पीछे परिजन, पुरजन एवं धन-सम्पत्ति छोड गया जो मुसलमानों के हाथ लगी। उसकी रानी कौला (कमला) देवी भी अलाउद्दीन के हरम की शोभा बनी। कौला देवी के राजा कर्ण से दो पुत्रिया थी जिनमें एक की तो मृत्यु हो गई थी पर दूसरी देवलदेवी उससे बिछुडकर अणहिलपुर मे ही रह गई थी। कौलादेवी ने बादशाह से आग्रह किया कि उसके राजपूत पति की पुत्री को भी दिल्ली बुला जाए और इसी कारण अणहिलपुर पर पुनः आक्रमण हुआ। अभागा राजा कर्ण वाघेला किसी भी कीमत पर अपनी पुत्री देने को तैयार नहीं था अतः उसने अलफखां-अलाउद्दीन के

सेनापति, का सामना किया और चेष्टा की कि देवलदेवी का विवाह देवगढ के शंकर देव से हो जाए। किन्तु यह भी सभव नही हुआ और देवलदेवी, अरगहिलपुर से देवगिरी जाते समय, रास्ते मे एलौरा की गुफाओ के पास अचेतावस्था मे मुसलमान फौज के हाथ पड गई।

आगे लगभग दो सौ वर्षों तक गुजरात मे मुस्लिम सुलतानो का प्रभुत्व रहा और यद्यपि इनके समय मे राजपूत सरदारो का भी आधिपत्य कही-कही बना रहा। इस सबध मे यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि इन मुस्लिम सुलतानो का आधिपत्य रहा, अलाउद्दीन ने बहुतो को मुसलमान बनाया, जिसके फलस्वरूप मोहले सलाम और सुमरा आदि उपजातिया बनी पर राजपूत शांति से कभी नही रहे। वे आपस मे भी लडते रहे और यदा कदा बादशाहो को भी परेशान करते। मुगलो से पहले के मुस्लिम शासको मे अहमदशाह प्रथम और महमूद बेगड़ा उल्लेखनीय हैं।

अहमदशाह (1410-1442) मुसलमान होते हुए भी गुजरात निवासी राजपूत था। यह मुजफ्फर शाह प्रथम का पोता था। इसने साबरमती नदी के किनारे एक नगर की नीव डाली (1412) जो इसके नाम पर अहमदाबाद कहलाया। अहमदशाह को गद्दी के लिए बहुत लडाई करनी पड़ी क्योंकि मुजफ्फर शाह की मृत्यु के बाद जब अहमदशाह गद्दी पर बैठा तो फिरोज खां नामक उसके चचेरे भाई ने अपना हक प्रकट किया और भडौच मे अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया। दो वर्ष बाद 1412 में फिरोज खा ने फिर दावा किया और बहुत बड़ी फौज लेकर मोडासा मे युद्ध करने आया पर हार गया। फिरोज के सहयोगियो मे से एक सोरठ के राव की शरण मे भी गया इसलिए अहमदशाह सोरठ की ओर मुडा। इसका एक कारण और भी था। सोरठ हिन्दुओ का पवित्र एव रमणीय स्थान था। वहा की चीजो के विषय मे निम्नलिखित श्लोक प्रचलित है :—

सौराष्ट्रे पञ्च रत्नानि नदी, नारी तुरंगमः।
चतुर्थं सोमनाथश्च पञ्चमं हरिदर्शनम्।

मुसलमान इतिहासकार ने लिखा है अहमदशाह को गिरनार का किला लेने की प्रबल इच्छा हुई इसलिए उसने विद्रोहियो को उसी दिशा मे दौडाया और उनका पीछा किया। उस समय तक किसी भी राजा ने मुसलमानो के आगे सिर नहीं झुकाया था इसलिए सोरठ के राजा पर शेर-मलिक को आश्रय देने का अपराध लगा कर शाह ने उस पर आक्रमण किया, राव हार गया, उसने अधीनता स्वीकार कर ली और बादशाह को बहुमूल्य भेंट दी। अहमदशाह मन्दिरों को नष्ट करता हुआ अपनी राजधानी को वापस लौटा। अहमदशाह को बहुत लड़ाईया लड़नी पड़ी। उसने सोचा इस्लाम के प्रसार से शायद कुछ सहायता मिले इसलिए धर्मप्रचार का काम भी

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जोरों से हुआ यहां तक कि 'मीराते अहमदी' के लेखक को लिखना पड़ा कि अहमदशाह की कोशिशों से बहुत से लोगों ने धार्मिक प्रकाश प्राप्त किया। सन् 1414 ई० में उसने एक अधिकारी को ताजुलमुल्क का पद देकर गुजरात में मुसलमानी सत्ता स्थापित करने एवं मूर्ति पूजकों को नष्ट करने का काम सौंपा। इतिहास मे अहमदशाह की ख्याति अहमदाबाद बसाने के लिए है। उसने बहमनी सुलतानों को हराया राजपूत राजाओं से कर वसूल किया। उसकी मृत्यु 4 जुलाई 1443 ई० अहमदाबाद मे हुई। अहमदशाह के बाद गुजरात के प्रमुख सुलतानो मे महमूद बेगडा का नाम आता है। उसके समय का विस्तृत विवरण उदयराज कृत राजविनोद महाकाव्य मे मिलता है। वह चौदह वर्ष की अवस्था मे गद्दी पर बैठा और गुजरात के राजाओं में सबसे अधिक प्रतापी हुआ। कहते है कि पैगंबर मुहम्मद शाह की आज्ञा से उसने सोरठ पर आक्रमण किया और वहा के राव माडलिक को इस्लाम मे दीक्षित किया। उसने सोरठ विजय के बाद सय्यदो तथा अन्य विद्वानों को वहां बसने के लिए बुलाया और एक नया नगर बसाया जो मुश्तफाबाद कहलाया। महमूद बेगडा देश विजय और इस्लाम मत के प्रसार मे व्यस्त रहा, उसने सिन्ध पर चढाई की; उसके बाद द्वारका और बेट द्वीप के सरदारो पर भी हमले किए; यहा बड़ी कठिनता से उसे विजय प्राप्त हुई। सन् 1371 ई० मे उसने गिरनार के पास बसे हुए नए नगर-मुश्तफाबाद मे अपनी गद्दी कायम की और अहमदाबाद मे अपने प्रतिनिधि को रखा। उसने अपना समुद्री बेड़ा भी मजबूत किया। उसके विजय मे बहुत सी कथाएं और किवंदतियां प्रचलित हैं, मीरातेअहमदी मे लिखा है कि इस नदी के किनारे ऊंची जगह पर उसने एक उत्कृष्ट महल बनवाया जिसके अवशिष्ट चिन्ह और खडहर 19 वी शती तक विद्यमान थे। 1511 ई० मे महमूद बेगडा की मृत्यु हो गई। उसके वशजो मे कोई बहुत शक्तिशाली नही हुआ और अतत. गुजरात पर अकबर ने अधिकार कर लिया। इसके बाद प्रदेश मे थोडी स्थिरता आई और सम्पूर्ण प्रान्त का अधिकार एक सूबेदार के हाथ में आया। अकबर के समय मे अजीज खान कोका और शाहजादा मुरादबख्स तथा जहांगीर के समय मे शाहजादा खुर्रम तथा शाहजहा के समय शाहजादा मुराद व बाद मेजोधपुर के महाराजा अभय सिंह गुजरात के प्रमुख सूबेदारो मे हुए। इस काल का विवरण अबुलफजल के आईने अकबरी मे मिलता है। मुसलमान इतिहासकारों ने राजपूतों के विषय मे विशेष नही लिखा है पर इसकी पूर्ति स्थानीय साहित्य से हो जाती है। जिसका फॉर्ब्स ने खुलकर प्रयोग किया है। मुगल युग मे सम्पूर्ण देश मे शांति रही और गुजरात की प्रगति हुई। यद्यपि युद्ध की छुट पुट घटनाएं भी होती रही पर कोई बडी लडाई आपस मे नहीं हुई। अठारहवी शती मे जब मुगलशक्ति का ह्रास हुआ तो स्थानीय ठाकुरो ने भी सिर उठाया इस शती के आरंभ में गुजरात में भावनगर की स्थापना एक मुख्य घटना थी क्योंकि समुद्रतट पर स्थित होने के कारण यह नगर बाद मे बहुत बडा बदरगाह बना। चारणो का कहना है कि

इस नगर के भविष्य के संबंध मे जब पंडितों ने विचार किया तो सबने एक स्वर से कहा वाह वाह, यह नगर तो इन्द्रपुरी के सदृश होगा, मणि माणिक से भरपूर रहेगा और इसके शत्रुओ की पराजय होगी।

आगे के पृष्ठो में हम मुगल सत्ता के अंतिम दिनो मे गुजरात की अव्यवस्था के विषय मे पढ़ेंगे जब मरहठों का आगमन हुआ और उनके आपसी संघर्ष के फलस्वरूप धीरे-धीरे सत्ता अंग्रेजों के हाथ मे पहुंच गई। यद्यपि मरहठे और राजपूत नाम मात्र को शासक बने रहे।

संपादिका



पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय

प्रकरण पहला
गुजरात में मरहठों का आगमन
अहमदाबाद पर अधिकार[1]

अठारहवी शताब्दी के आरम्भ मे मरहठा राज्य का सेनापति खंडेराव दाभाड़े[2], अपने लुटेरे घुडसवारो को गुजरात में भेजकर इस प्रान्त से चौथ वसूल करने लगा। पहले तो वह अहमद शाह के नगर, अहमदाबाद मे आसपास भटकता रहा परन्तु फिर कुछ पीछे हट कर नादोद और राजपीपला जैसे सुदृढ़ नगरों के चौगिर्द अधिक दृढ़ता से पैर जमाने और वहीं से दक्षिण और गुजरात के बीच के व्यापारी मार्ग पर भी अपनी सत्ता कायम करने के प्रयत्न करने लगा। सन् 1730 ई० मे बालापुर की लड़ाई मे दाभाड़े की सेना ने अपनी वीरता के कारण ख्याति प्राप्त की और इसी रणक्षेत्र में एक ऐसे सरदार ने भी पहले-पहल कीर्ति अर्जित की जिसके भाग्य मे गुजरात प्रान्त के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने का लेख

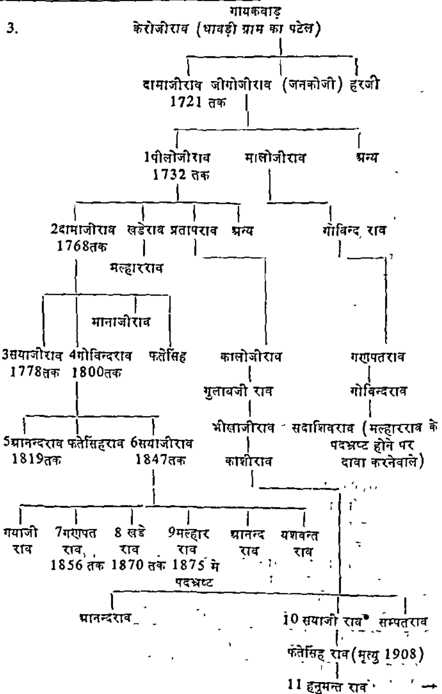
1 इस व अगले प्रकरण के लेख का आधार ग्रान्ट डफ लिखित 'हिस्ट्री ऑफ मरहठाज' और फॉर्ब्स की 'ओरियन्टल मेम्वायर्स' नामक पुस्तकें है।

जेम्स कनिङ्घम ग्रान्ट डफ पहले पहल हिन्दुस्तान में 1805 में आया था और फर्स्ट नेटिव इन्फैन्ट्री, बबई मे नौकर हुआ था। बाद में वह पूना के रेजीडेण्ट माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन का सहायक नियुक्त हुआ। वह सन् 1817 में खिड़की की लड़ाई में मौजूद था। फिर, वह सतारा का रेजीडेण्ट बनाया गया; वहीं उसके ग्रन्थ History of the mahrattas के लिए उसे पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई थी। यह ग्रन्थ पहले पहले 1826 मे प्रकाशित हुआ था। बाद मे, 1863, 1873, 1878, 1912 और 1921 मे भी इसके संस्करण निकले।

Oriental memoirs का लेखक जेम्स फॉर्ब्स 1749 मे पैदा हुआ था और 1765 मे कंपनी का नौकर होकर बबई आया था। 1775 मे जब राघोबा के लिए गुजरात में सहायता भेजी गई तो यह कर्नल कीटिङ्ग का प्राइवेट सेक्रेटरी बन कर वहाँ गया था। फिर 1780 में डभोई का कलक्टर नियुक्त हुआ और दो वर्ष बाद जब वह नगर मरहठों को लौटा दिया गया तो यह विलायत चला गया। Oriental memoirs का प्रकाशन चार जिल्दो मे 1813-15 ई० में हुआ था। जेम्स फॉर्ब्स की मृत्यु 1819 मे हुई थी।

2. इस परिवार का मूल पुरुष यशपातिल दाभाड़े था जो पूना के पास तालेगाँव का मुकद्दम था। वह जाति से मरहठा था और शिवाजी के पुत्रों, सम्भाजी और राजाराम का अध्यापक रहा था। उसका पुत्र खंडेराव राजाराम के पक्ष में मुगलों के विरुद्ध लड़ा था। प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने उसको सेनापति नियुक्त किया था।

था। दामाजी गायकवाड़[3] को सेनापति का सहायक नियुक्त किया गया और 'शमशेर बहादुर' की पदवी देकर उसे सम्मानित किया गया।



पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

इस विजय के थोड़े ही दिनों बाद खडेराव और उसका नव नियुक्त सहायक दोनों ही मर गए। त्र्यम्बकराव दाभाडे को उसके पिता के स्थान पर नियुक्त करके सेनापति की पोशाक प्रदान की गई और जनकोजी गायकवाड के पुत्र पीलाजी को उसके काका दामाजी का अधिकार प्राप्त हुआ। कुछ ही वर्षों बाद ऊदाजी प्वार नामक एक दूसरा प्रगतिशील और सबल मरहठा सरदार अपने घुडसवारो सहित गुजरात और मालवा मे आया। उसने गुजरात मे लूणावाडा तक लूटपाट की और मालवा मे भोज के वश की गद्दी पर अधिकार करके उसी का नाम धारण करते हुए राज्य-सस्थापन किया। इसी समय निजामउल-मुल्क[4] को हटाकर शुजाअत खा को गुजरात के सूबेदार सरबुलन्द खा का सहायक नियुक्त किया गया था। निजामउल मुल्क के चाचा हमीद खाँ ने उसका सामना किया और मरहठा नायक कन्ताजी भाण्डे[5] को भी चौथ देने का वचन देकर अपने पक्ष मे कर लिया। इन दोनो सरदारो ने मिलकर गुजरात की राजधानी से थोड़ी दूर पर ही शुजाअत खा पर आक्रमण

---

* बड़ोदा के सुप्रसिद्ध स्वर्गीय महाराजा, इनको मल्हार राव के पदभ्रष्ट होने के बाद खडेराव महाराज की रानी जमनाबाई ने गोद लिया था पहले इनका नाम गोपालराव था, गद्दी पर बैठने के बाद सयाजीराव नाम पडा। गायकवाड़ राज्य का विस्तार लगभग 8600 वर्ग मील का था 2931 ग्राम थे और आबादी लगभग 22 लाख की थी। यहाँ के महाराजा की सलामी 21 तोपो से होती थी।

4. सन् 1722 ई० मे जुमलातउल-मुल्क निजामउल-मुल्क गुजरात का 51 वां सूबेदार नियुक्त हुआ था और उसने अपने चाचा हमीद खाँ को सहायक बनाया तथा मुनीमखा को सूरत का शासक नियुक्त किया। शाही दरबार मे किसी अपमानजनक व्यवहार से असतुष्ट होकर वह दक्षिण लौट गया और वहाँ उसने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। बादशाह मुहम्मद शाह ने सरबुलन्द खाँ को गुजरात का सूबेदार बनाया और शुजाअत खाँ को उसका सहायक नियुक्त किया। हमीद खाँ अपने पद को छोडना नही चाहता था अतः दोनो पक्षो मे लडाई शुरू हो गई।

5. कन्ताजी कदम भाण्ड राजा साहू का कार्यकर्ता था जिसको मालवा भेजा गया था। वह उत्तर-पूर्व की ओर से गुजरात मे प्रविष्ट हुआ और दोहद के आस पास इस प्रान्त को लूटता रहा। सन् 1723 ई० में इसी कन्ताजी ने इस प्रदेश पर मरहठा कर (चौथ, सरदेशमुखी और स्वराज्य) लागू किये थे। चौथ=चतुर्थांश। सरदेशमुखी = चौथ पर दशाश। स्वराज्य = शिवाजी की मृत्यु के समय जो प्रदेश उनके अधिकार मे था वहा लगने वाला कर स्वराज्य कहलाता था।

करके उसको मार डाला। इस घटना के समय शुजाअत खां का भाई रुस्तम अली सूरत की फौज का सरदार था और सूरत नगर के पास ही पीलाजी गायकवाड़ पर विजय लाभ कर रहा था।

रुस्तम अली ने अपने भाई की हार व मृत्यु का समाचार सुनकर अपने मरहठा शत्रु से सन्धि कर ली और उसे हमीद खा पर चढ़ाई करने मे सहायता करने के लिए राजी कर लिया। चालाक मरहठा ने उसके विपक्षियों से भी मेल की बातचीत चला रखी थी, परन्तु वह अपना पक्ष निश्चित किए बिना ही उसके साथ अहमदाबाद तक चला गया। इस प्रकार प्रस्थान करके वे दोनों फाजिलपुर के पास माही को पार करके अडास की ओर आगे बढ़े। इसी ठिकाने पर हमीदखा ने उन पर आक्रमण किया परन्तु रुस्तम अली की तोपों के सामने उसकी फौजें ठहर न सकी। अब पीलाजी गायकवाड़ ने अपना पक्ष चुन लिया था और उसने तोपो को अपने भरोसे छोडकर रुस्तम अली को शत्रु की भागती हुई सेना का पीछा करने के लिए कहा। ज्यो ही उस शूरवीर मुसलमान ने पीलाजी की इस घातक सलाह का अनुसरण किया त्योंही उसकी तोपो का रुख पलट गया और उसके विश्वासघातक साथी ने उस पर पीछे से हमला कर दिया। रुस्तम अली ने थोड़ी देर तक वीरता से सामना किया परन्तु उसके पास बहुत थोडी सेना रह गई थी इसलिए बचना असम्भव जानकर उसने पराजय के बाद कैद होकर दुर्दशा भोगने के डर से अपनी छाती मे कटार मारकर प्राण छोड़ दिए।

पीलाजी को इस विश्वासघात के फलस्वरूप कन्ताजी से चौथ में आधा भाग प्राप्त हुआ और वे दोनो मिलकर अपना-अपना हिस्सा वसूल करने के लिए रवाना हुए, किन्तु धन के बटवारे को लेकर उनमे आपस में अनबन हो गई और हमेशा झगड़ा ही होता रहा। कुछ समय तक तो इन झगडो का परिणाम यह हुआ कि शहरों और गावों पर कर का अधिक बोझा पडा, परन्तु जब ये मरहठा सरदार खम्भात के पास पहुचे और अपनी रीति के अनुसार गांवो आदि को जलाने लगे तो वहा के निवासियो ने उनके झगडे का कारण जानकर और दोनो मे कन्ताजी को श्रेष्ठ समझकर पीलाजी के पास सन्देश भेजा कि वे कुछ रुपया लेकर लौट जावें। पीलाजी ने इसमे अपना अपमान समझा और दूत को कैद कर लिया। कन्ताजी ने उसे छोड़ देने के लिए आग्रह किया और परिणाम यह निकला कि वे दोनो अपना-अपना अधिकार स्थिर करने के लिए हथियार लेकर खडे हो गए। किले के पास ही खूब लड़ाई हुई और पीलाजी हारकर मेडा के पास मातर नामक स्थान को भाग गया। कन्ताजी ने खम्भात से कर वसूल किया। वहा के अंग्रेज कोठीवालो से भी पांच हजार रुपया मागा गया तो एजेण्टो ने उस कर से मुक्त होने की दलील देते

हुए कहा कि उन्हें साहू राजा की ग्रोर से व्यापार की छूट मिली हुई है, परन्तु यह सुनकर, जैसा कि मिस्टर इन्स (Mr Innes) ने उत्तेजित होकर लिखा है वे "शस्त्रधारी बदमाश" हस भर दिए ।

हमीद खां ने, यह सोचकर कि उसके सहायक साथ छोड़ कर जा न सकें, यह निश्चित कर दिया कि माही के पूर्वी भाग की चौथ तो पीलाजी वसूल करें ग्रौर पश्चिम भाग मे कन्ताजी । वर्षा ऋतु मे ग्रपने देश लौट जाने की प्रथा मरहठों मे ग्रब भी प्रचलित थी इसलिए पीलाजी तो सूरत के पास सोनगढ चले गए ग्रौर कन्ताजी खान देश मे ग्रपने एक परगने को चले गए ।

सरबुलन्द खां एक उत्तम लोकप्रिय सरदार था जिसे ग्रन्याय से काबुल से ग्रलग कर दिया गया था । इस संकट के समय मे हमीद खा के भारी उपद्रव को शांत करके गुजरात मे पुन शासन स्थापित करने के लिए बादशाह् उससे ग्रत्यन्त नम्रतापूर्वक ग्राग्रह कर रहा था । एक भारी सेना एकत्रित करके उसके ग्रधिकार मे दी गई ग्रौर सरबुलंद खां ने 1725 ई० मे उस सेना के साथ ग्रहमदाबाद की ग्रोर प्रस्थान कर दिया । मरहठों से सहायता पाने की ग्राशा छोड कर हमीद खा सरबुलन्द खा की सेना के ग्रागमन से पहले ही नगर की रक्षा के लिए कुछ किलेदारो को छोड कर भाग निकला था । परन्तु मरहठे माही नदी को पार कर चुके थे इसलिए वे उससे महमूदाबाद मे ग्रा मिले । ग्रब उसने राजधानी की ग्रोर वापस कदम वढाए । शहर मे नए सूबेदार का पक्ष करने वाला एक दल था जिसने हमीद खा के किलेदारो को हराकर नगर से वाहर कर दिया था । जिस दिन सरबुलन्द खा की सेना का एक भाग ग्रडालज ग्राकर पहुचा उसी दिन हमीद खा ने भी शाही बाग में डेरा डाला । सरबुलन्द खा की सेना की यह टुकडी ग्रावश्यकता से ग्रधिक ग्रागे ग्रा गई थी इसलिए हमीद खां ने इस पर विजय पाई परन्तु उसे इस जीत से वहुत वडी हानि उठानी पडी । दूसरी लड़ाई की जोखिम उठाने के लिए मरहठे भी तैयार न थे इसलिए ग्रब वह भी उन्ही के समान लुटेरा वन गया । नए सूबेदार ने परगने-परगने मे लूटमार बन्द करने के लिए ग्रधिकारी नियुक्त कर दिए थे ग्रौर ग्रसाधारण प्रवन्ध कर रखा था, परन्तु फिर भी कन्ताजी ग्रौर पीलाजी ने वर्ष के ग्राठ महिनों तक ग्रपना लूटमार का धन्धा जारी रखा ग्रौर वर्षा ग्राने पर ग्रपने-ग्रपने स्थान को लौट गए । महाराष्ट्र इतिहासकार लिखता है कि "एक मोहक शान्ति ग्राने लगी, वर्षा का ग्रारम्भ होते ही फिर हरियाली छा गई ग्रौर गुजरात की मनोरम भूमि, जो सैकडों मीलों तक इंगलैण्ड के धनिकों के बगीचों से समता कर सकती है, शीघ्र ही वढ़ती हुई हरियाली ग्रौर वनस्पति के कारण ग्रपने स्वाभाविक सुन्दर परिधान से मण्डित हो गई। जहां थोडे समय पहले सदा के झगडों, दिन दहाड़े मारधाड़, रक्षको के होते हुए भी कारवानो (व्यापारी संघो) की लूट ग्रौर गांवों के भुलसने व ऊजट होने के प्रति-

ग्नि और कुछ नहीं दिखाई देता था वहां अब शान्ति अपने राज्य का प्रसार करती हुई प्रतीत होती थी।'

सरबुलन्द खा ने मरहठो की लूट मार को बन्द करने का भरसक प्रयत्न किया और बारम्बार बादशाह को रुपया भेजने के लिए प्रार्थना की क्योकि उसका अधीनस्थ देश इतना धनहीन हो गया था कि वहा से कुछ आमद होना प्रत्यक्ष ही असम्भव प्रतीत होता था। जब उसकी माग पर किसी ने ध्यान न दिया तो उसने चौथ देकर कन्ताजी और पीलाजी का मन मनाने का प्रयत्न किया परन्तु वह इसमे भी निष्फल हुआ क्योंकि मरहठे कर तो पूरा वसूल करते थे परन्तु देश की रक्षा की कोई परवाह नही करते थे। अन्त मे, बाजीराव पेशवा[6] का भाई चिमनाजी अप्पा एक बड़ी सेना लेकर आया और उसने धोलका को लूट लिया तथा पिटलाद से भारी कर वसूल कर लिया। उसने अपने भाई की ओर से यह स्वीकार किया कि यदि उसे गुजरात मे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार मिल जाए तो वह इस देश को अन्य लुटेरों से मुक्त कर देगा। सरबुलन्द खा ने यह बात स्वीकार कर ली और साथ ही यह भी तय कर लिया गया कि ढाई हजार मरहठा घुड़सवार निरन्तर गुजरात मे बने रहेंगे और शाही सत्ता को कायम रखने मे सहायता देंगे। शाहू राजा की ओर से बाजीराव ने यह भी स्वीकार किया कि वे अपदस्थ जमीदारो व अन्य ऐसे लोगो को जो देश की शान्ति को भग करते हैं आश्रय नही देंगे और न उनका साथ देंगे। समझौते के इस वाक्य से उनका आशय पीलाजी गायकवाड़ से ही था क्योंकि वह गुजरात के भीलो और कोलियो से मिल गया था और इसी लिए मुसलमान उससे बहुत डरने लगे थे।

पेशवा और सरबुलन्द खां में यह समझौता होते ही त्र्यम्बकराव दाभाड़े ने दूसरे मरहठों से मेलजोल करना व सेना एकत्रित करना आरम्भ कर दिया। जब उसके पास पैंतीस हजार सेना इकट्ठी हो गई और

---

6 पेशवा फारसी शब्द है जिसका अर्थ प्राइम मिनिस्टर या प्रधान मन्त्री है पहले-पहल दक्षिण के बहमनी राजाओ ने इस पद को प्रचलित किया था। अहमदनगर के बुरहान खा निजाम शाह ने यह पदवी पहले-पहल कावर सिंह नामक ब्राह्मण को 1529 ई० मे प्रदान की थी। (देखो ग्रान्ट डफ)। सन् 1656 ई० मे साम्राज पन्त को पेशवा नियुक्त करके शिवाजी ने इसका पुनरारम्भ किया था। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर शिवाजी ने इस पद का नाम फारसी से बदल कर मराठी मे प्रधान (अष्ट प्रधान का मुख्य) रखा। 1714 ई० मे राजा शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को पेशवा नियुक्त किया। चार वर्ष पश्चात् इसी महामन्त्री ने शाही दरबार से मरहठो की स्वतन्त्रता प्रमाणित करने वाली स्वीकृति प्राप्त की। पेशवाओ की वशावली इस प्रकार है :—

निजामउल मुल्क ने सहायता देना मजूर कर लिया तो वह दक्षिण पर आक्रमण करने की योजना बनाने लगा। पीलाजी गायकवाड, कन्ताजी, रघूजी कदम भाण्डे, ऊदाजी और आनन्दराव पवार तथा अन्य कितने ही सरदारों ने उसका साथ दिया और उन्होने प्रकट किया कि पेशवा साहू राजा के राज्य का लोभ करता है इसलिए हम लोग उसका बचाव करने के लिए दक्षिण पर चढाई करते हैं। शत्रुओ के तैयार होने से पहले ही बाजीराव उनका सामना करने का निश्चय कर चुका था। यद्यपि उसकी सेना सख्या मे कम थी, परन्तु उसमे पुराने पायगा[7] के सवार थे और कितने ही अच्छे-अच्छे कीर्ति प्राप्त मरहठा मानधारी सरदार भी थे इसलिए वह शीघ्रता से गुजरात की ओर बढ़ा और तुरन्त ही नर्मदा को पार कर गया। यहां, पीलाजी गायकवाड के पुत्र दामाजी की अध्यक्षता में एक फौज की टुकडी के साथ उसकी सेना के अग्रभाग की मुठभेड़ हुई और वह बुरी तरह हारा, परन्तु बाजीराव इस अवरोध से हताश न हुआ। वह आगे बढा और पीलाजी के अधिकारस्थ डभोई तथा वड़ोदा नगरों के बीच मे उसका शत्रु से सामना हुआ और यहा पर उसकी निर्णायक विजय हुई जिससे मरहठा राज्य पर सत्ता स्थापित हो गई।

यह महत्वपूर्ण लडाई पहली अप्रैल सन् 1731 को हुई थी। बाजीराव ने, जब उसके देशवासियो के साथ लड़ाई करने का प्रसग आया तो, सदा की नीति के विपरीत उसने मेलजोल बढाने का निश्चय किया। सेनापति के नए सिपाही टिक न सके और पहला हमला होते ही भाग गए। कन्ताजी ने भी भागने मे उनका साथ दिया और अब खडेराव दाभाड़े के कुछ पुराने साथी ही उसके पुत्र की रक्षा करने को रह गए। बाजीराव घोड़े पर सवार होकर लड़ रहा था और अवसर के अनुकूल वीरता दिखा रहा था। उसका शत्रु हाथी पर था; जब उसने अपनी सेना को भागते हुए देखा तो हाथी के पैरों मे साकले डाल देने की आज्ञा दी। रणक्षेत्र में तुमुल युद्ध हुआ, परन्तु बहुत देर तक निश्चय नही हो सका कि कौन-सा पक्ष विजयी होगा। अन्त मे, जब त्र्यम्बकराव ने अपने बाण को कान तक खीचा तो अचानक एक गोली आकर लगी और वह गिर पडा।

---

1. बालाजी विश्वनाथ	सन् 1714 से 1720 तक
2. बाजीराव प्रथम (बल्लाल)	सन् 1720 से 1740 तक
3. बालाजी बाजीराव	सन् 1740 से 1761 तक
4. माधव राव	सन् 1761 से 1772 तक
5. नारायण राव	सन् 1772 से 1773 तक
6. सवाई माधव राव	सन् 1773 से 1795 तक
7. बाजी राव द्वितीय	सन् 1796 से 1818 तक

7. इतिहास प्रसिद्ध महाराष्ट्र रिसाले तीन भागो में बांटे जा सकते है (1) खामा (2) सिलहदार और (3) पिंडारी।

इस प्रकार विजय प्राप्त करने के पश्चात् बाजीराव सरबुलन्द खां की सलाह से रणक्षेत्र मे घायल होकर भागे हुए पीलाजी के नगर बडोदा पर अधिकार करने के लिए तैयार हुआ। परन्तु वह मन्त्रणा अगस्त के महीने मे हुई थी अतः वर्षा ऋतु नजदीक आ जाने के कारण पेशवा सतारा लौट गया।

प्राय: प्रत्येक घरेलू युद्ध के बाद जैसे भाव जनता मे उत्पन्न होते है वैसे ही दाभाड़े पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् बाजीराव के प्रति भी कितने ही लोगो में ईर्ष्या पैदा हो गई थी जिसे मिटा देना कोई आसान काम नही था। पेशवा ने जनता का समाधान करने के लिए अनेक प्रयत्न किए। उसने त्र्यम्बकराव दाभाडे के बालक पुत्र यशवन्त राव को उसकी माता की देखरेख मे सेनापति का पद प्रदान किया; और पहले की तरह पीलाजी को ही उसका सहायक नियुक्त किया तथा उसकी वशपरपरागत पदवी 'शमशेर बहादुर' के साथ 'सेना खासखेल' की उपाधि भी प्रदान की। इसके बाद, भविष्य मे झगडे न हो इसलिए साहू राजा के समक्ष एक लेख तैयार किया गया जिस पर पेशवा और सेनापति ने 'सही' की। उस लेख मे यह निश्चय हुआ कि गुजरात और मालवा मे एक दूसरे की अधिकारगत भूमि मे वे नहीं घुसेंगे। सम्पूर्ण गुजरात प्रान्त की व्यवस्था सेनापति करेगा, परन्तु वह वहां की उपज का आधा भाग पेशवा की मारफत सतारा सरकार को देगा।

सरबुलन्द खां ने बादशाह को मदद भेजने के लिए प्रार्थना करते हुए लिखा था कि यदि उसकी बात पर ध्यान नही दिया जाएगा तो इससे बहुत आपत्ति व अपमान का सामना करना पड़ेगा। इस पर ध्यान देना तो एक ओर रहा, दरबार मे उसके द्वारा मरहठों को चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकार दे देने की बात पर बहुत अप्रसन्नता प्रकट की गई और मारवाड़ के राजा अभयसिह को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। अभयसिह सेना लेकर अपने नए पद पर अधिकार प्राप्त करने के लिए रवाना हुआ। सरबुलन्द खां ने थोडी देर तक तो उसका सामना किया, परन्तु फिर वह दिल्ली चला गया जहा पर उसके साथ अनुचित व्यवहार हुआ व उसको बहुत अपमान सहना पडा।

उस समय सरबुलन्द खां के नीचे भडौंच का अधिकारी अब्दुल्ला बेग था। पहले यह परगना निजामउल मुल्क को व्यक्तिगत परगने के रूप मे मिला था। उसी का नौकर अब्दुल्ला बेग उससे 'नेक आलम खा' का पद प्राप्त करके अब इस परगने को अपना समझने लगा था और न अभयसिह की परवाह करता था न मरहठों की।

सन् 1732 ई० में अभयसिह के एक अधिकारी ने बड़ोदा पर फिर कब्जा कर लिया। परन्तु, प्रजा पीलाजी गायकवाड़ को बहुत मानती थी। वह मैदान में आ डटा और कितनी ही लड़ाइयां जीतकर उसने मुख्य २ किले अपने अधिकार में

पता : मो-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

ले लिए । राठौड सरदार ने पीलाजी को समाप्त करने का निश्चय किया और इसी कार्य को पूरा करने के लिए उसने सन्धि की सलाह करने के बहाने दूत भेजे । उस समय पीलाजी ठासरा परगने के डाकोर ग्राम मे, जहा श्री रणछोड़ जी का प्रसिद्ध मन्दिर है, पडा हुआ था । वही पर ये दूत उससे मिले । पीलाजी को किसी प्रकार का सन्देह न हो इसलिए वे उसके पास बार-बार आते जाते रहे । एक दिन वे शाम तक उसके पास ठहरे और जब अंधेरा होने लगा तो विदा होकर तम्बू से बाहर निकले । उनमे से एक मनुष्य 'कोई आवश्यक बात कहनी बाकी रह गई है' इस बहाने से वापस गया और उसने पीलाजी के कान मे बात कहने के लिए झुक कर उसके कलेजे मे कटार भोंक दी ।

पीलाजी गायकवाड़ पर घात करने से अभयसिह ने जैसी आशा की थी वैसा लाभ न हुआ । बडोदा के पास ही पादरा ग्राम का देसाई पीलाजी से मित्रता रखता था, उसने देश के भीलो और कोलियों को खडा किया । पीलाजी के भाई महादजी यह गायकवाड़ ने जम्बूसर से प्रस्थान किया और वड़ोदा वापस ले लिया । तभी से गायकवाड वंश के अधिकार में चला आता है । पीलाजी का बडा लडका दामाजी वडी भारी सेना लेकर सोनगढ़ से[8] रवाना हुआ और पूर्वी गुजरात के कितने ही मुख्य-मुख्य परगनो पर अधिकार करने में कृतकार्य हुआ । इसके पश्चात् वह जोधपुर तक आक्रमण करता हुआ चला गया इसलिए अभयसिह को, अहमदाबाद अपने एक सहायक के भरोसे छोड कर, अपने वशपरपरागत राज्य की रक्षा के लिए घर की ओर रवाना होना पड़ा ।

अब दामाजी गायकवाड गुजरात मे जम बैठा और उसने दो ही वर्ष मे अपने पिता के प्रतिस्पर्द्धी कन्ताजी कदम भाण्डे को उस प्रान्त से निकाल दिया । दूसरे ही वर्ष सन् 1735 ई० में कन्ताजी होल्कर को साथ लेकर गुजरात पर चढ आया । वे अचानक आए और अहमदाबाद के उत्तर मे कितने ही शहरों को लूटकर ईडर, पालनपुर और बनास नदी तक के भाग से कर वसूल करके जैसे आए थे वैसे ही शीघ्रता से लौट गए । थोडे ही समय बाद अभयसिह को गुजरात से अलग करने की आज्ञा आ गई और नजीब-उद्दौला मोमिन खा को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया, परन्तु अभयसिह का सहायक रतनसिंह अहमदाबाद पर अधिकार न होने देता था इसलिए नए सूबेदार को दामाजी गायकवाड़ से सहायता लेनी पड़ी । दामाजी

8. सोनगढ भीलों का एक प्राचीन किला था । यह डाँग वन के पश्चिमी किनारे पर सूरत से लगभग 40-50 मील की दूरी पर स्थित था । पीलाजी ने 1719 ई० मे इस पर अधिकार कर लिया और तभी से यह दामाजी की लुटेरी सेना के पड़ाव का मुख्य स्थान रहा । बाद में दामाजी 1766 ई० मे पाटन आ गया। गुजरात मे यह सोनगढ़ गायकवाड़ वंश का "पालना" (झूला) कहलाता है

और मोमिन खा पगडी- बदल भाई बन गए और गायकवाड़ ने रतनसिंह को गुजरात से निकालने के लिए रगाजी नामक सरदार की अध्यक्षता में एक फौज भेजी। रंगा जी और मोमिन खा ने नगर पर हमला किया और तुरन्त ही उन्हें पीछे हटना पडा परन्तु अन्त में रतनसिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया। रगाजी और मोमिन खा ने 20 मई 1737 के आसपास अहमदाबाद पर अधिकार किया और यह तय हुआ कि प्रान्त के शासन तथा आय में मुगलों और मरहठों का बराबर-बराबर हिस्सा रहेगा। यह एक ऐसा समझौता था जिससे भविष्य में दोनों पक्षो में निरन्तर झगडे होते रहने की आशंका बन गई। उधर उसी वर्ष बादशाह ने निजाम उलमुल्क को दिल्ली बुलाकर समझाया बुझाया और उसके लड़के को नज़ीबउद्दीन के नाम से एक बार फिर गुजरात व मालवा का शासक नियुक्त कर दिया और यह शर्त ठहरी कि वह मरहठो को उस प्रान्त से निकाल दे। परन्तु, इस शर्त को पूरी करने की शक्ति निजाम में न थी। पेशवा से गहरी लडाई लड़ चुकने के बाद उसे सन्धि करनी पडी जिसमे यह निश्चित हुआ कि वह बाजीराव को बादशाह से सम्पूर्ण मालवा प्रान्त और चम्बल तथा नर्मदा के बीच के प्रदेश पर पूरे अधिकार दिला देगा।

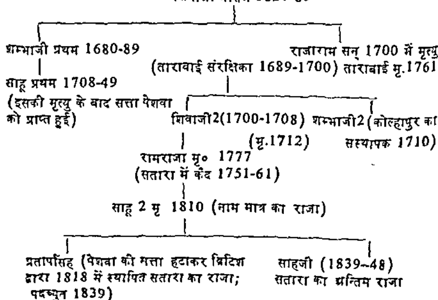
दामाजी गायकवाड अब सत्ताधारी होने लगा था क्योंकि त्र्यम्बक राव की विधवा की ओर से व्यवस्थापक के रूप में वह दाभाडे की सम्पूर्ण सैन्य-शक्ति का उपयोग करता था और यशवन्तराय यद्यपि इस कार्य को करने के लिए काफी बड़ा हो गया था, परन्तु उसमे इतनी योग्यता न थी। दामाजी गुजरात में सरदेशमुखी आदि मरहठा कर और काठियावाड से वार्षिक खडणी (कर) फरवरी सन् 1743 में मोमिन खाँ की मृत्यु होने तक लगातार वसूल करता रहा। बादशाह की आज्ञा से अब्दुल अजीज खा गुजरात का नया सूबेदार नियुक्त हुआ था, वह उस समय दक्षिण में औरगाबाद में था। वहा से कुछ सहस्र मनुष्यो को साथ लेकर वह अपने नये पद पर अधिकार करने के लिए सूरत होता हुआ भड़ौंच के पास अकलेश्वर पहुचा। यहा पर अचानक दामाजी के पक्षवालों ने उस पर हमला कर दिया और उसकी टुकड़ी को पूरी तरह छिन्नभिन्न कर डाला। इसके बाद दिल्ली से फकीरुद्दौला को (1744 ई० में) अहमदाबाद पर कब्जा करने के लिए भेजा गया परन्तु रगाजी की अध्यक्षता में दामाजी की फौज ने उसका सामना किया और उसको अहमदाबाद पर अधिकार नहीं करने दिया। उस समय दामाजी सतारा में था इसलिए अवसर देखकर उसके भाई खण्डेराव ने प्रबन्ध में कितने ही अपने अनुकूल हेर-फेर कर डाले। उसने रंगाजी को हटाकर किसी अपने पक्ष के आदमी को अहमदाबाद का अधिकारी नियुक्त किया और फकीरुद्दौला को भी कुछ सहायता दी, परन्तु दामाजी तुरन्त ही वहा पर आ पहुंचा और उन दोनो के सम्बन्ध मरहठो के स्वार्थ को कुछ हानि पहुंचाने के पहले ही टूट गए। उसने बोरसद का किला व नडियाद का उपजाऊ परगना खंडेराव को दे दिया और उसको बड़ोदा में अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके रख दिया।

पता : मो-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

इस बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य से दामाजी अपने कुटुम्बियों पर अपने बडप्पन का सिक्का जमाने व उसकी सत्ता मे बाधा डालने वाली कितनी ही बातो को रोकने मे सफल हुआ। उसने फकीरुद्दौला के अधिकार को स्वीकार नही किया और इसके विपरीत अपने पुराने मित्र मोमिन खा के भाई व लडके का पक्ष लिया।

सन् 1751 ई० मे शिवाजी के पुत्र राजाराम की माता ताराबाई ने दामाजी गायकवाड को सतारा आकर राजा व मरहठा राज्य को ब्राह्मणो के पंजे से छुडाने के लिये लिखा। ताराबाई ने पहले ही राजा को बहुत समझाया था कि उसके नौकर बालाजी बाजीराव ने उसकी जिस सत्ता का अपहरण कर लिया था उसको वह पुनः प्राप्त करे, परन्तु वह सफल न हुई इसलिए जब उसे दामाजी गायकवाड के आ पहुंचने के समाचार मिले तो उसने पेशवा को सतारा के किले मे बुला कर कैद कर लिया। पहले तो एक बार दामाजी ने पेशवा के सरदारो को हरा दिया और सतारा जाकर ताराबाई से भेट की परन्तु बाद मे उसे पीछे हटने और पेशवा से समझौता करने के लिए बाध्य होना पडा। दामाजी को अपने वश मे देखकर पेशवा ने उससे अब तक के गुजरात से वसूल हुए कर के रुपये व उस देश का बहुत-सा भाग सौंप देने के लिए कहा। दामाजी ने उत्तर दिया 'मैं तो दाभाडे का मातहत हूँ, मैं इस मांग को पूरी नही कर सकता।' इस पर पेशवा ने गायकवाड और दाभाडे के कितने ही कुटुम्बियो को एक गढी मे कैद कर दिया और फिर चालाकी से गायकवाड की छावनी को लूट लिया तथा दामाजी को कैद करके पूना भेज दिया। वहा से छोड़ने के पहले पेशवा ने उसके सामने बडी-बडी सख्त शर्ते रखी—कि गुजरात के चढ़े हुए कर के रूप मे पद्रह लाख रुपये जमा कराया जाए और जो प्रदेश गायकवाड वश के अधिकार मे है उसका आधा तथा जो वह भविष्य मे जीते उसका आधा पेशवा के अधिकार मे दे दिया जाए। दामाजी ने आधा प्रदेश व जहा-जहा से कर, उपज का भाग, सरदेशमुखी व लूट का धन मिले उसमें से खर्चे का रुपया कम करके बाकी मे से आधा भाग देना स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त, आवश्यकता पड़ने पर पेशवा की सहायता के लिए दस हजार घोडे रखने, दाभाडे के सहायक के पद से उसके भाग के गुजरात प्रान्त की आय में से पांच लाख बीस हजार रुपया वार्षिक कर जमा कराने, राजा के नौकरों के खर्चे के लिए कुछ वार्षिक रकम देने, इस समझौते के फलस्वरूप अधिकार मे आए हुए परगनो मे थाने नियुक्त करने मे पेशवा की सहायता करने और सम्पूर्ण सौराष्ट्र द्वीपकल्प में से कर वसूल करने के कार्य में मदद देने की शर्तें भी दामाजी ने कबूल की। उक्त समझौते पर अमल करने के लिए पेशवा के छोटे भाई रंघुनाथ राव अथवा राघोबा ने गुजरात प्रान्त पर चढाई की। ५। को कैद से छोड दिया गया था इसलिए वह भी अपनी सेना लेकर प्रान्त में उससे आ मिला। अब वे दोनों मिलकर कर वसूल करते और देश पर करते हुए आगे बढते चले गए। इस तरह अहमदाबाद के किले तक ५हु मार्ग मे कोई बाधा न आई।

उस समय गुजरात की राजधानी (अहमदाबाद) जवामर्द खां बाबी के हाथ मे थी। इसको स्वर्गीय मोमिन खा के भाई ने शुरू में मुगलो के अधिकार में जो भाग था उसका अफसर नियुक्त किया था, परन्तु जब दामाजी कैद में पड़ा था उस समय इसने सम्पूर्ण शहर पर अपनी सत्ता जमा ली थी और गायकवाड़ के लिए केवल कर उगाहने का अधिकार मात्र छोड़ दिया था। जब राघोबा और दामाजी अहमदाबाद पहुंचे तो उस समय जवांमर्द खा पाल्हनपुर गया हुआ था, परन्तु वे कोट की दीवारों पर चढ़ कर नगर पर कब्जा करते इसके पहले ही वह आ पहुंचा जिससे किलेदारो मे नया उत्साह उत्पन्न हो गया और उन्होंने अधिक दृढ़ता के साथ हमले को रोका। जवांमर्द खां को इस कार्य के उपलक्ष में बहुत प्रतिष्ठा मिली और नगर छोड़ देने पर पाटण, बडनगर, राधनपुर, बीजापुर और कुछ दूसरे परगने भी उसको दिए गए। अन्त में, सन् 1755 ई० के अप्रेल मास मे अहमदाबाद पर मरहठो का पूरा कब्जा हो गया। वहा के राजस्व को पेशवा और गायकवाड आधा-आधा बाट लेते थे, परन्तु किलेदार सब पेशवा की तरफ के रहते थे और आजकल जो किला गायकवाड की हवेली कहलाता है उसमें केवल दामाजी गायकवाड़ की फौज रहती थी।





पता : बी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

प्रकरण दूसरा

गुजरात में ब्रिटिश का आगमन

बुशियर (Bourchier) 17 नवम्बर 1750 से बम्बई का गवर्नर नियुक्त हुआ। इसके बाद मरहठो और अग्रेजो के सम्बन्धो मे अधिक निकटता आने लगी। उस समय सूरत मे मुगलों की सत्ता बहुत कमजोर पड जाने से वहा पर अव्यवस्था फैल गई थी इसलिए सुव्यवस्था स्थापित करने और अपने हक व नगर मे व्यापार की नीव जमाने के लिए अग्रेजो को पेशवा का आश्रय लेने की बहुत आवश्यकता थी। परन्तु, पेशवा उनको मनचाही सहायता न दे सका और जब उन्होने अपना कार्य बिना सहायता लिए ही अपने-आप आरम्भ कर दिया तो बम्बई बन्दर पर चढाई करने के बहाने पेशवाने उनको असफल कर दिया। यद्यपि अग्रेजो को बहुत से अफसरों व सैनिको की हानि उठानी पडी फिर भी उन्होने 4 मार्च, 1759 ई० को सूरत का किला अपने अधिकार मे ले ही लिया। थोडे ही समय बाद उनको गुजरात मे भी अपना राज्य जमाने के लिए प्रयत्न करने पडे। सन् 1771 मे इन लोगो ने भडौच के नवाब के विरुद्ध सूरत वाले अधिकारों के लिए दावा किया। कुछ दिनो के लिए तो यह खटपट टल गई और नवाब से सन्धि भी हो गई—परन्तु, इस सन्धि की बहुत सी शर्तें नवाब को लाभप्रद नही थी इसलिए उसने जल्दी ही उसको रद्द कर दिया। अग्रेजो ने पूर्व-नियोजित तैयारी से आक्रमण कर दिया और 18 नवम्बर, 1772 को भडौच पर कब्जा पा लिया। इस लड़ाई मे अग्रेजो का एक निपुण और वीर योद्धा जनरल डेविड वेडरबर्न मारा गया।

इतने ही मे दामाजी गायकवाड अपने पीछे चार पुत्रो को छोड़कर मर गया। इनमे सबसे बड़ा सयाजी राव था परन्तु उसका जन्म दामाजी की दूसरी स्त्री से हुआ था इसलिए पहली स्त्री के पुत्र गोविन्दराव ने अवस्था मे छोटा होने पर भी गद्दी पर अपना अधिकार प्रकट किया। माणकजी और फतहसिंह दोनो ही दामाजी की छोटी स्त्री से पैदा हुए थे। माधवराव पेशवा ने पहले तो गोविन्दराव के हक को मान लिया परन्तु बाद मे उसकी न्यायसभा ने उस बात को अस्वीकार कर दिया और सयाजीराव को 'सेना खासखेल शमशेर बहादुर' की पदवी दे दी। परन्तु, सयाजी राव मूर्ख था इसलिए पेशवा ने फतहसिंह को उसका सहायक नियुक्त किया। माधवराव की मृत्यु और उसके भाई नारायण राव के वध के पश्चात् उनके चाचा राघोबा, जो बाजीराव का छोटा पुत्र था, कुछ समय के लिए पेशवा नियुक्त हुआ।

उसने सयाजी राव को हटाकर गोविन्दराव को गायकवाड की गद्दी पर बिठाया। फतहसिंह से राज्य लेने के लिए गोविन्द राव ने तुरन्त गुजरात की ओर प्रस्थान कर दिया और उसी समय से इन दोनो भाइयो के सहायकों में लम्बे झगड़े का सूत्रपात हुआ।[1]

राघोवा का अधिकार अधिक दिन न चला। होल्कर और सिंधिया ने पूना के मन्त्रियो से मिलकर 1775 ई० के जनवरी मास मे उसका सामना किया इसलिए वह भागकर गुजरात मे बडोदा चला गया जहा पर उसका सहायक गोविन्दराव अपने भाई को पकडने मे लगा हुआ था। पदभ्रष्ट पेशवा के गुजरात में आने का एक और भी आशय था कि बम्बई सरकार से सहायता प्राप्त करने के लिए कुछ समय पहले के हुई सन्धि-चर्चा को वह फिर से चलाना चाहता था। अन्त मे 6 मार्च के दिन दोनों पक्षों मे सन्धि हो गई और अंग्रेजो ने राघोवा को सैनिक-सहायता देना स्वीकार कर लिया। तदनुसार उसकी गुजरातस्थित सेना से मिलने के लिए कुछ फौज बम्बई से जहाज द्वारा रवाना की गई। सूरत पहुचने पर इस सेना को राघोवा की सकटमयी स्थिति का हाल विदित हुआ। मन्त्रियो की सेना ने उसको बडोदा का घेरा उठाने और माही के पास अडास के मैदान मे युद्ध करने को बाध्य

1. सूरत का बन्दरगाह ही ऐसा स्थान है जहां से ब्रिटिश लोगों का व्यापार भारत मे पनपा। सब से पहले जो अंग्रेज वहा आकर उतरा था वह विलियम हॉकिन्स (William Hawkins) था। वह 1608 ई० मे हैक्टर (Hector) नामक जहाज मे आया था। अंग्रेज उसी समय से लगे रहे और पुर्तगालियो का प्रबल विरोध होते हुए भी मुगल दरबार से किसी तरह सूरत में फैक्ट्री कायम करने का फरमान उन्होंने प्राप्त कर लिया। बाद में, यह स्थान पश्चिमी भारत मे ब्रिटिश फैक्ट्रियो का केन्द्र बन गया; बम्बई में अंग्रेजों ने 1661 ई० में स्थान प्राप्त किया परन्तु वह स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुकूल नही रहा। ओविङ्गटन (Ovington) का कहना है कि बम्बई में मनुष्य की जिन्दगी दो बरसात की ही होती है। सूरत पर हमले बहुत होते थे। शिवाजी ने 1664 और 1670 ई० मे इसको ध्वस्त किया; इसलिए धीरे-धीरे पश्चिमी समुद्र-तट पर बम्बई ही अंग्रेजो का अड्डा बन गया। इस रद्दोबदल के समय मे एक विचित्र घटना यह हुई कि 1683–4 मे कीगविन (Keigwin) ने विद्रोह कर दिया; उसने कहा कि बम्बई मे उसका अधिकार (इंगलैण्ड) के बादशाह की ओर से था, उसने सूरत में रहने वाले कंपनी के गवर्नर सर जॉन चाइल्ड (Sir John Child) को अस्वीकार कर दिया।

—देखिए स्ट्रैची (Strachey) लिखित Keigwin's Rebellion (Clarendon Press, 1916)

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

किया जहां पर उसकी पूर्ण रूप से हार हुई। कर्नल कीटिंग (Col. Keating) की अध्यक्षता मे अंग्रेजी सेना पदच्युत पेशवा राघोवा को लेकर खम्भात की ओर रवाना हुई और 17 मार्च को वे लोग जमीन पर उतरे। एक महीना वीतते-वीतते राघोवा की भागी हुई सेना भी उनसे धर्मज नामक गाव मे आ मिली। यह ग्राम खम्भात से ग्यारह मील उत्तर मे है। अब यह सयुक्त फौज 3 मई को मातर पहुची। इस स्थान से इन लोगों ने अपना रुख बदल लिया और पूना जाने के विचार से 5 मई को मातर से रवाना होकर आठ तारीख को नडियाद जा पहुचे। यहा एक सप्ताह ठहर कर उन्होने नगर से कर वसूल किया। इसके बाद यह सेना नडियाद से माही की ओर प्रस्थान करके अडास पहुची। यह वही स्थान था जहां पर पहले रुस्तम अली परास्त होकर मारा गया था और जहा पहले राघोवा की पराजय हुई थी। इसी स्थान पर 18 मई के दिन युद्ध हुआ और मरहठो की हार हुई, परन्तु अंग्रेजों का भी बहुत ज्यादा नुकसान हुआ। 29 तारीख को कर्नल कीटिंग भडौच आया और अपनी सेना के घायलों को वही छोड कर नर्मदा के पास पडाव डाले हुए शत्रुओं पर उसने हमला किया। परन्तु, उसकी मरहठी सेना की अव्यवस्थित चाल से शत्रुओं को पता चल गया और वे अपनी तोपें नदी मे डालकर उत्तरी किनारे की ओर चले गए। अब, यह निश्चय हुआ कि वर्षा ऋतु तो गुजरात ही मे बिताई जाए और अच्छा मौसम आते ही पूना की ओर प्रस्थान कर दिया जाए। ब्रिटिश फौजो के लिए वर्षा ऋतु डभोई के किले मे बिताने की बात तय हुई इसलिए कर्नल कीटिंग ८ जून को नर्मदा के उत्तरी किनारे-किनारे उधर रवाना हुए। भावा पीर की तरफ शत्रुओ पर अचानक छापा मारने का प्रयत्न करने के बाद अंग्रेजी सेना नदी का किनारा छोडकर डभोई की तरफ मुड गई। असाधारण वेग के साथ वर्षा शुरू हुई इसलिए सामने किसी शत्रु के न होते हुए तथा निश्चित स्थान की दूरी 20 मील से अधिक न होते हुए भी अंग्रेज अफसरो को अपने लश्कर के साथ अणहिलपुर के महाराजाओ द्वारा बनवाए हुए काराजीर्ण किले की चारदीवारी मे शरण लेने के लिए पहुंचने मे पद्रह दिन से भी अधिक समय लग गया।

गुजरात पर पहली ब्रिटिश चढाई का इस प्रकार अन्त हुआ। यद्यपि यह प्रयत्न बिलकुल निष्फल तो नही कहा जा सकता परन्तु इसका कोई तात्कालिक फल भी नही मिला। बगाल मे नए अधिकारों के साथ कायम हुई प्रधान सरकार ने पदच्युत पेशवा का पक्ष लेने की बात का समर्थन नही किया इसलिए दोनो पक्षों मे शत्रुता बंद हो गई और वर्षा के बाद रास्ते खुलते ही कर्नल कीटिंग का लश्कर राघोवा को साथ लेकर सूरत लौट आया।

कुछ वर्षों बाद अंग्रेजों के साथ ही पूना सरकार की सीधी लडाई हुई। इस लड़ाई का प्रधान कारण प्रसिद्ध नाना फडनवीस[2] था। पहली जनवरी सन् 1780

2. नाना फडनवीस माधव राव प्रथम का मंत्री था। माधव राव 1772, मर गया और उसका भाई नारायण राव गद्दी पर बैठा परन्तु 17

को अंग्रेजी सेनापति जनरल गोडार्ड (Gen. Goddard) अपनी फौज के साथ सूरत से रवाना हुआ और ताप्ती नदी को पार करके उत्तर की तरफ चला। जल्दी ही उसका तोपखाना व रसद भी आ पहुंची और वह डभोई के किले पर, जो उस समय पेशवा के अधिकार में था, हमला करने के लिए आगे बढ़ा। उधर, अंग्रेज सरकार के असैनिक अफसरों ने मिलकर एक फौज बना ली और नाना फड़नवीस के पक्षकारों को सूरत और भड़ौंच के परगनों से बाहर निकाल दिया। अठारह जनवरी के दिन जनरल गोडार्ड का लश्कर डभोई के आगे पहुंचा और दो दिन बाद गोलाबारी शुरू करने की तैयारियां हो रही थी कि मरहठा किलेदार रात्रि को किला खाली करके चले गए। फतहसिंह को उस समय गायकवाड़ राज्य का मालिक स्वीकार कर लिया गया था और उसके साथ सन्धि चर्चा भी चल रही थी। कुछ समय बाद उसने एक दूसरे के शत्रु के विरुद्ध सहायक होने की शर्त पर हस्ताक्षर कर दिए। इस सन्धि-पत्र की शर्तों के अनुसार माही नदी के उत्तर में जो पेशवा का राज्य था वह गायकवाड़ को मिला और सूरत व भड़ौंच के जिलों में जो गायकवाड़ की जमीनें थी वह अंग्रेज सरकार के अधिकार में आ गई। जनरल गोडार्ड उत्तर की ओर बढ़ता रहा और १० फरवरी को पहले-पहल गुजरात की मुसलमानी राजधानी के आगे उसने अंग्रेजी झण्डा फहराया। मरहठा सूबेदार ने आत्मसमर्पण नहीं किया इसलिए 12 तारीख को गोलाबारी शुरू हुई और दूसरे ही दिन किले की दीवार में घुसने का रास्ता बना लिया गया। मनुष्यता के नाते, दया के भावों और शहर में

में ही उसके काका रघुनाथ राव के षड्यन्त्र द्वारा वह मार दिया गया। नारायण राव ने हकदार माधवराव द्वितीय की भरपूर सहायता की और उसे रघुनाथ राव के षड्यन्त्रों से बचाता रहा। सन् 1776 ई० में हुई पुरन्धर की सन्धि तक अंग्रेज रघुनाथ राव की सहायता करते रहे। नाना फड़नवीस ने बड़ी चतुराई के साथ अंग्रेजों से दो युद्ध किये जिनका अन्त 1782 की सालबाई की सन्धि से हुआ। उसने माधवराव द्वितीय को पूर्णतया अपनी देखरेख में रखा परन्तु अन्त में 1795 में वह आत्मघात करके मर गया। नाना फड़नवीस ने बाजीराव द्वितीय को भी कुमार्गों से बचाने का पूर्ण प्रयत्न किया परन्तु प्रतिस्पर्द्धी सिन्धिया की चालों के कारण वह असफल हुआ और अन्त में उसकी बुरी आदतों के कारण ही बाजीराव का पतन हुआ। नाना फड़नवीस की मृत्यु 1800 ई० में हुई। वह बुद्धिमान् और देशभक्त राजनीतिज्ञ था तथा अंग्रेजों का बड़ा भारी शत्रु था।

[अधिक जानकारी के लिए Grant Duff, Vol. II, chap xli, Autobiographical Memoir of the early life of Nana Farnavis, trans. by Briggs in T. R. A. S. 1829 और Memoir by A. Macdonald (Bombay ...ican Mission Press, 1851) देखना चाहिए।

अत्याचार न हो इन विचारो को लेकर, दूसरे दिन हमला बन्द रखा गया और यह प्रतीक्षा की गई कि शायद किलेदार आत्म-समर्पण कर दे। परन्तु, जब ऐसा न हुआ तो पन्द्रह तारीख को सुबह अंग्रेज सिपाहियो की टोलिया अन्दर घुसने के लिए तैयार हुई। अब, किलेदारो ने भी युद्ध किया परन्तु जब उनके तीन सौ आदमी मारे गए तब वे परास्त हो गए। इस प्रकार गुजरात की राजधानी पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इतने ही मे जनरल गोडार्ड को खबर मिली कि सिन्धिया और होल्कर बडी भारी घुडसवार फौज लेकर आ रहे है और 29 तारीख को नर्मदा पार करके बड़ोदा के पास आ पहुचे है। अंग्रेज जनरल ने जब उस तरफ कूच किया तो वे अपनी सेना के साथ पावागढ की ओर लौट गए।

इसी बीच मरहठा घुडसवारो ने डभोई को आ घेरा। उस समय डभोई का शासन नागरिक अफसर मि० जेम्स फार्बस के हाथ मे था जो आगे चलकर "प्राच्य संस्मरण" (Oriental Memoirs) नामक पुस्तक के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हुआ। मरहठा घुडसवारो का घेरा किले की दीवारों पर से दिखाई तो देता था परन्तु वह तोप के गोलो की पहुच से बाहर था। किले की रक्षा करने वाले लश्कर मे तीन यूरोपीय अफसरो की अध्यक्षता मे तीन पल्टनें, कुछ यूरोपीय गोलन्दाज व नाविक सिपाही और पाच टुकड़िया सिन्धी व अरब पैदल सिपाहियो की थी। एक नागरिक और एक फौजी अफसर उस समय मरहठो की छावनी मे मेहमान थे। इन दोनो ने अपने नगर मे घिरे हुए देशवासियो के पास किसी तरह गुप्त रीति से यह खबर भेजी कि वे आत्मसमर्पण कर दे क्योकि उनके सभी प्रयत्न बेकार जाएंगे। परन्तु, डभोई मे एक दूसरे ही प्रकार का जोश फैल रहा था। जेम्स फार्बस के पास थोडी सी पुस्तको का संग्रह था जिसमे मुख्य रूप से कुछ वार्षिक रिपोर्टें और विश्वकोष भी मौजूद थे। इन पुस्तको मे से उसने कितने ही सन्धि-प्रस्ताव पढ रखे थे और वह जानता था कि यदि आवश्यकता आ ही पडे तो सम्मानपूर्ण शर्तों पर सन्धि की जाए। इसके अतिरिक्त उसने दुर्ग निर्माण विद्या, गोलाबारी आदि ऐसे ही अन्य विषयो पर भी ध्यानपूर्वक मनन किया था इसलिए उसने किले की दीवारो, बुर्जों व दरवाजो की मजबूती कराने व मरहठी तोपो का उपयोग करने का प्रबन्ध भी कर रखा था परन्तु अहमदाबाद से सेना लेकर जनरल गोडार्ड के आ पहुचने के कारण ये तैयारिया काम मे न आ सकी। उधर मरहठो के लश्कर ने भी अपना घेरा उठा लिया और वे वापस लौट गए।

इसके बाद कितने ही कारणो से बहुत सी हारजीत की लडाइयां होती रही जिनका गुजरात के हितो पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पडता रहा। अन्त मे, 17 मई, सन् 1782 ई० के दिन महादजी सिंधिया[3] की मध्यस्थता मे अंग्रेजों और मरहठा

3. महादजी सिन्धिया अपने समय का सबसे बड़ा सरदार था। सन् 1778 ई० में बम्बई सरकार ने पूना सरकार के विरुद्ध, जो उस समय नाना फड़नवीस के

जाति के सरदारो में सालबाई[4] की सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार, जिस पर 24 फरवरी 1783 तक पूर्ण रूप से अमल नही हुआ था, यह तय हुआ कि 1775 ई० मे लडाई शुरू होने के पहले गुजरात में जो देश जिसके अधिकार मे था वह उसी के पास रहे। वड़ोदा राज्य की भूमि का बटवारा न करना निश्चित हुआ और फतहसिंह से लड़ाई के जमाने का कर उगाहने का पेशवा का अधिकार भी अस्वीकृत हुआ। गवर्नर जनरल ने अपनी परिषद् (कौन्सिल) सहित यह घोषित करते हुए कि महादजी सिन्धिया ने 1779 ई० के जनवरी मास में जो वड़गाव स्थान पर बम्बई सरकार की उत्तम सहायता की और उस समय उनकी निगरानी में जो अंग्रेज भेजे गए थे उनका सत्कार करने व उनको छोड़ देने मे जो दया दिखलाई उस उपकार को मानते हुए भडौच का उपजाऊ परगना उनको भेट कर दिया। इस प्रकार गुजरात के जो परगने मरहठो को वापस मिलने को थे उनमे डभोई, जिनोर और अन्य ऐसे प्रान्त भी थे जो मिस्टर फार्ब्स के अधिकार मे थे, और जिनके लिए उनके पास आज्ञा पहुच गई थी कि वे तुरन्त उन मरहठा अधिकारियो के सिपुर्द कर दिए जावें जो उन्हें सम्हालने के लिए आवें। साथ ही, भडौच के अधिकारी और कौन्सिल को भी आज्ञा मिली कि वे उस प्रसिद्ध नगर और आसपास के उपजाऊ परगनों को महादजी सिन्धिया के गुमाश्ते भास्कर राव के अधिकार में दे दें।

जब डभोई और भडौंच मरहठों को लौटाए गए उस समय का वर्णन 'ओरियन्टल मेमॉयर्स' के लेखक ने किया है। यह वर्णन जानने योग्य और मनोरंजक है। हम इस वर्णन को लेखक के शब्दो में ही यहां पर उद्धृत करते हैं। मिस्टर

अधिकार मे थी, युद्ध की घोषणा कर दी और पूना नगर पर आक्रमण करने के लिए एक फौज भेजी जिसका अध्यक्ष कर्नल ईगरटन (Egerton) था जिसका स्थान शीघ्र ही कर्नल कॉकबर्न (Cockburn) ने ले लिया था। तालेगॉव स्थान पर बहुत कुछ हिचकिचाहट के बाद अंग्रेज सेनापति ने 11 जनवरी 1779 को वापस लौटने का निश्चय किया परन्तु सिन्धिया ने उसको बड़गॉव मे आ घेरा और इस शर्त पर छोडा कि अंग्रेजो ने 1773 से तब तक जो देश जीते थे वे वापस लौटा देंगे। इस अपमानपूर्ण सन्धि को, जिसे प्रायः 'बड़गॉव का समझौता' कहते हैं, बम्बई सरकार ने और इङ्गलिस्तान के डायरेक्टरो ने अस्वीकार कर दिया। इसके बाद ही (1789) सिन्धिया ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और सम्राट का पद ग्रहण किया। दक्षिण लौटने पर उसने नाना फडनवीस के विरुद्ध बालक पेशवा का पक्ष लिया। 1794 में वह मर गया और उसका पोता दौलत राव गद्दी पर बैठा जिसको 1803 ई० मे वैलेज़ली ने असेई के युद्ध में हराया था।

4. यह स्थान मध्य प्रदेश मे है, पहले ग्वालियर (मध्यभारत) रियासत में था।

फार्ब्स कहते हैं कि "जब यह खबर सब जगह फैल गई कि डभोई और उससे सम्बद्ध परगने मरहठों को वापस दे दिए जाएंगे और जब मेरी विदाई का निश्चित दिन आ पहुंचा तो नगर के ब्राह्मण और मुखिया लोग मुझ से दरबार में भेंट करने आए और उन्होंने स्थिति के इस परिवर्तन पर दुःख प्रकट किया। उन्होंने मुझे नजरें भेंट करने की इच्छा प्रकट की परन्तु मेरे अस्वीकार कर देने के कारण उन्हें इतना दुःख हुआ कि मुझे उनसे कहना पड़ा कि मैं एक चीज उनसे मांगना चाहता था परन्तु संकोचवश पहले न मांग सका—अब चूंकि वे मुझे भेंट करना ही चाहते थे इसलिए यदि वे वह वस्तु मुझे दे दें तो मैं उसे बिना किसी सकोच के ग्रहण कर लूंगा। इसके बाद डभोई में बची हुई हिन्दुओं की बहुत सी प्राचीन निशानियों, शहर की टूटी फूटी इमारतों मे कुराई के काम के नमूनों, जहा तहा पडे हुए खम्भो और खण्डित मूर्तियों आदि के विषय मे कुछ आश्चर्य और उनके द्वारा बहुत उपकृत होने का आभार प्रकट करते हुए मैंने बाहरी खण्डहरों में से चुनकर कुछ नमूने ले जाने की आज्ञा मांगी। मैंने यह भी कहा कि मैं इन अवशेषों को यूरोप ले जाकर वहां अपने बगीचे मे इनके लिए एक मन्दिर बनवाऊंगा और वहीं स्थापित करूंगा। मेरी इस प्रार्थना को सुनकर उन लोगो को बहुत आश्चय हुआ और वे सब चुप हो गये। उन्हें यह सन्देह तो नही हुआ कि मैं उनके धर्म का उपहास करूंगा परन्तु उन्होने यह जानने की इच्छा प्रकट की कि एक ईसाई हिन्दुओं की धार्मिक मूर्तियां क्यों रखना चाहता था। यूरोप के लोगों की सामान्य जिज्ञासा, उन्हें इन पूर्वी कुराई के नमूनो को दिखाने का आत्मसतोष और वह आनन्दमयी विचारधारा जो सहस्रो मोदभरे सस्मरणो के साथ प्रिय दूरदेश से अपने देश में लाई हुई इन प्राचीन वस्तुओं को देखकर मेरे मन मे प्रवाहित होगी—यह सब बातें उन लोगों को समझाने मे मुझे कुछ कठिनाई प्रतीत हुई।"

"जिस समय मेरी इस अपूर्व माग पर, कुछ धर्मगुरु ब्राह्मणो के साथ एकान्त मे परामर्श करने के लिए, उन्होंने मुझ से विदा मागी उस समय उनकी आखों से आसू बह रहे थे। जब दूसरे दिन वे लोग मेरे पास आए तो एक ओर तो मेरी विदाई का समय निकट आ रहा था इसलिए उनके चेहरे उदास दिखाई पड़ते थे और दूसरी ओर उन्हे इस बात की प्रसन्नता थी कि वे बडी उदारता के साथ मेरी माग को स्वीकार करने मे समर्थ थे। उन्होने कहा 'आप अपने आदमी भेजकर इच्छानुसार नमूने चुनवा लें और उन्हें मित्रता के नाते अपने देश में ले जाकर मन्दिर मे स्थापित करें।' मैंने ऐसा ही किया और कुछ हिन्दू कारीगरो को भेजकर टूटे-फूटे मन्दिरो की दीवारों मे से कुछ मूर्तिया और 'हीरा दरवाजे' के बाहर की तरफ से कुराई के काम के नमूने मंगवा लिए। ये सब चीजें स्टेनमोर पहाड़ी पर इसी अभिप्राय से बनाई हुई एक अष्टकोण इमारत में आठ विभिन्न अपने-अपने स्थान पर सजावट के रूप में रखी हुई हैं। इस इमारत के ऊपर क नीबू के पेड़ो का झुरमुट है और पास ही में बहुत से सुन्दर-सुन्दर कमरों ।

तालाब है। जब दक्षिण की ओर से बहने वाली मन्द-मन्द वायु से यहां के फूल और पत्ते हिलते है तो मुझे गुजरात के पवित्र तालाबों का स्मरण हो आता है।"

अन्त में ग्रन्थकार भड़ौच के लिए रवाना हुआ और वहां भी उसे ऐसा ही दृश्य देखने को मिला—

"भड़ौच के निवासी ब्रिटिश शासन की सुविधाओं के अभ्यस्त हो हो गए थे इसलिए वे इस नवीन परिवर्तन से असंतुष्ट हुए और भास्कर राव के आगमन की खबर सुनकर डरने लगे, परन्तु, उन्हीं दिनों मे एक ऐसी खबर उड़ी कि मालाबार के तट पर फिर लड़ाई शुरू हो गई इसलिए भास्कर राव के पहुंचने में कुछ देर होगी और भड़ौच के लोगों को एक झूठी आशा बंध गई कि कोई राज्य परिवर्तन नही हुआ है। ब्रिटिश सरकार का ही शासन उन पर बना रहे, इसके लिए विभिन्न जाति और धर्म के लोगो ने किसी प्रकार की प्रार्थना, क्रिया और हवन बलि आदि करने मे भी कमी न की। यह मुझे अच्छी तरह याद है और इसमें जरा भी सन्देह नही है कि जब हम लोगो की विदाई का दिन निश्चित हुआ तो सभी समाज और वर्ग के लोगो मे हार्दिक शोक फैल गया। अंग्रेजो का अधिकार होने से पहले भड़ौच मुगलो के राज्य मे था और यहाँ एक मुसलमान नवाब शासन करता था, इसलिए आगामी परिवर्तन से उनके शासन मे क्या-क्या हेर-फेर होंगे इस बात को वे लोग अच्छी तरह जानते थे। दूसरे देशी स्वेच्छाचारी राजाओं की अपेक्षा मरहठों के राज्य मे स्वेच्छाचार अधिक होता है; वे सभी तरह से निर्दयता-पूर्वक पैसा लूटते है और प्रत्येक सुराज्य की उन्नति सम्पत्ति के साधनभूत व्यापार व कृषि आदि को उनके शासन में किसी प्रकार की भी सहायता नही मिलती। यद्यपि मुसलमानो मे भी धन का लोभ तो कम नही है, परन्तु वे उसे उदारतापूर्वक खर्च भी करते है; वे उपयोगी और सजावट के कामो को प्रोत्साहित करते हैं तथा कला और विज्ञान को सरक्षण देते हैं।

भड़ौच को महादजी सिन्धिया के अधिकार मे देने के लिए 1783 के जुलाई माह की 9वीं तारीख निश्चित की गई थी। उसी दिन भास्कर राव भड़ौच आया और यथाविधि दरबार करके उसका आदर सत्कार किया गया तथा नगर के दरवाजों की कुंजियां उसके हस्तगत करदी गई। नर्मदा नदी को पार करके सूरत पहुंचने के लिए हम तट की ओर रवाना हुए और नगर के मुखिया लोग भी चुपचाप हमारे पीछे-पीछे आए। जब हम लोग कम्पनी के छोटे जहाज मे सवार हुए तो अचानक एक काली बदली उठी और हम पर वर्षा का संपात हुआ। अब, हमारे दु:खी मित्र चुप न रह सके और स्वेच्छाचारी मरहठों के आशंकित अत्याचार को भूलकर करुणा-पूर्ण स्वर मे बोल उठे 'भड़ौच के दुर्भाग्य पर आकाश आसू बहा रहा है।'

मैंने यह सब उल्लेख इस बात का विरोध करने के लिए किया है कि अंग्रेजो पर बहुत से निराधार दोष लगाए जाते हैं व इनके प्रति बहुत सी निर्मूल धारणाए

बनाली जाती है जिन पर यूरोप में सहज ही विश्वास कर लिया जाता है। इसमें कोई सन्देह नही है कि हिन्दुस्तान मे बहुत से उच्च (अंग्रेज) अधिकारियो में से कुछ ऐसे भी है जो अवश्य ही घृणा के पात्र है। हमारे देश मे भी ऐसे अधिकार-प्राप्त लोग निर्दोष नही है। द्रव्य और सत्ता का लालच कभी-कभी बड़े-बडे दृढ विचारो वाले लोगो को भी विचलित कर देता है— परन्तु, अन्त मे वह घडी आ पहुचती है जब कि वे मोह से दूर भागते है और विशुद्ध निर्दोष अन्तःकरण ही मे सुख लाभ करते हैं। धन का गबन करने वाला, यूरोपीय हो अथवा हिन्दुस्तानी, प्रत्यक्ष मे मानवता के नियमो को वह माने चाहे न माने परन्तु हृदय मे विराजमान कोई अदृश्य द्रष्टा उसकी सम्पूर्ण प्रसन्नता व सुख को नष्ट कर देता है और इसके बाद अपने निर्णय मे कभी भूल न करने वाला वह न्यायाधीश अपने न्याय और सत्य के नियमो की अवहेलना करने वाले को पूर्णतया दण्डित करता है। विश्वबन्धुत्व, उदारता और परोपकार बुद्धि के आधार पर कार्य करने वाले जन-सम्प्रदाय पर ये कथित दोष घटित नही होते।"

अब से भड़ौच सिन्धिया के अधिकार मे उस समय तक बना रहा जब तक उसकी ब्रिटिश सरकार से लडाई न हो गई। बड़ोदा की सहायक सेना ने, जो कर्नल वुडिंगटन की अध्यक्षता मे थी, 29 अगस्त 1803 को अचानक हमला करके इस पर अपना अधिकार कर लिया।

फतहसिंह गायकवाड अपने घर के ऊपर के खण्ड से नीचे गिर गया और 21 दिसम्बर, 1789 ई० को उसकी मृत्यु हो गई। अब उसके भाई मानाजी और गोविन्दराव मे रीजेन्सी के लिए झगड़ा हुआ जो चार वर्ष बाद मानाजी की मृत्यु होने तक शान्त न हुआ। गोविन्दराव को अब यद्यपि गद्दी का हक निर्विरोध प्राप्त हो गया था परन्तु पेशवा से राजधानी छोड़कर आने की आज्ञा मिलने मे उसको कठिनाई पडी। पेशवा माधवराव प्रथम गोविन्दराव और उसके पिता को धोदप के पास कैद करके 1768 ई० मे पूना ले गया था। जब मानाजी को गद्दी मिली थी तब उसने पेशवा को 30,13,000 रुपये नजराने के और लगभग 34,000 रु० पेशकश के देने का करार करके सम्मति प्राप्त की थी। अब नाना फडनवीस ने आज्ञा दी कि गोविन्दराव मानाजी के करार को पूरा करे और हाथी घोड़ा इत्यादि के अतिरिक्त लगभग एक लाख रुपया नजराना और भेंट करने की शर्त करने पर उसे पूना से जाने की परवानगी मिल सकती है। इसके उपरान्त तापी नदी के दक्षिण मे गायकवाड को जो हक प्राप्त था वह तथा सूरत बदर मे जकात वसूल करने का हक भी पेशवा को दे देने की माग नाना फडनवीस ने की। गायकवाड ने पेशवा के साथ जो पहले बहुत से कौल-करार कर रखे थे उनके अतिरिक्त भी पूना सरकार के लाभ को दृष्टि मे रखते हुए बहुत सी प्रतिज्ञाए गोविन्दराव से करा लेने की बात नाना फड़नवीस ने मन मे ठानी, परन्तु सालबाई में जो सधि हुई थी उसके विरुद्ध गायकवाड के

का विभाजन होते देखकर ब्रिटिश सरकार बीच मे पडी और नाना फडनवीस ने उनकी बात उचित मानकर 29 दिसम्बर, 1793 को गोविन्दराव को पूना से जाने की इजाजत दे दी।

गोविन्दराव गायकवाड़ सन् 1800 के सितम्बर मास में मर गया। बाजीराव पेशवा के भाई चिमनाजी आपा का सहायक आपाजी सेलूकर गुजरात का सूबेदार था। गोविन्दराव उनके साथ दो वर्ष तक लडता रहा। अपने शासनकाल में बल प्रयोग से रुपया वसूल करने और अन्य अत्याचारो के कारण आपाजी बहुत बदनाम हो गया था। जिस इमारत* मे अहमदाबाद की सेशन कोर्ट बैठती है वह इसीने बनवाई थी। मुसलमान सुलतानों के राजमहलो की नीव पर उसने यह इमारत खड़ी की और जनता के मकानों का मसाला (चूना पत्थर) लूट खसोटकर काम मे लिया तथा लोगो से मुफ्त मे मजदूरी करवाई। उसके बहुत से अत्याचारों में से एक यह भी था कि उसने एक धनवान यूरोपीय सिपाही से कपट-व्यवहार किया और रुपया लेने के लिए बल प्रयोग किया। उस सिपाही का नाम मोशिये जीन (साधारणतया मूसाजान) था। उसका द्रव्य लेने के लिए उसको तोप के मुंह से बधवाकर उडवा दिया गया था। सन् 1800 ई मे जब सूरत का नवाब मर गया तो बम्बई का गवर्नर मिस्टर डकन उस शहर पर कब्जा करने के लिए आया। उस समय उसको मुबारकबाद देने के बहाने गोविन्दराव ने अपने वकीलों को भेजा परन्तु उसका अन्तरग आशय सेलूकर को नष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार का आश्रय प्राप्त करने का था। मिस्टर डकन तो गायकवाड़ से सूरत के आस-पास का चौरासी परगना और सूरत बन्दर की चौथ ले लेने के लिए तैयार ही बैठा था। सेलूकर के विरुद्ध सहायता करने के लिए गोविन्दराव की प्रार्थना पर ध्यान नही दिया गया और इसलिए उस समय चौरासी परगना व सूरत की चौथ के विषय मे कोई सतोषजनक नतीजा नही निकला। इस पर गायकवाड ने अपने ही बल पर सेलूकर को कमजोर करने का निश्चय किया और अहमदाबाद से बड़ोदा के लिए एक सेना रवाना हुई। सेलूकर ने डाकोरजी और काठियावाड़ से अपने सरदारो को बुलाया और नगर के बाहर शाहआलम के रोजे के पास गायकवाड़ की सेना के साथ लड़ाई की। इस लडाई मे उसकी हार हुई और उसे किले मे जाकर शरण लेनी पड़ी। वहा उसके साथियों ने उसको छोड़ दिया और वह कैद कर लिया गया। *नाना फडनवीस से सम्बन्ध रखने के कारण पेशवा

---

* बहुत पुरानी होने के कारण अब यह इमारत उतरवा दी गई है।

* गायकवाड़ को ऐसा करने के लिए छुपे तौर पर पेशवा की अनुमति मिल चुकी थी। पहले तो गायकवाड़ उसे बड़ोदा ले गया; फिर बोरसद के किले में कैद रखा। अन्त मे, ब्रिटिश सरकार की कृपा से वह छोड़ा गया।

[illegible]

सेलूकर से अप्रसन्न रहता था। उसने गुजरात मे अपने हिस्से की आय के हिसाब से पाच वर्ष तक पांच लाख रुपया वार्षिक बडोदा सरकार को देना स्वीकार किया और गायकवाड़ के प्रधान मंत्री रावजी आपाजी[5] के भतीजे रघुनाथ महीपतिराव को (जो काकाजी के नाम से प्रसिद्ध था), अहमदाबाद का सूबेदार नियुक्त किया।

5. रावजी आपाजी और उसका भाई बाबाजी दोनों प्रभु थे—ये दूसरे बहुत से दक्षिणियो की तरह गोविन्दराव के साथ लम्बे प्रवास के बाद 1793 मे पूना आए थे।



प्रकरण तीसरा

आनन्दराव गायकवाड़*

महाराज गोविन्दराव गायकवाड़ की मृत्यु सन् 1800 ई० के सितम्बर मास में 19 तारीख की मध्यरात्रि में हुई। बाबाजी आपाजी और प्रधान सैनिक सरदार मीर कमालउद्दीन खां ने दो बड़े धनिकों, मगल पारख और शामल बेचर, के साथ मिलकर कार्य की व्यवस्था करने का विचार किया। शामल बेचर के अधिकार में अरब का लश्कर था। प्रातः काल कुटुम्ब की सब स्त्रियां इकट्ठी हुई, और स्वर्गीय महाराजा की रानी गेना बाई ने, जो लल्लूर के झाला राजपूत वंश की थी, अपने पति के साथ सती होने का विचार प्रकट किया। परन्तु, राज्य के कार्यकर्ताओं ने उसे सब तरह से समझाबुझाकर रोका और कुरान तथा हिन्दू रीति के अनुसार शपथ खाकर यह आश्वासन दिया कि जिस प्रकार उसके पति के समय में उसकी प्रतिष्ठा और सत्ता थी उसी प्रकार आगे भी कायम रहेगी। इसके पश्चात् गोविन्दराव के शव को अग्निदाह के लिए ले गए और उसका उत्तराधिकारी सबसे बड़ा पुत्र आनन्दराव गद्दी पर बैठा। स्वर्गीय गोविन्दराव का प्रधान रावजी आपाजी उस समय अहमदाबाद था। उसने तुरन्त आकर राज्य का कार्यभार संभाल लिया। गोविन्दराव का एक दासीपुत्र कान्होजीराव था। उसने अपने पिता के जीवनकाल में ही कुछ उपद्रव खड़ा किया था, इस बात को ध्यान में रखते हुए प्रधान आपाजी ने सबसे पहले सेठ साहूकारों और अधिकारियों को वश में करके यह प्रयत्न किया कि कान्होजी राव अब आगे कुछ अड़चन पैदा न कर सके। परन्तु यह बात पूरी न पड़ी और कान्होजी राव ने अपने पक्ष के कुछ सरदारों की सहायता से राज्य पर अधिकार कर लिया और आनन्दराव गायकवाड़ को कैद कर लिया। कान्होजी बड़ा अत्याचारी था। अब, उसे अपने स्वभाव का परिचय देने का पूर्ण अवसर मिला था। उसने राज्य के कार्यकर्ताओं को बहुत ज्यादा त्रस्त किया और राजा आनन्दराव पर यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कोई सख्ती नहीं की परन्तु इतनी घृणा प्रदर्शित की कि उसके भाई की सूनी सम्मति से कान्होजी के विरुद्ध सर्वसाधारण की एक टोली बन गई। 27 जनवरी, 1801 ई० की रात को उसका घर घेर लिया गया और थोड़े से सदगोप के बाद कान्होजी को पकड़ कर आनन्दराव के सामने उपस्थित किया

---

* यहां से हमारा आधार भाटों की दन्तकथाएं और लन्दन के ईस्ट इण्डिया हाउस के दफ्तर के कुछ अप्रकाशित कागज हैं।

गया। उसकी आज्ञा से कान्होजी के शस्त्र छीन लिए गए, बेडियां जड़ दी गई और गुजरात के बीच की पहाडियों मे रामपुर रोतिहा के किले में उसको कैद कर दिया गया। इस घटना के बाद से रावजी आपाजी राज सत्ता का सच्चा संचालक बन बैठा।

अप्रेल का महीना शुरू होते-होते फतहसिंह गायकवाड की पुत्री गजराबाई ने राव जी आपाजी के साथ झगड़ा कर लिया। इस झगडे का कोई कारण तो ज्ञात नही हुआ परन्तु गजरा बाई ने सूरत नगर मे जाकर शरण ली और वर्ष के खतम होते होते तो रावजी के शासन के विरुद्ध असतुष्ट लोगों का एक भयंकर समूह उठ खडा हुआ। पीलाजी गायकवाड ने कड़ी[1] का राज्य अपने छोटे पुत्र खडेराव को दिया था और सेनापति दाभाडे ने, जो उस समय पीलाजी की अधीनता में था, खडेराव को उस राज्य पर दृढ किया और उसको 'हिम्मत बहादुर' की पदवी भी दी। खंडेराव का पुत्र मल्हारराव हुआ, जिसको फतहसिंह गायकवाड ने उसके पिता के राज्य और पद पर नियुक्त किया और गायकवाड के बडे राज घराने से उसका मेल बनाए रखने के लिए 400 घोड़ो से राज्य की सेवा करने की बात भी उससे स्वीकार कराई। यह भी तय हुआ कि यदि वह 400 घोड़ो द्वारा राजसेवा न करना चाहे तो 1,20,000 रुपया राज्य को दे। इस प्रकार वह कड़ी का जागीरदार नियुक्त हुआ। यद्यपि सामान्यतया वह बड़ोदा के राजा का पटावत गिना जाता था फिर भी जिस प्रकार मरहठा राज्य की प्रधान सत्ता होते हुए भी गायकवाड़ अपने राज्य में स्वतत्र शासन करता था उसी प्रकार बड़ोदा राज्य की सत्ता होते हुए वह कड़ी मे पूर्ण स्वतत्रता से अपना शासन चलाता था।

रावजी दीवान का तो कहना था कि उसने मल्हारराव से राज्य का चढ़ा हुआ कर मागा था और वह स्वय कहता था कि उससे कान्होजी राव की दुर्दशा सहन न हुई इसलिए उसने सेना इकट्ठी करना आरम्भ किया। गजराबाई की टोली ने भी मल्हार राव के ही पक्ष का समर्थन किया। अब वह साफ-साफ कहने लगा कि रावजी आपाजी और उनके भाई बाबाजी ने बहुत से अनधिकारपूर्ण और अत्याचार के काम किये हैं इसलिए मुझे उनको शिक्षा देनी है तथा कान्होजी राव और दूसरे गायकवाड़ राजवंशियों को इन अत्याचारी कार्यकर्ताओं ने दुर्व्यवहार करके उनके

1. कड़ी भू. पू. बड़ोदा राज्य के उत्तरी विभाग का मुख्य स्थान माना जाता था। यह अहमदाबाद से 16 मील उत्तर मे है। चौड़ी और मजबूत दीवारों के परकोटे वाला किला अभी मौजूद है। दामा जी गायकवाड ने कड़ी परगना अपने भाई खंडेराव हिम्मत बहादुर को जागीर में दिया था। यह बात पानीपत की लड़ाई के बाद 1761 ई० की है। गायकवाड़ वंश के बड़े और छोटे भाइयो में हमेशा ही झगडा रहा जिस में खडेराव और उसका पुत्र मल्हार राव उलझे रहे। अन्त में, दासीपुत्र कान्होजी का पक्ष लेकर तो मल्हार राव ने अपना नाश ही कर डाला।

उचित अधिकारो से वंचित कर दिया है इसलिए उनको वापस अपने पद पर स्थित करने के लिए मैं आगे आया हूं। स्वर्गीय महाराजा का एक और दासी पुत्र था जिसका नाम मुकुन्दराव था। वह डाकोर में श्रीरणछोडजी के दर्शन करने के बहाने बहुत-सा धन और जवाहरात लेकर वडोदा से रवाना हो गया। उसे वापस बुलाने के लिए मन्त्रियों ने बहुत प्रयत्न किया परन्तु वह न माना और उपद्रव मचाने लगा। इस पर उन्होंने एक सेना भेजी और वह भागकर कड़ी के परगने में मल्हारराव की शरण मे चला गया। मल्हारराव ने पहले ही बीसल नगर और बीजापुर के किलों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था। वह कहता था कि ये किले उसने अपने महाराजा आनन्दराव के लिए जीते थे और उसका साथ देने के लिए विभिन्न स्थानों मे चालीस हजार फौज उसके अधिकार मे मौजूद थी। गायकवाड सरकार की नौकरी मे शिवराम नाम का एक पुराना अफसर था। वह मन्त्रियो के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर मल्हार राव से जा मिला और यह भी मालूम हुआ कि और भी बहुत से आदमी उसका अनुकरण करने के लिए तैयार थे।

अन्त में, लडाई के लिए उद्यत दोनों सेनाएं आमने-सामने आई। बाबाजी और आपाजी ने शाही बाग मे छावनी डाल रखी थी और उनकी फौज की एक टुकड़ी 'काली का कोट' मे पड़ी थी। मल्हारराव अपनी सेना का एक भाग लिए हुए कड़ी मे मौजूद रहा और उसका भाई हनुमन्तराव, दूसरे भाग को लेकर कड़ी से आठ कोस आगे बाबाजी की छावनी से सात कोस के फासले पर कलोल नामक स्थान पर डेरा डाले पड़ा था। छोटी-छोटी तीन मुठभेड़े हुई जिनमें मल्हारराव अपने को विजयी मानता था।

ऐसी स्थिति मे दोनों ही पक्षों ने ब्रिटिश गवर्नर से सहायता मांगी। कान्होजी की तरफ से गजराबाई और उसके मन्त्रियों ने ब्रिटिश सरकार को चौरासी परगना और सूरत की चौथ देना स्वीकार किया (गोविन्दराव ने ही ये दोनों भाग देना स्वीकार कर लिया था, परन्तु उसकी मृत्यु हो गई और पेशवा की अनुमति न होने के कारण इन पर अमल नहीं किया गया था) और इसके साथ ही उन्होंने कहा कि चीखली का परगना भी, जो चौरासी से भी अधिक उपजाऊ है, ब्रिटिश सरकार को दे दिया जाएगा। उधर सन् 1802 ई० के जनवरी महीने में महाराजा आनन्दराव की ओर से रावजी आपाजी ने मिस्टर डकन के पास मीर कमालउद्दीन खां और दो वकीलों को भेजा। इन्होंने, गोविन्दराव के समय मे जो चौरासी परगना और सूरत की चौथ के विषय में करार हुआ था और अमल न हो सका था, उसकी यथारीति लिखावट कर दी। ब्रिटिश गवर्नर ने बहुत समय तक दोनों पक्षो के हकों पर विचार करने के बाद आनन्दराव के नाम पर सम्पूर्ण कामकाज करने वाले मन्त्रियो को ही आश्रय देने का निश्चय किया। यह निश्चय करने के लिए मि० डकन के पास 2 से कारण थे। कड़ी के जागीरदार ने जो आसपास के कुछ परगने दबा लिए

थे उनके अतिरिक्त सारा प्रदेश आनन्दराव के पक्षवालो के अधिकार मे था, ऐसी स्थिति में गवर्नर को उनके विपक्षियो की बात पर भरोसा करने का कोई विशेष कारण दिखाई नही दिया। फिर, गायकवाड़ राज्य के सच्चे स्वामी आनन्दराव महाराजा की आज्ञा से ही उनके मन्त्रिगण सालबाई की सन्धि के आधार पर गायकवाड राज्य में विभाग न होने देने के लिए ब्रिटिश सरकार से हस्तक्षेप के लिए बड़ी नम्रतापूर्वक प्रार्थना कर रहे थे। गवर्नर को यह भी सूचना मिली कि मल्हारराव सिन्ध से विदेशी सेना भी लाने का प्रयत्न कर रहा है और यदि वह आ जायगी तो गुजरात मे ब्रिटिश सत्ता नष्ट हो जाएगी। फिर, मिस्टर डकन को यह भी विचार था कि यदि गायकवाड़ के मन्त्रियो को ब्रिटिश सहायता प्राप्त न होगी तो वे सिन्धिया से आश्रय मागेंगे।

निदान, ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता के गौरव और गायकवाड राज्य को सम्पूर्ण रखने के लिए एक सेना तैयार की गई। इस सेना मे दो हजार सिपाही थे जिनमे से चार सौ यूरोपीय थे और इसका अधिकार मेजर अलेक्जैण्डर को नियुक्त किया गया जो आगे चलकर गुजरात के इतिहास मे उचित रूप से प्रसिद्ध हुआ। यह तय हुआ कि मेजर वॉकर जल्दी से जल्दी से अपने सैनिक रूप को छोडकर बड़ोदा के रेजीडेन्ट का पद ग्रहण करे। ऐसा निश्चय करने मे मिस्टर डकन का आशय यह था कि जहा तक हो सके वहा तक बल प्रयोग किए बिना ही झगड़े का निपटारा हो जाए। मेजर वॉकर को यह आदेश दिया गया कि वह प्रत्यक्ष मे तो गायकवाड़ के वकीलो के साथ बड़ोदा जाए और महाराज आनन्दराव से मिलकर ब्रिटिश सरकार की ओर से उनके पिता की मृत्यु पर शोक प्रकट करे। यह रस्म इससे पहले इसलिए पूरी न हो सकी थी कि चौरासो परगना व चौथ की बात अभी तक अधूरी पड़ी थी। परन्तु, इस भेंट का अन्तरंग अभिप्राय यह था कि आनन्दराव के मन की सच्ची स्थिति का ज्ञान हो सके और यह भी मालूम हो सके कि उसका पुत्र हनुमन्तराव बाबाजी के साथ फौज मे उसीकी अनुमति से भेजा गया था या नही। इसलिए यह योजना बनी कि जब तक मेजर वॉकर बड़ोदा में अपना कार्य करे तब तक सेना जल मार्ग से खंभात पहुंच जाए और कार्य समाप्त होने पर वह भी उससे वही जा मिले।

24 जनवरी सन् 1802 को सूरत से रवाना होकर मेजर वॉकर 29 जनवरी को बड़ोदा पहुँचा। जब ये लोग भड़ौंच में होकर गए तो सिन्धिया के कार्यकर्ताओ ने इनका खूब आदर-सत्कार किया। बड़ोदा से कुछ मील की दूरी पर मन्त्रियों की ओर से स्वागत करने के लिए आए हुए कुछ आदमी उनको मिले और शहर से एक कोस आगे सब फौजी और मुल्की अफसरो के साथ रावजी आपाजी उनकी अगवानी करने के लिए मौजूद थे। सम्मेलन के स्थान पर खुली हवा मे गलीचे आदि बिछे हुए थे। अरब जमादार आदि सभी मुख्य-मुख्य आदमियो से मेजर वॉकर की मुलाकात हुई और सभी ने अपना-अपना सद्भाव प्रकट किया। वहां से वह बड़ोदा गया- वहां

उसके ठहरने के लिए तम्बुओं का प्रबन्ध किया गया था। उनका निरीक्षण करने के लिए उसको ले गए। उस स्थान पर सम्मानसूचक रीति से शस्त्र लिए हुए एक फौज की टुकडी खडी हुई थी और तोप चलाकर उसको सलामी दी गई। दूसरे दिन दीवान फिर मिलने के लिए आया और उसने कडी पर अधिकार करके मल्हार राव को निकाल देने की आतुरता प्रकट की। मेजर वॉकर उस समय इस विषय पर बातचीत करना नही चाहता था इसलिए उसने बात टालकर खम्भात आई हुई फौज के लिए रसद सामान आदि पहुंचाने की चर्चा चलाई। इसी मुलाकात में यह तय हुआ कि मेजर वॉकर महाराजा से मिलने के लिए उसी दिन तीसरे पहर जावेंगे। इस कार्यक्रम मे आनन्दराव ने कुछ परिवर्तन कर दिए और कहा कि ब्रिटिश राजदूत से मिलने के लिए पहले उसीको जाना चाहिए। इसके बदले मे सभ्यता के नाते मेजर वॉकर सामने आकर रास्ते मे ही उससे मिला और आनन्दराव ने हाथी से उतर कर भेंट की। इसके बाद वे सब लोग तम्बुओं मे गए। महाराजा के साथ सब दरबारी घुडसवार और पैदल थे और वहा पहुंचते ही तोपों से सलामी दी गई। मेजर वॉकर के प्रार्थना करने पर कुछ चुने हुए सरदारों और अधिकारियों के साथ उससे बातचीत करने के लिए वह एकान्त मे गया। वहां गवर्नर की ओर से सलाम और स्वर्गीय गोविन्दराव की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया। इसको महाराजा ने अन्यमनस्क होकर ग्रहण किया, इससे तुरन्त ही ब्रिटिश राजदूत ने जान लिया कि उनका चित्त किसी एक विषय पर स्थिर नही हो सकता था। उस समय जो दृश्य उपस्थित हुआ उसका वर्णन मेजर वॉकर के ही शब्दों मे नीचे दिया जाता है—

"आनन्दराव की अवस्था तीस या चालीस वर्ष की दिखाई देती है, उसका शरीर पुष्ट है और प्रत्यक्ष रूप से कोई दुर्बलता के चिन्ह प्रकट नहीं होते, परन्तु उसके भावहीन चेहरे और भारी आंखों से यह तुरन्त आभासित होता है कि या तो उसमें कोई स्वाभाविक कमजोरी है या, जैसा कि कहा जाता है, कुछ विनाशकारी मादक द्रव्यों के सेवन का यह प्रभाव पड़ा है। सम्भवतः इन दोनों ही बातों का इस महाराजा के मस्तिष्क पर प्रभाव है, परन्तु काम करने की अक्षमता का कारण स्वाभाविक हीनता की अपेक्षा गांजा पीने का दुर्व्यसन ही अधिक जान पड़ता है। मानसिक दुर्बलता के होते हुए भी आनन्दराव मे स्मरणशक्ति मौजूद है। उसने अपने कितने ही कार्यकर्ताओं के नाम बताए और यह भी नही कहा जा सकता कि उसे अपने राज्य की बातों का सामान्य ज्ञान न हो। कभी-कभी यदि वह घबरा जाता था तो राव जी आपाजी और कमालुद्दीन उसकी सहायता करने को तैयार रहते थे। उसका ध्यान यदि कहीं जाकर स्थिर होता था तो अपने शरीर पर धारण किये हुए आभूषणों पर। वह बार-बार अपनी पगड़ी पर सिरपेच को ठीक करता था और दस्तबन्द को अंगरखे की बांह से अलग

करता था। आगा मोहम्मद की घड़ी को देखकर वह बहुत आकर्षित हुआ और उसको लेकर बच्चे की तरह देखने लगा। जब मुलाकात खतम होने लगी तो वह कुछ होश मे आता हुआ सा मालूम पडा। उसने कहा, "मेरे बहुत से शत्रु हैं, जो मेरे राज्य व मेरी मानसिक स्थिति के बारे मे तरह-तरह की झूठी बातें उड़ाते है परन्तु, मुझे आशा है कि आप धोखा नहीं खायेगे और गवर्नर को सच्चा-सच्चा हाल लिखेंगे।" उसकी इस प्रार्थना का रावजी और कमालुद्दीन बार-बार समर्थन करते थे और यह बतलाते थे कि शत्रुओं की बातो से महाराजा को कितना दु ख होता था। इसके बाद आनन्दराव ने मल्हारराव की शत्रुता के बारे मे कहा और यह इच्छा प्रकट की कि उसे शीघ्र ही दण्ड दिया जाए। उसने मल्हारराव को कड़ी से निकाल देने की हार्दिक इच्छा प्रकट की और कई बार इस प्रार्थना को दोहराया जिसमे उसके मन्त्रियों ने भी साथ दिया। महाराजा को यह विश्वास दिलाया गया कि गायकवाड़ राज्य का लाभ सदैव कम्पनी सरकार की दृष्टि मे है और इसके परिणाम मे अग्रेजी फौज उनके शत्रुओ से उनकी रक्षा करेगी। इस मुलाकात मे आनन्दराव ने बहुत विनयपूर्वक व्यवहार किया और अग्रेज सरकार को अपना आश्रयदाता मानते हुए तथा कम्पनी और अपने पूर्वजों के सम्बन्धों की याद दिलाते हुए बहुत ही सम्मान और प्रेम प्रकट किया। इसके बाद, रीति के अनुसार पान-सुपारी और इतर गुलाब-जल भेंट करके गायकवाड़ आनन्दराव ने विदा ली।"

पहली फरवरी को मेजर वॉकर महाराजा से महलो मे जाकर मिला। वह कहता है कि "उस दिन महाराजा का व्यक्तित्व पहले दिन की अपेक्षा बहुत गम्भीर था। वह प्रसन्न दिखाई पड़ता था और पिछले दिन की भावहीनता का स्थान बहुत कुछ उदारता व समझदारी ने लिया था। साधारण बातचीत के अनन्तर आनन्दराव ने हमको शिरोपाव भेंट किए और एकान्त मे बातचीत करने के लिए कहा। बहुत-से मुख्य-मुख्य सरदार अपने नौकर-चाकरो सहित अन्दर घुस आए। आनन्दराव ने रावजी की बहुत प्रशसा की और मल्हारराव को दण्ड देने की उत्कट इच्छा प्रकट की। उसने कहा कि उसका पुत्र हनुमन्तराव उसी की इच्छानुसार फौज में गया था। उसकी अवस्था बारह वर्ष की थी और उसको अपने पुत्र से पूर्ण सन्तोष था। उसने इस बात को पूर्णतया अस्वीकार किया कि मल्हारराव ने लड़ाई चालू करने की उसमे किसी प्रकार की स्वीकृति प्राप्त की थी, परन्तु जब उससे पूछा गया कि 'क्या कान्होजी को आपकी अनुमति से ही कैद किया गया है?' तो उसने कोई उत्तर नही दिया और सिर नीचा करके आंखें घुमाने लगा और उसने एक भावपूर्ण मूकता का आश्रय लिया। उसके मन्त्रियो ने उसकी एवज उत्तर देने का प्रयत्न किया, परन्तु फिर भी वह चुपचाप बैठा रहा। फिर, उसने चुपके से मेरे कान में

कहा कि, 'अरब जमादार मेरे घातक शत्रु है--ये मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक बातचीत नहीं करने देते।' इसके पश्चात् सब लोग विदा हुए।

महाराजा के विश्वासपात्र सेवकों में मंगल पारख नाम का एक आदमी था। इसने बाद में मेजर वॉकर से कहा कि कान्होजी को कैद करने की बात पर आनन्दराव धार्मिक भाव का आश्रय लेकर चुप हो गया था। अपने भाई को कैद करना उसकी दृष्टि में दोष एवं पापपूर्ण कृत्य था परन्तु लोकमत की रक्षा के लिए उसे यह कार्य करना ही पड़ा। इससे वह बहुत दिनों तक दुःखी रहा और शोक प्रकट करने के लिए उसने कई दिनों तक हजामत नहीं बनवाई।

मेजर वॉकर को गायकवाड़ राज्य की स्थिति बहुत ही निर्बल और अव्यवस्थित मालूम हुई और यदि बाहरी आश्रय न मिलता तो वह नष्ट ही हो जाता। प्रबन्ध की अव्यवस्था और उससे उत्पन्न हुए कष्ट वहां के लोगों पर इतनी अधिक मात्रा में फैले हुए थे कि उनके दुर्भाग्य का अनुमान लगाना कठिन था। अव्यवस्था के सिवाय चारों ओर कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। सब महकमों की तनख्वाह चढ़ी हुई थी, देश का बहुत-सा भाग रुपया उधार देने वालों के गिरवी रखा हुआ था और वे मनमाना धन वसूल करते थे। एक साधारण तनख्वाह पाने वाला नायक राजा से भी अधिक शान से घूमता था। फौजी सरदारों ने तो सम्पूर्ण राज्य पर ही अधिकार कर लिया था और महाराजा को पूर्णतया अपने कब्जे में कर रखा था। ये फौजी सरदार शासन कार्य में कुशल न होने के कारण पैसेवालों के वश में थे। उस समय गायकवाड़ सरकार में आमद से 4-5 लाख रुपया वार्षिक का अधिक खर्चा था। दीवान रावजी आपाजी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और समझदारी के कारण राज्य-प्रबन्ध में कुशल था, परन्तु पिछले चालीस वर्षों में वह विद्रोहों से तथा उन परिवर्तनों से अच्छी तरह परिचित हो गया था जिनको वह देख चुका था या उनमें भाग ले चुका था और जिनके कारण राज्य की जड़ें बहुत कुछ हिल गई थीं।' इस कारण वह वहमी हो गया था, उसकी सावधानी कभी-कभी डरपोकपन में परिणत हो जाती थी और वह अपनी योजनाओं के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता था। अरब अधिकारियों द्वारा छीनी हुई सत्ता को वापस ले लेने के लिए उसमें धैर्य न था। कभी तो ऐसा मालूम होता था कि वह ब्रिटिश सरकार पर अविश्वास करता है और कभी-कभी वह अपनी बातचीत में बहुत ही निष्कपटता और स्पष्ट व्यवहार दिखाता था। कहते हैं कि यह दीवान प्रायः अपने अभिप्रायों को प्रकट कर दिया करता था और इससे उसके निजी व सरकारी कितने ही काम बिगड़ जाते थे।

मेजर वॉकर की राय में, गुजरात में ब्रिटिश सरकार की पूर्ण सत्ता स्थापित करने में एकमात्र विघ्न करने वाले अरब लोग थे परन्तु, वास्तव में, उसे उनका कोई डर न था। वे लोग शूरवीर थे परन्तु उनकी भयानकता (स्वभाव की तेजी) के ... वे किसी के अधीन होकर नहीं रह सकते थे। यद्यपि वे लोग अलग-अलग

छोटे-छोटे सरदारो की अधीनता मे थे परन्तु इसी कारण वे किसी साधारण रीति से संगठित नही हो पाते थे। उनकी कुल सख्या सात हजार से अधिक न थी और उनमे से एक हजार से अधिक एक स्थान पर इकट्ठे नही रहते थे। इनमे से केवल चौथे हिस्से के लोग अरबिस्तान के रहने वाले थे और बाकी लोगो का रक्त तो अरबी था परन्तु उनका जन्म गुजरात मे हुआ था। इन लोगो के हथियार, जिनमे मुख्य बन्दूकें थी, बेकार थे और इनका युद्ध-सम्बन्धी ज्ञान भी बिलकुल साधारण था। इनके अधिकार मे जो किले थे उनमें बड़ोदा का दुर्ग सबसे अच्छा समझा जाता था, परन्तु वह भी किसी सुसगठित हमले को रोक सकने की स्थिति मे नही था। मेजर वॉकर के विचार मे बडोदा मे रखी हुई ब्रिटिश फौज की दो टुकडियां इन अरबो की बराबरी करने के लिए पर्याप्त थी और उसे पूर्ण आशा थी कि इस प्रकार उनका प्रभाव कम पड़ जाने से वे भी अपनी निर्बल स्थिति को समझ जाएगे और उनकी सख्या कम हो जायेगी। ये अरब लोग दो दलो मे बटे हुए थे— एक का सरदार मगल पारख था और दूसरे का सामल बेचर। इनमे से सामल स्वभाव का गदा, लोभी और दगाबाज था। ब्रिटिश सरकार की ओर उसके भाव अच्छे नहीं थे और उसके अधीनस्थ टुकड़ी में अरबो की सख्या भी अधिक थी।

जब रावजी को यह मालूम हुआ कि मल्हारराव को दण्ड देने के लिए सेना भेजने के बदले ब्रिटिश सरकार उससे और ही तरह पर मामला तय करना चाहती है तो वह बहुत नाखुश हुआ। उसने इस बात पर जोर दिया कि जब तक कडी पर अधिकार न कर लिया जाए तब तक कुछ नही हो सकता। इसके उत्तर में मेजर वॉकर ने समझाया कि ऐसा करने से देश मे निरन्तर अव्यवस्था और अशान्ति फैलने की आशंका है क्योकि कड़ी पर अधिकार कर लेना तो सहज है, परन्तु कदाचित् मल्हारराव हाथ से निकल जाए तो वह कितने ही दिनों तक देश में लूटपाट करके हैरानी पैदा कर सकता है। इस पर रावजी ने कहा कि शत्रु को वापस आने से रोकने के लिए दो ब्रिटिश फौजे नियुक्त कर दी जाएं और इस सहायता के बदले मे समुद्री किनारे पर सरकार को जो भी जमीन का भाग सुगम पड़े वह दे दिया जायेगा। उसने फिर कहा कि मल्हारराव से कड़ी का पूरा परगना उसके हाथी-घोड़ों सहित ले लिया जाए और देश के किसी दूसरे भाग में एक लाख रुपया वार्षिक आमदनी की जागीर उसे दे दी जाए। उधर ब्रिटिश राजदूत को ऐसा आदेश था कि निजी तरीके पर समझौता करा देने का तो उसे पूर्ण अधिकार है परन्तु यदि रावजी न मानें और मल्हारराव का नाश करने पर ही तुले बैठे हो तो ब्रिटिश सरकार को बीच मे नही पड़ना है, फौजें वापस बुला ली जाएं। अन्त मे, रावजी ने स्वीकार किया कि कडी के जागीरदार ने बडोदा के मुल्क पर हमला किया है इसके बदले मे यदि ब्रिटिश फौजे दो-तीन दिन तक उसकी हद मे छावनी डाल दें तो उसे (रावजी को) बहुत संतोष होगा। इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि यदि

शान्तिपूर्ण ढंग से रहना कबूल करेगा तो उससे वसूल करने योग्य कर में से बहुत-सा भाग छोड़ दिया जाएगा।

मेजर वॉकर ने सरकार के पास जो सूचना भेजी उसमें अपनी राय देते हुए लिखा कि मल्हारराव अपने राजा की अधीनता स्वीकार नहीं करता है तो न्याय और नीति की दृष्टि से वह अवश्य ही दण्डनीय है। महाराजा का पटावत होते हुए उसकी जागीर खाता है और कर देने के लिए मना करता है, कर मांगने पर विदेशी शत्रुओं से आत्म-रक्षा करने का बहाना करके सामने शस्त्र उठाता है और अपने आशय को और ही तरह प्रकट करके अन्तर में महाराजा को पदभ्रष्ट करने की इच्छा लेकर राजद्रोह करता है। मल्हारराव कहता है कि वह कान्होजी का पक्ष लेकर खड़ा हुआ है, परन्तु इस बात में कोई सार नहीं है क्योंकि कान्होजी का राजगद्दी पर न्यायपूर्ण हक नहीं है और उसको पदभ्रष्ट करने का उसने केवल समर्थन ही नहीं किया है वरन् तोपें चलाकर खुशी भी प्रकट की है। उसने गायकवाड़ के देश पर जो हमला किया है उसकी योजना उसने पहले ही बना रखी थी, क्योंकि इसके लिए न तो पहले शत्रुता की घोषणा की गई और न कोई शिकायत ही सामने आई। यदि मल्हार राव अपनी जिद पर अड़ा रहे तो उसको दबा देने से लोग प्रसन्न होंगे और इस कार्य की सफलता का परिणाम यह होगा कि सहायक सेना स्वीकार कर ली जाएगी। इसकी सफलता के लिए ब्रिटिश सरकार को प्रत्यक्ष सहायता करना सरासर आवश्यक है और कड़ी की चढाई में विजय प्राप्त करने के बाद उस टुकड़ी को अथवा वैसी ही किसी और फौज की टुकड़ी को स्थायी रूप से बड़ोदा भेज देना उचित होगा।

मेजर वॉकर को जो कार्य सौंपा गया था उसको पूरा करके वह 8 फरवरी को तीसरे पहर बड़ोदा से विदा हुआ। गायकवाड़ की फौज लेकर बाबाजी को उसके साथ भेजा गया और यदि मल्हारराव सन्धि के लिए प्रार्थना करे तो महाराजा के राज्य के लिए लाभप्रद शर्तों पर सन्धि करने का पूर्ण अधिकार भी उसको दिया गया।



प्रकरण चौथा

मल्हारराव गायकवाड़

पाठकों को ऐसा प्रतीत होगा कि पिछले प्रकरण मे हमने सन्धि समझौते का वृतान्त आवश्यकता से अधिक बढाकर लिखा है, परन्तु गुजरात का भविष्य बहुत कुछ इन्ही बातो पर निर्भर था इसीलिए इसको इतने विस्तार से लिखना पड़ा। यदि ब्रिटिश सरकार से मागी हुई सहायता न मिलती और फौजें खम्भात से आगे न बढ़ती तो वड़ोदा राज्य अवश्य ही उसी दु खपूर्ण अराजकता और गड़बडी की अवस्था मे पड़ जाता जिसमे आगे चलकर होल्कर और सिन्धिया के राज्य पड़ गए थे। परन्तु, सब घटनाएं इस प्रकार द्रुत गति और नियोजित रूप से घटती रही कि उन पर गुजरात के भावी राजनीतिक सम्बन्धो की नीव दृढ़ होनी चली गई।

सूरत से चली हुई फौज 2 फरवरी को खम्भात उतरी और नारायणसर के पास उसी खुली जगह पर पडाव डाला जहां पहले सन् 1775 मे कर्नल कीटिंग की मातहत फौज ठहरी थी। बडे अधिकारियो के ठहरने के लिए बाग मे एक बगला सुपुर्द कर दिया गया था। इसी बीच में बाबाजी और मल्हार राव की फौजो में अव्यवस्थित और अनिर्णीत छोटी-छोटी लड़ाइयां होने लगी और साथ में इसी तरह की सन्धि-चर्चा भी होती रही जिससे कोई लाभ न निकला। कहते हैं कि मल्हारराव का लश्कर कुल मिलाकर पन्द्रह हजार[1] आदमियों का था। उनमें शिवराम[2] नाम का एकमात्र दमदार अफसर था जिसकी अध्यक्षता मे लगभग सात सौ कवायद सीखे हुये घुड़सवार थे। एक पलटन का नाम "गोसाइन (गोसांई की स्त्री) का लश्कर" था, जिसका अध्यक्ष पारकर नामक अंग्रेज था। लगभग दो सौ आदमियों की एक दूसरी टुकड़ी का नायक जोविवम नामक पुर्तगाली फिरंगी था। उसने इनमें कुछ व्यवस्था कायम की थी इसलिए कुछ

---

1. यह संख्या पारकर (Parker) ने लिखी है, परन्तु उसका विवरण कई जगह परस्पर विरोधी है। मेजर वॉकर का अनुमान है कि दस और बारह हजार के बीच घुडसवार और पैदल थे और कुल मिलाकर छोटी पन्द्रह तोपें थी।
2. देखिए प्रकरण 9 की टिप्पणी।

लोग लाल जाकट पहने हुए थे, बाकी सब लोग, जैसा कि पारकर साहब ने कहा है, अपने-अपने पसन्द की पोशाक पहने हुए थे और मनमाने ढग से लडते थे। इस घिलमिल फौज की बाकी संख्या काठी और कोली तथा सिंधी और पठान लोगों में पूरी होती थी। इनमें से काठी और कोली कवचधारी घुड़सवार थे, जिनका सरदार भूपतसिंह नामक ठाकुर था, जो पहले बाबाजी के साथ हुई एक दो छोटी-मोटी लडाइयों में प्रसिद्धि पा चुका था। आगे के वृत्तात में पाठक इस भूपतसिंह से "भांकोरा के ठाकुर" के नाम से परिचित होगे। यद्यपि इस समय तो यह भूपतसिंह मल्हार राव के पक्ष का नामी आदमी था परन्तु पहले इसकी मल्हारराव से कट्टर शत्रुता थी। कान्होजी के शासनकाल में इसी ठाकुर को कडी के जागीरदार के विरुद्ध भेजने के लिए कह कर बड़ोदा भेजा गया था परन्तु जब कान्होजी कैद हुए तो इसको भी कैद कर लिया गया। इसके बाद रावजी ने यह समझ कर कि कही इसी द्वेषभाव को लेकर यह मल्हारराव के देश पर हमला न कर बैठे, इसको मुक्त कर दिया था।

तारीख 22 फरवरी तक ब्रिटिश फौजे एक कदम भी आगे नही बढी और इस बीच मे मल्हार राव अपने अरब सहायको की मदद से कान्होजी की मुक्ति के लिए षड्यन्त्र रचता रहा। उधर, दूसरे पक्ष के लोग अग्रेज फौजो की ढील और खम्भात मे रेजीडेण्ट के एक वकील को कड़ी भेजने के कारण निराश हो रहे थे। मल्हार राव ने अपनी फौजो को निःशस्त्र करने व बीसलनगर तथा दूसरे ऐसे प्रदेश, जहा पर उसने कब्जा कर लिया था, छोड़ने से लिए साफ इनकार कर दिया। इन दोनो बातो को मल्हार राव से कबूल कराए बिना और कोई बन्दोबस्त नही हो सकता था इसलिए डकन ने, जो उस समय खम्भात में था, बाबाजी की फौज मे जा मिलने के लिए अपने लश्कर को रवाना होने का हुक्म दिया। मल्हार राव को खबर मिली कि महाराजा के जिस प्रदेश पर उसने अनधिकारपूर्ण कब्जा कर रखा था उसको हटाने के लिए फौज रवाना हो चुकी है और यदि वह उस प्रदेश को छोड़ना कबूल कर ले तो केवल एक सौ मनुष्य साथ लेकर मिस्टर डकन से भेंट करने की परवानगी मिल सकती है। इन बातो को स्वीकार किए बिना समझौते की और कोई सूरत नही निकल सकती थी। मेजर वॉकर 23 तारीख को रवाना होकर 4 मार्च को अहमदाबाद पहुंचा और दूसरे दिन अडालज पहुंच कर उसने भारी सामान व बीमार सिपाहियो को वहीं रखा। मल्हार राव समझौते की बातें तो करता था परन्तु उनके अनुसार कार्य करने के कोई लक्षण प्रकट नही करता था। 10 तारीख को अंग्रेजी फौजो ने कड़ी की सीमा मे प्रवेश किया। उनके साथ जो गायकवाड़ की सेना थी, उसको पीछे छोड़ दिया गया था जिससे कि उस सेना के अव्यवस्थित होने के कारण कोई

मिलावट का अवसर न आए। अंग्रेजी सेना ने सिरेना के पास छावनी डाली और वहीं पर मल्हार राव ने मेजर वॉकर से मुलाकात करने की इच्छा प्रकट की।

इसके अनुसार मुलाकात तो हुई परन्तु मेजर वॉकर को सन्धि हो जाने की कोई आशा नहीं दिखाई दी। मल्हार राव के मन में अविश्वास और दगा था क्योंकि, वह मुलाकात के समय बहुत से हथियार और आदमियों को साथ ले गया था। घुड़सवार और पैदल सिपाही मिलकर कुल दो हजार आदमी उसके साथ में—इनके अतिरिक्त तीन तोपें भी थीं। पहले, ब्रिटिश छावनी में मुलाकात होने का निश्चय हुआ था, परन्तु वह उससे 2 मील की दूरी पर ही ठहर गया; वहीं पर एक सायवान तनवाया गया और उस जगह से आगे बढ़ने के लिए वह राजी नहीं हुआ। फिर भी, दूसरे दिन शाम को कितने ही कारण बतलाते हुए वह मेजर वॉकर से मिला और अपनी नई फौज को तोड़ देने व ब्रिटिश सरकार की इच्छानुसार कार्य करने के लिए उसने सहमति प्रकट की। उसने यह भी इच्छा प्रकट की कि यह सन्धि-चर्चा किसी विश्वासपात्र वकील के द्वारा गुप्त रूप से तय की जावे ताकि उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे। मेजर वॉकर ने इस बात को स्वीकार कर लिया। मल्हार राव के सामने ये शर्तें रखी गईं कि वह जीते हुए तमाम प्रदेश लौटा दे, गायकवाड़ के जितने मनुष्य उसने कैद कर रखे थे उनको मुक्त कर दे, उनसे वसूल किया हुआ कर वापस दे दे, चढ़ा हुआ कर चुकाने का प्रबन्ध करे, लड़ाई का खर्चा दे और भविष्य में शांतिपूर्वक रहने का विश्वास दिलाकर महाराजा को प्रसन्न करे। यह भी तय हुआ कि वह अपनी अतिरिक्त फौज को तुरन्त तोड़ दे और जितनी फौज सदा से रखता आया है उतनी ही कड़ी की चहारदीवारी के अन्दर रखे। जब तक मेजर वॉकर को उसकी निष्कपटता का विश्वास न हो जाए तब तक पास ही में ब्रिटिश फौज की छावनी पड़ी रहेगी। यह भी तय हुआ कि ब्रिटिश फौजें तुरन्त ही हटा कर कलोल भेज दी जाएगी और गायकवाड़ की फौजों को भी कुछ समय बाद वहीं पर भेज दिया जाएगा और उसी स्थान पर मल्हार राव की मेजर वॉकर से अन्तिम भेंट होगी। 15 तारीख को मेजर वॉकर कलोल पहुंचा परन्तु वहां पर उसे कोई भी न मिला और न मल्हार राव की तरफ से कोई सूचना प्राप्त हुई इसलिए 16 तारीख को वह बुडासन नामक गांव को चला गया। यह गांव कड़ी से 3 मील की दूरी पर है। ब्रिटिश लश्कर के पहुंचने पर मल्हार राव के कुछ घुड़सवार दिखाई दिए, परन्तु कोई शत्रुता का चिह्न प्रकट किए बिना ही वे तुरन्त वहां से लौट गए। पास ही में एक ऊंची सी जगह कब्जा करके एक तोप और फौज की टुकड़ी को वहां पर रख दिया गया। ऊंची जगह से मेजर वॉकर को कड़ी, मल्हार राव की छावनी और मैदान में हुई फौज की तमाम हल-चल अच्छी तरह दिखाई देती थी। कड़ी का छोटा और टेढ़ामेढ़ा बना हुआ था। इसके चार दरवाजे थे जिसमें से

फतहपोल पर नया मोर्चा बांधा गया था और उसी पर तोपें चढ़ा कर रखी थी। मल्हार राव का निवासस्थान किले के भीतर था और दूर से ही अच्छी तरह दिखाई पड़ता था। बड़ी-बडी मीनारें, बुर्जें और चबूतरा खास तौर से दृष्टि में आता था। इस चबूतरे पर से आसपास का प्रदेश नजर में आ सकता था।

दोपहर होते-होते मल्हार राव का पत्र लेकर दूत आए। इस पत्र मे इतनी नम्रता दिखाई गई थी कि मेजर वॉकर को यह विचार भी न आ सका कि यह कार्यवाही भी एक कपटकार्य का साधन मात्र हो सकती थी। स्थानीय अधिकारी सुन्दरजी और कप्तान विलियम्स के हाथ पत्र का उत्तर भेजा गया। उनको रवाना हुए 20 ही मिनट हुए होंगे और वे मल्हार राव की छावनी के अगले हिस्से तक ही पहुचे होंगे कि उनको कैद कर लिया गया और मल्हार राव के पास जो दो तोपें थी उनसे ब्रिटिश छावनी पर गोलाबारी शुरू कर दी गई। मेजर वॉकर न कुछ देर गायकवाड के सरदारो से सलाह की और उन सबके मोर्चे निश्चित करके यह तय किया कि सब फौजें मिलकर शत्रु की छावनी पर हमला करें। कमालुद्दीन खा अपने एक हजार के लगभग घुड़सवार लेकर ब्रिटिश सेना की दाहिनी ओर रहा और बाबाजी कुछ पैदल, घुडसवार और गोलदाजो को लेकर बांई तरफ रहा। गायकवाड की फौजो के तैयार होने के समाचार मिलने पर ब्रिटिश सेना कतार बाधकर अपनी चारो तोपो के साथ 2-2।। बजे के करीब धीरे-धीरे परन्तु व्यवस्थित रूप में आगे बढी। किसी ऊंचाई की जगह को हाथ मे लेने व शत्रु के पडाव के बिलकुल सामने जा पहुचने के लिए सेना ने दाहिनी रुख किया। ब्रिटिश सेना के आगे-बढते ही मल्हार राव के तोपखाने ने और भी जोर से गोलाबारी शुरू की; दुर्भाग्य से ये तोपें ऐसे स्थान पर लगाई गई थी कि वहा से मार का असर ज्यादा होता था। फिर भी पाच बजे के करीब मेजर वॉकर शत्रु की छावनी के सामने लगभग आधमील के फासले पर जा पहुचा। वहां से शत्रु की फौज बिलकुल सामने दिखाई पड़ती थी। अब वह अपने विचार के अनुसार हमला करने की सोच ही रहा था कि उसके पास गायकवाड की फौजो के समाचार पहुचे। बाबाजी छावनी से थोडी दूर चला था और अरब लोग अंग्रेज सेना के पीछे-पीछे चलने मे आनाकानी कर रहे थे। उधर कमालुद्दीन को जिस स्थान पर नियुक्त किया था, वह थोडी देर तक तो वहां टिक सका परन्तु शत्रु के अच्छे घुडसवारो के विरुद्ध अधिक देर न ठहर सका और पीछे हट गया। गायकवाड़ की सेना से पूर्ण सहायता मिले बिना मेजर वॉकर को अपने विचारे हुए हमले को स्थगित करना पडा इसलिए वह दाईं तरफ बढता गया और शत्रु की मार से बचता हुआ बहुत दूर निकल गया तथा जहा उसके घुडसवार ठहरे हुए थे उस ऊंची जगह पर जा पहुंचा। इस स्थान पर फौज गोधूलि के समय तक ठहरी और फिर शत्रु की किसी विघ्न-बाधा के बिना अपनी पहली छावनी मे जा पहुंची। इस लड़ाई मे यद्यपि शत्रु पक्ष का अधिक

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

नुकसान हुआ परन्तु ब्रिटिश सेना की भी हानि कम नही हुई। सम्राट की फौज की 80 वी रेजीडेण्ट का लेफ्टिनेट क्रीग व कम्पनी के नौकर कप्तान मैक्डोनल्ड और लोवेल मारे गए। कुल 146 आदमी मारे गये या घायल हुए जिनमे से 25 यूरोपीय थे; एक तोप के पहिए टूट गए थे इसलिए उसे रणभूमि मे ही छोड़ देना पडा।

मेजर वॉकर को अब अच्छी तरह ज्ञात हो गया था कि जो कुछ सेना उसके पास थी उससे निश्चित रूप से हमला करके लडाई का अन्त नही हो सकता था, इसलिए उसने मरहठो की पद्धति से लड़ाई करने का निश्चय किया और बाबाजी से सलाह करके इस तरह मोर्चा बाधकर शत्रु की छावनी की तरफ बढने का इरादा किया जैसे कि वह एक सुरक्षित किला हो। इसी बीच में डकन व कौसिल के दूसरे अधिकारियो ने खम्भात मे जितनी सेना इकट्ठी हो सकती थी वह एकत्रित करके रवाना करने का प्रयत्न किया। बम्बई से जितनी फौज रवाना होने को थी वह तो जहाज पर चढा दी गई और गोआ स्थित ब्रिटिश सेनाध्यक्ष (कमान्डिंग ऑफिसर) को हुक्म दिया गया कि उसके पास जितनी यूरोपीय व देशी फौज थी उसको लेकर कडी के मुकाम के आगे जा पहुचे। 'इन्ट्रेपिड' और 'टर्पसिकोर' नामक सम्राट के जहाज तथा 'कार्नवालिस' व 'अप्टन कैसिल' नामक कम्पनी के जहाज शेष फौजो को उत्तर की ओर ले जाने के लिए तैनात किए गये।

कुछ समय तक कडी के मुकाम पर अव्यवस्थित रूप से युद्ध होता रहा जिसमे विपक्षी बहुत करके मेजर वॉकर की सेना पर नजर रखते हुए मुख्यतः गायकवाड के सेनापतियो की फौज पर अपनी शत्रुता प्रकट करते थे। मेजर वॉकर ने देखा कि उसके पास गोला बारूद की कमी है, बाबाजी की सेना का तोपखाना बेकार है और उस सेनापति (बाबाजी) के लश्कर के लोगो मे यद्यपि वास्तविक साहस और सचाई या भरोसे की कमी नही थी फिर भी ऐसा लगता था कि वे उदासीन से थे और अगीकृत कार्य के प्रति उनमे उस तत्परता का अपेक्षाकृत अभाव था जो मल्हार राव की सेना के बिना कवायद सीखे हुए परन्तु शूरवीर पठानों, गुसाइयों और कोलियों मे मौजूद थी। अतः उसने सोचा कि गायकवाड़ की सेना की सहायता के बिना आक्रमण पूरा नही पड सकता इसलिए यही अच्छा होगा कि और कुछ न करके अपना बचाव करता हुआ वह अलग बैठा रहे अथवा किसी भी ऐसे काम मे हाथ न डाले जिसको, मित्रों की सहायता की अपेक्षा न रखते हुए, स्वय उसका ही लश्कर पूरा न कर सके। उसी समय मेजर वॉकर और मल्हार राव के बीच सन्धिवार्ता भी चलती रही। मेजर वॉकर ने अपनी शर्तें कुछ शिथिल भी कर दी क्योंकि वह कप्तान विलियम्स को, जो बन्दी के रूप में दुःख पा रहा था, मुक्त कराने के लिए चिन्तित था, परन्तु मल्हार राव अपनी शर्तों का विस्तार करता ही चला गया और उस पूरी वार्ता का कोई फल न निकला।

सर विलियम क्लार्क ने 12 अप्रैल के दिन खम्भात पहुंच कर सेना का कार्य अपने हाथ में लिया। पहले तो यह इरादा हुआ कि जैसे-जैसे फौजें उतरती जाएं वैसे ही उन्हें तुरन्त रवाना कर दिया जाए, परन्तु जब यह पक्की खबर मिली कि विपक्षियो की एक हजार घुड़सवार सेना मकोडा के भूपतसिंह की अध्यक्षता मे रास्ता रोके तैयार खडी है तो इस जोखिम से बचे रहने मे ही बुद्धिमानी थी। इसलिए सर विलियम क्लार्क अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ चला और अप्रैल मास की 24 तारीख को मेजर वॉकर से बूडासए नामक स्थान पर जा मिला। उस समय उसके पास सहयोगियो[3] की सेना के अतिरिक्त पाच या छ: हजार मनुष्यो का लश्कर हो गया जिनमे दो हजार यूरोपीय थे।

ब्रिटिश सेनापति ने पहला काम तो यह किया कि मल्हार राव के पास पूर्व-प्रस्तावित सन्धि की शर्तों को शान्तिपूर्वक स्वीकार कर लेने का सन्देश भेजा। जब सर विलियम क्लार्क की पहुच की खबर मिली तो मल्हार राव के यहा विचार-विमर्श होने लगा, मुकुन्दराव गायकवाड ने शिवराम, भूपतसिंह और पठानों के सरदार को राजी-खुशी झगडा निपट जाने मे बाधा उपस्थित करने के लिए बुरा भला कहा और सिर पर सकट लाकर खड़ा कर देने का दोषी भी उन्ही को ठहराया। सभा में उपस्थित दूसरे सरदार भी चिन्तातुर होकर एक दूसरे का मु ह देखने लगे। स्वयं मल्हारराव भी भयभीत और घबराया हुआ नजर आया, परन्तु न जाने क्या कारण हुआ कि अंग्रेजों के सन्देश का कुछ भी उत्तर नही दिया गया और सब काम अपने ही ढंग से होता रहा।

कडी नगर पर आक्रमण करने से पूर्व दृढना से सामने खाई खोद कर जमी हुई शत्रु सेना को बिखेर देने की बात सर विलियम क्लार्क को आवश्यक जान पड़ी। इनमे सब से प्रबल तो एक तोपखाना था जो विपक्षियों के व्यूह के दक्षिणी भाग मे लगा हुआ था और, कहते है कि, उसकी रक्षा के लिए एक यूरोपीय अफसर की अधीनता मे बारह सौ अथवा चौदह-सौ पठान तैनात थे। इस मोरचे पर 30 अप्रैल के दिन हमला करने के लिए हिज मेजेस्टी (इंगलैण्ड के राजा) की 75 वी रेजीमेण्ट, उसके आजू-बाजू मे 84 वी पल्टन व कम्पनी सरकार के लम्बे-लम्बे सिपाहियों की फौज तथा 84 वीं रेजीमेण्ट के शेष सिपाही और चार तोपें तैयार की गई; यह सम्पूर्ण सेना लेफ्टिनेण्ट कर्नल वुडिंगटन की देखरेख मे तैयार हुई। दिन उगते ही ये लोग चुपचाप तोपों के पीछे आ पहुचे और बन्दूक की मार के फासले से मोर्चा काबू में ले लिया। छीनी हुई कितनी ही तोपों का मुँह विपक्षियों की ओर तुरन्त मोड दिया गया। ब्रिटिश सेना ने पूरा-पूरा लाभ उठाने का सोत्साह प्रयत्न किया और

3. गायकवाड़ की सेना।

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्व वद्यालय, सागर—470003

ग्यारह बजते-बजते तो कड़ी के मुखभाग पर लगे हुए मोर्चे व खाई उनके कब्जे मे आ गए; जो सेना उनकी रक्षा के लिए तैनात थी उसमें भगदड पड़ गई और वह तितर-बितर हो गई। जहा तक शत्रुओ द्वारा प्रतिरक्षा का सवाल है इस विजय में हुई हानि नगण्य-सी ही होती, परन्तु मल्हार राव की सेना मे से एक बारूद से भरी हुई गाड़ी पकडी गई थी उसने आग पकड ली। प्रायः इस युद्ध मे हुई समस्त हानि उसी के कारण हुई।[4] मल्हार राव की छावनी और पास ही के कडेल नामक गाव को लूट कर आग लगादी गई और उसके भागते हुए सिपाहियों को शहर के दरवाजे मे घुसने से रोक दिया गया तथा उनको इधर-उधर बिखर जाने की आज्ञा दे दी गई। थोड़ी देर के लिए उन्होने पुनः एकत्रित होकर कडी के सामने की तरफ मोर्चा जमाया परन्तु शीघ्र ही वे फिर बडी भारी गडबडी में पड गए। उसी घबराहट के समय मे मल्हार राव ने कैप्टेन विलिम्स को छोड दिया जिसको धोखे से पकड़ कर उसने इतने दिनो से कैद कर रखा था। सन्ध्या समय सुन्दरजी उसको साथ लेकर ब्रिटिश छावनी में पहुंचा।

बाबाजी ने इस सफलता का वृत्तान्त तुरन्त ही अपने भाई को लिख कर भेजा वह मित्रसेना के पराक्रम से बहुत उत्साहित हुआ और अपने व अपने साथियो को लिए जो लाभ का अवसर उपस्थित हुआ था उस पर उसने प्रसन्नता प्रकट की। उसने लिखा—"बाबा साहिब! अंग्रेजो की युद्ध प्रणाली देख कर मै तो आश्चर्य चकित हो गया। मेरा खयाल है कि दुनिया मे उनकी तरह कोई भी नही लड सकता। उन्होंने सिर्फ छः घण्टो मे अपना इरादा पूरा कर लिया और अब श्रीमन्त के सौभाग्य से कडी पर भी दो दिन मे विजय प्राप्त हो जाएगी। कुडाली से कड़ी केवल आधे कोस पर है। अंग्रेजो की सेना-पक्ति खाई के समीप है। अंग्रेजों को यहा

---

4. इस युद्ध के हताहतों की विगत इस प्रकार है:—

यूरोपीय	मारे गए	22;	घायल हुए	82 = 104	= 162
देशी	,,	6;	,,	52 = 58	

इनमे जो अधिकारी मारे गए उनकी विगत—

लेफ्टिनेण्ट	फासिस ईवी (Francis Ivie)	सम्राज्ञी की 84वी रेजीमेण्ट
,,	डेविड प्राइस (David Price)	,, 86 ,,

घायल अफसरो की विगत

लेफ्टिनेण्ट	हेनरी पोलचर (Henry Polcher)	प्रथम प्रलम्ब सिपाहियो की पल्टन
,,	हेनरी रूम (Henry Roome)	,, बटालियन छठी रेजीमेण्ट

लाने का जो परिणाम होगा उससे आपकी बुद्धिमानी का ठीक-ठीक परिचय लोगों को मिल जायगा और उनकी बहादुरी से आपके शत्रु ही नहीं, सारी दुनियां उनसे डरेगी व आदर करने लगेगी। इससे हमारी सब चिन्ताएं दूर हो गई है और हम जो कुछ करना चाहते हैं वह सब बात हमारे वश में आ गई है।

मल्हार राव ने कैप्टेन विलियम्स और सुन्दरजी को मुक्त कर दिया था इसलिए सर विलियम क्लार्क ने उसे पुनः सन्धि के लिए कहलाया। इस पर लड़ाई के दूसरे दिन उसने सन्देश भेजा कि अब वह आत्मसमर्पण कर देगा अतः उसकी इच्छानुसार एक छोटी सेना की टुकडी उसको ब्रिटिश सन्निवेश मेले आने के लिए नगर द्वार तक भेज दी गई। दरवाजे पर वह पालकी में भी बैठ गया, परन्तु उसी के कुछ आदमियों से समझा बुझाकर और प्रत्यक्ष में अटकाव पैदा करके उसको आने से रोक दिया। अतः नगरकोट को तोडने के लिए तोपो की कार्रवाई शुरू कर दी गई और 3 मई के दिन मल्हार राव ने वास्तविक रूप मे आत्मसमर्पण कर दिया, जिसकी शर्त केवल यह थी कि उसकी व उसके कुटुम्ब की रक्षा की जाए। दो दिन बाद कडी के किले को विपक्षियो ने पूरी तरह खाली कर दिया और उस पर मित्र-सेनाओं का अधिकार हो गया, ब्रिटिश और गायकवाड दोनो के झण्डे उस पर साथ-साथ फह-राने लगे। वहा पर छोटी-मोटी सैनीम तोपें, हाथी, ऊट और बहुत सा गोला बारूद एवं अन्य युद्ध का सामान प्राप्त हुआ।

कड़ी के पतन के बाद तुरन्त ही बडोदा में भी ब्रिटिश सत्ता स्थापित हो गई। मार्च के महिने मे डकन और रावजी आपाजी के बीच एक सन्धि हुई जिसके अनुसार गायकवाड़ सरकार ने सदा के लिए चौरासी परगना और चौथ हवाले कर दी तथा ब्रिटिश फौज के खर्चे की जमानत के रूप मे सूरत के समीप 'अट्ठावीसी परगनें' की आय का अपना भाग लिख दिया। इसके अतिरिक्त एक गुप्त सन्धि भी हुई जिस पर युद्ध की समाप्ति तक अमल न होना स्वीकार किया गया। इसके अनुसार वड़ोदा सरकार ने दो हजार हिन्दुस्तानी पैदल, एक यूरोपीय तोपखाने की टुकडी और उसी के परिमाण मे लश्कर का निरन्तर खर्चा बर्दाश्त करना स्वीकार किया और यह भी कबूल किया कि इस खर्चे के निमित्त गायकवाड राज्य का वह भाग नामांकित कर दिया जाएगा जो दोनों पक्षों के लिए सुविधाजनक होगा। अरबी बेडे को तोड़ देने का भी निश्चिय हुआ। जून की 4 तारीख को आनन्दराव गायकवाड की सरकार ने अंग्रेजो द्वारा दी गई सहायता के प्रमाणस्वरूप सूरत अट्ठावीसी का चीकली परगना कम्पनी सरकार को साभार भेंट कर दिया; दो दिन बाद ही एक और समझौता हुआ जिसमे मार्च मास मे हुए करार और चीकली-समर्पण की सम्पुष्टि की गई और यह भी तय हुआ कि बर्खास्त अरबी बेड़े को चुकाने के लिए अंग्रेज सरकार रुपया कर्ज दे जिसकी निशादेही मे बडोदा, कोरल, जिनोर, पितलाद और अहमदाबाद के परगने लिखे

जाएं। उसी दिन माहाराजा आनन्दराव ने एक और सन्धिपत्र लिखा जिसके अनुसार भविष्य में सहायतार्थ नियुक्त सहायक सेना का खर्चा पूरा करने के लिए धोलका का परगना विक्रम संवत् 1860 (1804 ई०) के प्रारम्भ से ब्रिटिश अधिकार में दे दिया गया। उसी समय सेना पर प्रथम वर्ष के व्यय निमित्त 7,80,000 रुपये की बाबत भी लिखापढी हुई जिसके अनुसार उक्त रकम के मध्ये 50,000 रुपये की नडियाद के गावों की जायदाद[5] अंग्रेजो को सौंप दी गई तथा बाकी रकम अदा करने के लिए कडी की आमदनी व काठियावाड़ से सवत् 1857-58 (1801-2 ई०) में प्राप्त होने वाली मुल्कगीरी की जमा उनको लिख दी गई। सात जून को मेजर वॉकर को वड़ोदा के रेजीडेण्ट का पद सम्हालने का आदेश हुआ। तदनुसार वह 11 तारीख को वहा जा पहुंचा। गायकवाड़ ने उसका बहुत आदरसत्कार किया। रावजी की सलाह से उसका डेरा उनके निवास के सामने ही एक बाग में लगाया गया और वहीं उसने ब्रिटिश झण्डा फहरा दिया।

कुछ ही दिन पहले आनन्दराव की सरकार के विरुद्ध हुए दूसरे विद्रोह के समाप्त होने की सफलता के समाचार भी प्राप्त हो चुके थे। गायकवाड़ वंश के सम्बन्धी गणपति राव ने बहुत पहले स्वर्गीय माहाराजा गोविन्दराव के मुकाबले मे गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न किया था; फिर भी सीधे और शात स्वभाव वाले उन महाराजा ने संखेड़ा की गढ़ी और सलग्न छोटा-सा परगना, साधारण-सा राजस्व निर्धारित करके, उसको दे दिया था परन्तु, अब मल्हार राव से मिलकर अपनी स्वतंत्रता स्थापित करने के इरादे से उसने वह इजारे की रकम बहुत दिनों से देना बद कर दिया था। कड़ी का पतन होने के बाद उसे अपनी गढ़ी मे बद हो कर बैठना पडा। उसके पास यद्यपि दो ही तोपें थी और सुरक्षा के लिए भी नगण्य-सा ही सामान था फिर भी गायकवाड़ की सेना के हमले का वह सामना करता रहा। गणपतिराव के साथ महाराजा के पिता का एक दासीपुत्र मोरार राव भी मिल गया था। ब्रिटिश सेना के एक दस्ते को लेकर कप्तान बेथ्यून गायकवाड़ की सेना से जा मिला और 7 जुलाई को संखेडा फतह हो गया। इस शर्त पर किले पर अधिकार हो गया कि किलेदारों की निजी सम्पत्ति एवं प्राणों को कोई आंच नहीं आएगी। पहली रात को ही गणपति राव और मोरार राव कुछ साथियों को लेकर पैदल ही निकल पड़े। उन्होंने मालवा के एक बड़े जागीरदार और स्वर्गीय गोविन्दराव के जामाता बापू पंवार के यहां जा कर शरण ली।

अब गायकवाड़ मन्त्रिमण्डल और ब्रिटिश रेजीडेण्ट का ध्यान कुछ महीनों तक अरबी सिपाहियों को निकालने में लगा रहा। ये लोग पिछले कुछ वर्षों से

5. जायदाद अर्थात् स्थिति प्राप्त करने का स्थान; किसी बेड़े या अमले का खर्च चलाने निमित्त निर्धारित राजस्व।

रियासत के हर काम पर काबू किए हुए थे। इस कार्यवाही का यहा पर यथावत् विवरण देना आवश्यक नही है—केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह काम ब्रिटिश सेना की सहायता के बिना नहीं हो पाता। अरब जमादारों को बड़ौदा शहर में घेर लिया गया और अन्त मे उनको 26 दिसम्बर 1802 ई० के दिन कर्नल वुडिंगटन की सेना के आगे समझौता करके शस्त्र डालने पड़े।

गुजरात मे जिस प्रकार अंग्रेजों का दखल हुआ उसकी रूपरेखा हमने यहां पर दी है; अब, हम इस अवसर पर इसकी आगे की प्रगति पर विचार करने का उपक्रम करते हैं।

21 अप्रेल 1805 ई० को गायकवाड के साथ एक निर्णायक पारस्परिक सुरक्षा सन्धि[6] सम्पन्न हुई जिसमे पहले के मुआयदों को सुदृढ करने व उनमें आवश्यक घटाबढी व हेर-फेर करने की कार्यवाही हुई। गायकवाड़ ने पहले दो हजार सहायक सेना रखने का करार किया था अब उसने तीन हजार सैनिक रखना स्वीकार किया जो उसी के राज्य मे रहेंगे, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर ही उनका उपयोग किया जा सकता था। उनके खर्चे के लिए 11,70,000 रू० की उपजवाले परगने नामजद कर दिए गये। चौरासी, चीकली और केड़ा (खेडा) के परगने सूरत की चौथ सहित अंग्रेजों को सौंप दिये गए और गायकवाड़ सरकार ने अंग्रेजों से जो कर्ज लिया था उसको चुकाने के लिये अन्य परगनो के राजस्व की आय भी उन्हीं के हक मे लिख दी गई।[7]

---

6. इस सन्धि के विषय में मुल्ला फीरोज ने अपने 'जार्जनामा' में विशेष विवरण लिखा है, वह द्रष्टव्य है। इसी जार्जनामा मे सन्धि की तिथि 12 अप्रेल लिखी है जो अंकों के विपर्यय से हुई भूल जान पड़ती है।

7. आनन्द राव गायकवाड की सरकार की ओर से जो परगने और जायदाद ऑनरेबुल ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सुपुर्द किये गए थे, उनकी सूची गङ्गाधर शास्त्री के एक कागज मे दी हुई है, जो कर्नल वॉकर की 1 जनवरी, 1806 ई० की रिपोर्ट के साथ सलग्न है :—

इनाम	रुपया
खेड़ा की किलेदारी	42,000
चीकली का परगना	76,000
सूरत बंदर की चौथ	50,000
चौरासी का परगना	90,000
	2,58000

→

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470 003

गोविन्दराव के गद्दी पर बैठने के बाद बड़ौदा और पूना राज्यों के बीच किसी प्रकार की सन्धि नहीं हुई थी। आबा शीलूकर का विद्रोह दबा देने के बाद गायकवाड़ ने अहमदाबाद, काठियावाड़ की मुल्कगीरी, पितलाद, नापाड़, चूंड़ा राणपुर, धन्धुका, घोघा और खम्भात के कुछ हक़्क़ पेशवा से इजारे पर ले लिए थे। बसई की सन्धि के अनुसार राणपुर, घोघा और धन्धुका के परगने व खम्भात में पेशवा के हक़्क़ तो ब्रिटिश सरकार को सौंप दिये गये थे। बाकी का ठेका पेशवा सरकार ने जून, 1804 से दस वर्ष के लिए गायकवाड़ के नाम कर दिया। परन्तु, जब यह अवधि समाप्त हो गई तो पेशवा ने नया पट्टा करने से इनकार कर दिया क्योंकि वह अब गुजरात में अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाना चाहता था। अतः 1815 ई० में उसने त्रीकमजी डेंगलिया[8] को सरसूबादार नियुक्त किया जिसने पेशवा के नाम से उन

जायदाद	
नाडियाद का परगना	1,75,000
धोलका	4,50,000
बीजापुर	1,30,000
मातर	1,30,000
मूडेह (महुधा)	1,10,000
तपा* कड़ी परगना	25,000
कीम कटोद्रा* की जकात	50,000
काठियावाड़ का सालाना वरात*	1,00,000
कुल जमा	11,70,000

*. कीम और कटोद्रा दो नाम है। कीम B.B.C.I Rly पर सूरत से 11 मील पर स्टेशन है। कटोद्रा या राव का करोद्रा-सूरत से बुरहानपुर वाली सड़क पर 11 मील पर स्थित है।

*. वरात या बरात (फारसी) राजस्व की हुण्डी। (देखिए—English Factories 1618-21, I, 201; note-322 etc.) ये साहूकारों द्वारा लिखी जाती हैं।

8. त्र्यम्बकजी डेंगलिया, वास्तव में, भूतपूर्व पेशवा का जासूस या गुप्तचर था। 1812 ई० के लगभग वह उस राजा का 'आमे आमनी' [सर्वसर्वा] हो गया और उन कनिष्ठ नौकरों और मुंहलगों का प्रधान बन गया जो बाजीराव को पूना के दरबार में घेरे रहते थे और उसके दुर्गुणों एवं ब्रिटिश विरोधी नीति को बढ़ावा देते रहते थे। इसीके परिणाम में उसका उच्छेद हुआ।

त्र्यम्बक जी को 1814 ई० में अहमदाबाद का सर सूबादार बनाया गया और जल्दी ही वह अपनी क्रूरताओं के लिए कुख्यात हो गया। इसके साथ ही

परगनों पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार प्राप्त किए हुए प्रभाव का ब्रिटिश शक्ति के विरुद्ध सांठ-गांठ करने में प्रयोग करने लगा।

सन् 1817 में पूना की सन्धि के अनुसार पेशवा ने उस तूफानी अधिकारी को अमान्य कर दिया। उसी समय उसने गायकवाड़ से भविष्य की समस्त माग छोड़ दी और पिछला हिसाब भी चुकता कर दिया तथा ओलपाड़ के अतिरिक्त गुजरात की समस्त राजस्व आय ब्रिटिश सरकार के हवाले कर दी।

उसी वर्ष 6 नवम्बर को बडोदा में एक विशेष सन्धि हुई जिसमें गायकवाड़ ने, जिसको पूना की सन्धि से बहुत लाभ हुआ था, गुजरात में अपने-अपने राज्य के सुविधानुसार एकीकरण की योजना स्वीकार की तथा अपनी सहायक सेना में एक हजार स्थायी पैदल व दो रिसालों की वृद्धि मंजूर की और बढ़े हुए खर्चे के लिए मध्यवर्ती परगने ब्रिटिश सरकार को देना स्वीकार कर लिया।



वह बडोदा दरबार से मिल कर अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगा। उसके अपराध उस समय तो चरम सीमा पर ही पहुंच गए जब कि उसने पण्ढरपुर के खुले बाजार में किराए के हत्यारों को गगाधर शास्त्री का वध करने के लिए नियुक्त किया। गगाधर गायकवाड सरकार की ओर से पेशवा के दरबार में राजदूत हो कर आया था और उसकी सुरक्षा का जिम्मा ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर ले रखा था। इस कार्य के लिए त्र्यम्बकजी को समर्पित करने हेतु पेशवा पर दबाव डाला गया और अंततो गत्वा वह थाना की जेल में बन्द कर दिया गया। 1816 ई० में एक साईस की सहायता से वह बड़े ही चमत्कारिक ढंग से जेल में से निकल भागा और दक्षिण की पहाड़ियों में चला गया। वहां पेशवा की साजिश से उसने गुरिल्ला युद्ध शुरू कर दिया। 1817 ई० की पूना-सन्धि के परिणाम-स्वरूप वह युद्ध बंद हो गया।'

अन्तिम मरहठा-युद्ध में त्र्यम्बकजी ने बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया था और कोरी गांव के युद्ध में तो उसकी वीरता विशेष प्रशंसनीय थी जब 1818 ई. में पेशवा ने आत्म-समर्पण कर दिया तो उसे खानदेश में से तलाश करके बन्दी बनाकर बंगाल भेज दिया गया। उसके विचित्र कृत्यों का कुछ परिचय डबल्यू. बी. हॉकले (W.B. Hockley) के चमत्कारिक परन्तु विस्मृत उपन्यास 'पाण्डुरङ्ग हरि' से मिलता है जो सम्भवतः दक्षिण के जीवन का सर्वश्रेष्ठ समसामयिक विवरण है।

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

प्रकरण पाँचवाँ

काठियावाड़ की मुल्कगीरी[1]

हम देख चुके हैं कि ग्रणहिलवाड़ा के राजाग्रो ग्रौर ग्रहमदाबाद के सुलतानों की नीति ग्रपने पड़ोसियों के प्रति मूलतः समान ही रही है। जहा वे ग्रपने को पूर्ण सबल समझते वहाँ पर पूर्ण विजय के ग्रधिकार जमाते परन्तु बहुत बार जहाँ ग्राधीनीकरण पूर्णतः सम्भव न होता वहाँ सदिग्धावस्था में संघर्ष न बढ़ा कर ग्रपना कर वसूल करके ही संतोष कर लेते थे। गुजरात में सुलतानों के जमाने में ग्रौर बाद में, ग्रहमदाबाद मे नियुक्त शाही सूबेदारों के समय मे मुसलमानी सत्ता कायम रखने के लिए जहाँ-जहाँ दुर्ग बने हुए थे वहाँ पर थाने कायम करके सेना रखी जाती थी जिससे प्रायः राजस्व लगातार वसूल होता रहता था ग्रौर विशेष परिस्थितियों के ग्रतिरिक्त हमला करने के लिए सेना का उपयोग ग्रनावश्यक-सा हो गया था। ये थाने धीरे-धीरे या तो उठा दिए गए या इनके सिपाही कम कर दिए गए। मुगल शासन के ग्रन्तिम दिनो में जो ग्रराजकता के दृश्य निरन्तर देखने को मिलते थे उनमें से बहुत-से तो करदाताग्रो से उचित रकम वसूल करने के लिए किये गये वार्षिक सैनिक ग्रभियानो के ही परिणाम थे। मुसलमानो के लिए तो ग्रपवाद रूप में यह रास्ता ग्रपनाना ग्रावश्यक हो गया था परन्तु जो लोग उनके बाद मे ग्राये उन्होंने तो इसको ग्रपना नियमित ग्रौर रुचिकर व्यवसाय ही बना लिया।

---

1. 'मुल्कगीरी' फारसी शब्द है, जिसका ग्रर्थ होता है, मुल्को को फतह करना। मराठी में इस शब्द का प्रयोग बलपूर्वक राजस्व वसूल करने के ग्रर्थ में होता है। (देखिए—बम्बई गजेटियर, भा. 7, प्र. 7, पृ. 315–318)

प्रोफेसर यदुनाथ सरकार ने ग्रपनी Shivaji and his Times नामक पुस्तक मे, जो कलकत्ता से 1919 ई० में *प्रकाशित हुई है,* पृ. 479–81 पर लिखा है कि मरहठों ने यह विचार मुसलमानों से लिया है। कुरान में 'दार उल हर्ब' ग्रर्थात् काफिरो के राज्य पर हमला करना जरूरी बताया गया है।

'सभासद बखर' मे, जिसका ग्रनुवाद श्री जे. एल. माथुर ने Life and exploits of Shivaji नाम से किया है, ग्रौर जो बम्बई से 1884–6 में प्रकाशित हुग्रा है, पृ. 20 पर स्पष्ट लिखा है कि *'मरहठा सेना को वर्ष में ग्राठ मास तक दूसरे राज्यो से धन वसूल करके गुजारा करना चाहिए।'*

मरहठो की मुख्य रूप से यही नीति थी कि देश मे जहां तक उनकी पहुंच होती वे वहा से बलात् पैसा वसूल करते थे। उनकी यह नीति तब तक बनी रही जब तक कि अनुभव से उन्होने यह न सीख लिया कि राजस्व की रकम सदा के लिए निर्धारित करके वसूली करना अधिक लाभदायक होता है और तभी उनके मन मे विजित देशो मे नियमित शासन चलाने की बात भी आई। उनके इतिहासकार का कहना है कि "जब मराठा लोग अपनी सीमा से बाहर प्रस्थान करते थे तो उनके लिए कर उगाहना या युद्ध करना समानार्थक बात थी। जब किसी गांव मे प्रतिवाद होता तो वहा के मुखिया पकड़ लिए जाते और उनको धमका कर या थोड़ा बहुत पीडित करके रकम ठहरा ली जाती थी, नकद रुपया तो बहुत कम मिलता था परन्तु गाव में कारोबार करने वाले बोहरों या साहूकारों से हुण्डियां लिखा लेना अच्छा समझा जाता था। ये हुण्डिया भारतवर्ष के किसी भी हिस्से मे मान्य हो जाती थी। किसी दुर्ग के रक्षक यदि असफल मुकाबला करते और हार जाते तो उन्हें तलवार के घाट पार उतार दिया जाता था।" ऐसी चढ़ाइयां मरहठों के धन-लोलुप स्वभाव के बहुत अनुकूल थी और ये "मुल्कगीरी या देशभ्रमण" के नाम से कही जाती थी।

जब मरहठे शुरू-शुरू मे गुजरात आये तभी उन्होने, पूर्ववर्ती मुसलमानो का अनुकरण करते हुए, देश की हालत और अपनी रुचि के अनुसार इस 'मुल्कगीरी' को अपना लिया था। तीन-तीन या चार-चार हजार लुटेरे घुड़सवारों की तादाद मे बिना बन्दूको या डेरे तम्बुओ को साथ लिए ये लोग उन इलाको मे लूटपाट करने पहुच जाते जो अभी राजपूतो के अधिकार में थे और जितना धन भोमिया या भूस्वामी देना कबूल कर लेते या वे अपने बल से वसूल कर सकते उतना ही वहां से समेट लाते। देश मे जैसे-जैसे इनकी सरकार जमने लगी वैसे-वैसे ही ये मुल्कगीरी के अभियान नियमित रूप मे होने लगे तथा उनके साथ अनियमित पैदल फौज भी जाने लगी। इन मरहठा सेनापतियों का यह कायदा था कि जहा तक सम्भव होता वहा तक ये वसूली की रकम को बढ़ाते जाते थे और अपने पूर्ववर्तियो द्वारा वसूल की गई रकम से तो कम करना जानते ही न थे। इस पिछले नियम को तो वे इतनी कट्टरता मे बरतते थे कि यदि बकाया रह जाए तो पिछली दर से दो साल की रकम वसूल करना ज्यादा पसन्द करते बजाय इसके कि कुछ नरम शर्तों पर कोई समझौता किया जाय। उधर राजपूत राजाओ का यह तरीका था कि वे इसी मे इज्जत समझते थे कि पहले तो जब तक बन पड़े किसी भी प्रकार का कर देने से इन्कार कर देना, विरोध करना और फिर अन्त में यदि वश न चले तो अपनी शक्ति भर अधिक से अधिक अनुकूल शर्तों पर समझौता कर लेना। मुल्कगीरी-सेना इतनी शक्तिशाली नहीं थी कि पूरे इलाके पर अधिकार कर सके या उन गढ़ियों को जीत सके जहा डटकर मुकाबला होता था; इसलिए ये लोग तो खुले शहरों और दुर्गहीन गांवो में

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

ही अपनी कार्यवाही करते थे और इसके लिए फसल के मौके को ही ज्यादा पसन्द करते थे क्योकि इससे ठाकुर को तुरन्त मजबूर करने की भी सहूलियत रहती थी और, यही नही, उनके घोड़ो के लिए चारा-दाना भी तुरन्त उपलब्ध हो जाता था। जब मरहठा सेना किसी मुखिया की सरहद पर पहुंचती और उसका किसी प्रकार का विरोध करने का विचार न होता तो वह अपने किसी मौतबिर प्रतिनिधि को सीमा पर भेज देता और उसको सभी तरह की वाजिब माग के लिए आश्वस्त कर देने के भी अधिकार प्रदान कर देता था। इस पर उसकी रियासत में आक्रामक सेना द्वारा लूटपाट न करने का आश्वासन दे दिया जाता और वहा पर एक या अधिक घुड़सवार, सेना के अग्रभाग मे से, प्रत्येक गाव के सुरक्षार्थ छोड़ दिये जाते थे। ये (रक्षक) बांहधर[2] कहलाते थे। जब कोई ताल्लुकेदार सामना करने का विचार प्रकट करता अथवा तुरन्त निपटारा करने की इच्छा प्रकट न करता तो चारो तरफ पिंडारियो को छोड दिया जाता और सेना वहां पर हर तरह की लूटपाट व विनाश करती हुई आगे बढ़ती। खेतो मे से पके हुए धान की फसल साफ करदी जाती, गावो मे जबरदस्ती आग लगाकर उनको नष्ट कर दिया जाता, घरो मे नगी दीवारो के अतिरिक्त कुछ न छोड़ा जाता और प्रायः उस (राजपूत सरदार) की जमीन में प्रत्येक एकड की खेती नष्ट कर दी जाती व हर एक ढाणी की झोपड़ियो को जलाकर ढेर कर दिया जाता; यह क्रम तब तक चलता रहता जब तक कि वह मांगा हुआ राजस्व देना स्वीकार न कर लेता।

शिवराम गारड़ी, जिसके विषय मे पहले उल्लेख किया गया है, कवायद सीखे हुए सिपाहियो का अफसर था। उसने मुख्यतः मुल्कगीरी राजस्व की वसूली के काम को अपने निर्देशन मे बहुत आगे बढ़ाया और मूल स्थिति से कही का कही आगे पहुंचा दिया। पूर्व अधिराजों द्वारा जो वास्तविक राजस्व वसूल किया जाता था उसके अतिरिक्त भी मरहठो ने कितने ही नामों से अन्य प्रकार के कर लागू कर दिये, जैसे—अपने रिसालों के घोड़ों के लिए 'चारा-दाना' का कर तथा 'प्रकीर्ण-व्यय'—कर जिसके अन्तर्गत सभी तरह के बढे-चढे व्यय आ जाते थे। कर देने वाले इलाके को बाद मे दो भागो में बाट दिया गया था—काठियावाड, जिसमे झालों का देश, आस-पास की समस्त भूमि और सारा सोरठ प्रायद्वीप आ गया था और महीकाठा,

2. मूल पुस्तक मे बांहधर (Bandhurs) का अर्थ तीरदाज, बाणधर (a bowman) लिखा है। वास्तव में, बांहधर जमानती या प्रतिभू को कहते हैं। —(हि॰ अ॰)

जिसमे मही नदी के किनारे के अम्बाभवानी और कच्छ के रण तक का देश सम्मिलित था।[3]

अरब सिपाहियों द्वारा कितने ही स्थानों पर विद्रोह कर देना, महाराजा गोविन्दराव का देहान्त हो जाना तथा कान्होजी और मल्हार राव का विरुद्ध हो जाना आदि कुछ ऐसे कारण उपस्थित हो गए थे कि सदा की भाँति काठियावाड़ में मुल्कगीरी करने के लिए फौज नही भेजी जा सकी जिससे 1798–99 ई० मे उस प्रान्त के राजस्व की रकम चढ़ी रह गई। इस चढ़ी रकम को वसूल करने का काम बाबाजी अप्पाजी को सुपुर्द किया गया इसलिए कड़ी-विजय के तुरन्त बाद ही 1802 ई० में वह इस कार्य को पूरा करने के लिए रवाना हुआ। बीच के समय मे काठियावाड़ के तालुकेदारो ने अपने-अपने किले बनवा लिए और मुकाबला करने के लिए तैयार हो गए; जो खजाना मुल्कगीरी की रकम अदा करने मे काम आता उसको और-और कामो मे लगा दिया, मुख्यतः अपने ही आपसी झगड़ो मे। उनकी आशंकाए इस खबर से और भी ज्यादा बढ गई थी कि बाबाजी ने चढ़ी हुई रकम को एक साथ वसूल करने का पक्का विचार कर लिया था। मल्हार राव के साझीदार पाटड़ी के देसाई को अधीन करके बाबाजी ने काठियावाड में प्रवेश किया। उसने मालिआ, मोरबी, जूनागढ, भावनगर और वढवाण के अभियानों में ताबड़तोड सफलता प्राप्त करके कड़ी के जागीरदार के भयानक विद्रोह को, उसे पुत्र-सहित बन्दी बनाकर, दबा दिया और उस देश से वसूल होने योग्य सम्पूर्ण बकाया का हिसाब बेबाक कर लिया; साथ ही, उसने उस प्रान्त को अधीन करके ऐसी व्यवस्था कायम कर दी जो सैकडो वर्षों से देखने में नहीं आई थी। इस अभियान के दौर में गायकवाड़ सेनापति को जो आशातीत सफलता प्राप्त हुई वह उसकी सरकार की वास्तविक शक्ति से परे थी।' परन्तु, इसके मूल मे ऐसे पर्याप्त प्रमाणों का अभाव नहीं था कि प्रायद्वीप के तालुकेदार यह जानकर तुरन्त ही बाबाजी की शर्तों को मानने के लिए तैयार हो गये कि उसको व उसके राजा को ब्रिटिश शक्ति का बहुत

---

3. इन दोनों प्रान्तो से जो मुल्कगीरी की आय होती थी उसके आँकड़े गायकवाड सरकार के अधिकारियों ने 1802 ई० मे कर्नल वॉकर को इस प्रकार दिए थे —

प्रान्त	गायकवाड़ का भाग	पेशवा का भाग	योग
काठियावाड	4,09,521 रु०	5,38,019 रु०	9,47,540 रु०
महीकांठा	3,00,622 रु०	15,000 रु०	3,15,622 रु०

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

बड़ा वरदहस्त प्राप्त था। यदि उन्ही के शब्दो का प्रयोग करें तो उनको भय था कि 'फिरंगियो की फौज चारो ओर फैल जावेगी।" ऐसी दशा मे, सुदृढ़ नीति के उद्देश्य, मानवीय भावना और ब्रिटिश सत्ता की सत्कीर्ति ने इस बात को आवश्यक बना दिया कि जो प्रभाव अदृष्ट होते हुए भी सत्ता मे आ चुका है उसे खुले रूप मे स्वीकार करके पूर्णरूपेण उपलक्षित किया जाय।

गायकवाड़ सरकार का ब्रिटिश के साथ सम्बन्ध स्थापित होते ही यह ज्ञात हो चुका था कि वड़ोदा रियासत की आमदनी का बहुत बडा भाग काठियावाड़ में नियमित रूप से मुल्कगीरी राजस्व की वसूली होने पर निर्भर था और उस समय जो खिराज की रकम चढी हुई थी उसका वसूल हो जाना कोई सामान्य काम नही था। गायकवाड़ का मन्त्रिमण्डल यह अच्छी तरह समझे हुए था कि इस बकाया रकम को ब्रिटिश सहायता के बिना वसूल करना उनके बूते की बात नही थी, उनकी इस कमजोरी के कारण ही यह आवश्यक हो गया कि सहायक-सेना मे देशी पैदल फौज को बढा कर तीन बटालियनें रखनी पड़ी और इसके साथ ही यह भी निश्चित करना पड़ा कि इन फौजो मे से एक को काठियावाड मे आवश्यकता पडने पर ही भेजा जायगा। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार अपने आपको अप्रत्यक्ष रूप से एक ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आबद्ध समझती थी कि यदि उसके प्रति अपने मित्रो की इच्छानुसार मार्ग अपनाया जाय तो उसको अपने सामान्य सिद्धान्तो और राजनीति से विलग होकर मूल्य चुकाना पड़ेगा। इसलिए सर्वोच्च सरकार के तत्कालीन अध्यक्ष मार्क्विस ऑफ वेलेजली को *15 दिसम्बर, 1802 को ही यह मत प्रकट करना पड़ा कि यदि* प्रायद्वीप के कुछ राजाओ से नियत समय पर, फौज भेजने की आवश्यकता पडे बिना ही, वार्षिक कर देते रहने का समुचित समझौता कर लिया जाय तो यह गायकवाड़ सरकार और गुजरात मे ब्रिटिश हितो के प्रति अधिक उपयोगी और स्वीकार्य सेवाकार्य होगा। इस प्रकार, वास्तव मे, लगातार कितने ही ऐसे प्रसग आ पड़े थे कि ब्रिटिश के लिए काठियावाड़ के मामलो मे इस तरह का हस्तक्षेप करना आवश्यक हो गया। गायकवाड सरकार ने इस सम्भावना को समझ लिया कि यदि ठाकुर लोग स्वेच्छा से कर देने लगेंगे तो उनके अत्यधिक सैनिक व्यय मे बहुत-सी कमी की जा सकेगी; सरकार को यह भी पूर्वाभास हुआ कि कर-वसूली के नाम पर अनाप-शनाप खर्चे के रूप में जो बहुत बड़ी रकम हड़प हो जाती है वह बच जायगी और इससे उनके आय-स्रोत मे मूल्यवान वृद्धि होगी; परन्तु, साथ ही, इन अभिलषित उद्देश्यों को पूरा करने के उपायो के लिए वे अपने ब्रिटिश मित्रो के ही मुखापेक्षी थे। उधर, ब्रिटिश अधिकारी यद्यपि गायकवाड सरकार की सहायता करने को औपचारिक रूप से आबद्ध हो चुके थे और वे इसके लिए हृदय से इच्छुक भी थे, परन्तु काठियावाड़ी रियासतों के हितों को ध्यान मे रखते हुए जब वे विचार करते थे तो ईमानदारी और आत्म-सन्तोष की दृष्टि से मुल्कगीरी का अत्याचारपूर्ण रिवाज अच्छा नहीं लगता था।

वे यह भी जानते थे कि राजा लोग उनकी मध्यस्थता को तुरन्त स्वीकार कर लेंगे और कदाचित् उनके सक्रिय सहयोग के अभाव में बड़ोदा रियासत को तत्कालीन परिस्थितियों में अपने उद्देश्य को पूरा करने हेतु कार्यवाही चालू रखना ही पड़ेगा, और ब्रिटिश सरकार के सिद्धान्तों से कितना ही विरुद्ध होने पर भी इसमें जो कुछ सफलता मिलेगी उसका अधिकांश ब्रिटिश की सम्भावित सहायता के ही कारण प्राप्त होगा।

यद्यपि ये सिद्धान्त कुछ समय पूर्व ही स्वीकार कर लिये गये थे, परन्तु 3 अप्रेल, 1807 ई० तक बम्बई सरकार इनको सक्रिय रूप देने की स्थिति में नहीं आई थी। कर्नल वॉकर इन बातों से अच्छी तरह परिचित था और स्थानीय लोगों पर उसका प्रभाव भी था अतः इन सम्मिलित गुणों के कारण उसी को इस कार्य के लिए अधिकारी चुना गया और उसी दिन उसके अधीन एक सेना देकर आज्ञा दी गई कि वह गायकवाड़ की पर्याप्त सेना के सहयोग से सोरठ द्वीपकल्प में उक्त निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रवाना हो जाय।

ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता से राजस्व वसूली के लिए मुल्कगीरी बन्द करने और इसके बदले में निश्चित खिराज की रकम का बन्दोबस्त करने की बात काठियावाड़ के राजाओं को मान्य होगी या नहीं, यह जानने के लिए पहले से ही उपाय कर लिये गये थे। यद्यपि इसका परिणाम पक्ष में ही आया था, परन्तु कर्नल वॉकर को लगा कि काठियावाड़ में ब्रिटिश फौजों के आगमन के बहुत बाद तक राजा लोग इस बात पर विचार करते रहे कि ब्रिटिश सरकार किस सीमा तक, वास्तव में, निःस्वार्थ भाव से इस काम को सम्पन्न करेगी।

उस अफसर ने लिखा है कि "राजाओं के पास जो परिपत्र भेजा गया था उसको निर्व्याज नहीं समझा गया और ज्यों ही फौजें आगे बढ़ीं तो उस ओर से असाधारण और विचित्र तरह के सम्वाद आने लगे जिनसे उस देश की भावनाओं का पता चलता था। अत्यन्त स्वाभाविक रूप में लोग सोचने लगे कि अब हम (ब्रिटिश) लोग अपनी तरफ से मुल्कगीरी अभियान पर निकले हैं अतः मेरे पास ऐसे कुछ लोगों के प्रस्ताव आने लगे कि उनकी सेना बहुत बहादुर और पैसा निकलवाने की कला में दक्ष है अतः यदि उनकी सहायता ली जायेगी और उनको हिस्सेदार बना लिया जायेगा तो कम्पनी की फौज को कुछ अधिक करना-धरना नहीं पड़ेगा। मालिया[4] के राजा ने कच्छ रण पर अधिकार करने और वोड वागड (वोडवाड़) कच्छ तथा सिन्ध में मिलकर लूट करने के लिए आक्रमण करने की इच्छा प्रकट की।

4. काठियावाड़ की एक रियासत—इम्पीरियल गजट, भा. 17; पृ 86

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

दूसरे लोगों ने सोचा कि-हमारा उद्देश्य युक्ति से गायकवाड़ के अधिकार को समाप्त कर देने का है इसलिए वे बडी प्रसन्नता से कम्पनी की अधीनता स्वीकार करने की इच्छा जताने लगे और गायकवाड़ की उपेक्षा-सी करते प्रतीत होने लगे। यही नहीं, कुछ ऐसे प्रवंचनापूर्ण प्रयत्न भी किये गये कि गायकवाड सरकार की दयानतदारी पर से हमारा विश्वास उठ जाय। ऐसे प्रयत्नों के विरुद्ध तैयार रहना और उनको प्रथम प्रयास में ही समाप्त कर देना आवश्यक जान पडा। उनका अभिप्राय प्रवचनापूर्ण था जिसके परिणाम, आचरण में भेद और असहयोग उत्पन्न हो जाने के कारण, संयुक्त हितों पर आधारित उद्देश्य के लिए बहुत गम्भीर निकल सकते थे। इसलिए मैंने भोमियों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि कम्पनी की फौजें तो काठियावाड में गायकवाड़ की सहायता के लिए आई थी और हमारा मकसद कम्पनी की मध्यस्थता से देश में ऐसी स्थायी व्यवस्था कायम कर देने का था कि जिससे गायकवाड़ सरकार भी लाभान्वित हो और भोमियो के हित भी हमेशा के लिए सुरक्षित हो जाएं।

कर्नल वॉकर के प्रयत्नों से गायकवाड़ सेना के सेनापति विट्ठलराव ने योग्यतापूर्वक पूर्ण सहायता की, जिससे जल्दी ही भोमियों के मन मे विश्वास उत्पन्न हो गया; ब्रिटिश सरकार के अभिप्राय निःस्वार्थ हैं, इस बात को सहज ही प्रमाणित करने के लिए भी एक प्रसग उपस्थित हो गया। कदोरणा का किला नवानगर वालों ने छीन लिया था जिसको ब्रिटिश सेना ने हस्तगत करके पुनः उसके मूल स्वामी को लौटा दिया। अब भोमियो के विचार पूरी तरह बदल गये थे और कितने ही निर्बल राजा तो ब्रिटिश सरकार के न्याय द्वारा अपने सभी नुकसानों की पूर्ति के स्वप्न देखने लगे। ब्रिटिश प्रतिनिधि ने जिन लोगों को संरक्षण से लाभ हो सकता था उनको संरक्षित करने के प्रत्येक अवसर का तत्परता से उपयोग किया, बहुत से धाडैतियो को घर बैठा देने मे वास्तविक सफलता प्राप्त की और अन्य बहुत से आतंकपूर्ण कार्यों को भी रोका, परन्तु उसने अपने प्रयत्नों को सामान्यतया एक ही उद्देश्य के प्रति केन्द्रित किया और वह यह था कि भोमियो के दुर्भाग्यपूर्ण अस्पष्ट और दुःसाध्य मामलों के विवादो मे न पड कर ऐसी व्यवस्था करना कि जिससे उनको भविष्य मे भय से मुक्ति और सुरक्षा प्राप्त हो सके। इतने दिनो से राजस्व की कोई दर निश्चित नही थी और इसकी रकम घटती-बढती रहती थी इसलिए उसकी मुख्य कठिनाई राजस्व कायम करने के लिए कोई उचित मानदण्ड ग्रहण करने की थी। स्पष्ट था कि एक तरफ तो बडोदा सरकार का ऐसी आशा रखना उचित ही था कि उनकी राजस्व आय मे यदि बढोतरी न हो तो जो कुछ उस समय थी उसमें बिना कमी किये रकम कायम की जाए—और ब्रिटिश सरकार को भी उनकी आवश्यकताओं की पूरी-पूरी जानकारी थी ही; उधर भोमिया सरदार भी ब्रिटिश सत्ता पर विश्वास किये बैठे थे कि उनसे जो अत्यधिक रकम वसूल की जाती थी उससे उनको

बचत हो जायगी और उन पर हमेशा के लिए ऐसी मालगुजारी नहीं बांधी जायगी जिसका अदा करना उनके बूते से बाहर हो।

बाबाजी और अन्य प्रशासकों के समय में राजस्व की चालू दर मुख्यतः 'अतिरिक्त व्यय' (सायर खर्च) के नाम पर बहुत ज्यादा बढ़ गई थी और भोमियों ने उनकी भूमि की अधिक से अधिक आय पर हिसाब लगाकर कायम की गई इस रकम को अनिच्छापूर्वक स्वीकार कर लिया था, यह रकम स्थायी बन्दोबस्त के लिए उचित नहीं थी। इसके दो कारण थे, एक तो इसको कायम हुए इतना समय नहीं हुआ था कि इसको अमल-दर-आमद माना जा सके, दूसरे, यह बात स्पष्ट थी कि आगामी वर्षों में बिना बल प्रयोग और दबाव के इसका वसूल होते रहना सम्भव नहीं था। अतः प्रत्येक सरदार को थोड़ी बहुत छूट अवश्य दी गई और मुख्यतः उक्त मद में। फिर, ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता से इकरारनामे तय हुए। इनके अनुसार बड़ोदा सरकार को यह आश्वासन दिया गया कि खिराज की जो दर तय हुई है उसके हिसाब से रकम नियमित रूप से अदा होती रहेगी और देश के भोमियों को इस बात के लिए पाबन्द किया गया कि वे आपसी आक्रमण, लूट खसोट और ऐसे आतंककारी कार्य बंद कर देंगे जिनसे मुल्क में अब तक लगातार दुःख फैले हुए थे; समुद्री किनारे की छोटी-छोटी रियासतों ने जल-दस्यु वृत्ति का परित्याग करने की प्रतिज्ञा की तथा अपनी सीमा में टकराकर टूटे हुए जहाजों की सम्पत्ति पर से अपना हक छोड़ दिया, उसी समय जाड़ेजा और जेठवा[5] राजपूतों ने कन्या-वध की

---

5. जाडेजा अथवा जारेजा और जैठवा अथवा जेठवा राजपूत जातियों के विषय में देखिए—टॉड कृत 'इतिहास' स. 1920, भा. 1; पृ. 102, 136।

इस विषय में टॉड कृत 'Travels in Western India' का हिन्दी अनुवाद 'पश्चिमी भारत की यात्रा' का प्रकरण 19 भी द्रष्टव्य है।

अयोध्या के राजा रामचंद्र जी के सेनापति दक्षिण देश के राजा हनुमान जी का पुत्र मकरध्वज हुआ। उसको रामचंद्र जी ने श्रीनगर का राज्य दिया। उसके मोरध्वज हुआ जिसने मोरबी बसाया, जहाँ 'ध्वज' नामधारी सात राजा हुए। इसके बाद अड़तालीस 'कुमार' पदवीधारी राजा हुए। तदुत्तर बारह 'राजान' पदधारी और सत्ताइस 'महाराज' पदवी वाले राजा हुए। 94वाँ भाणजी महाराज और 95वाँ जेठीजी हुआ जिसके वंशज जेठवा हुए। ऐसी एक किवदन्ती प्रचलित है कि जब हनुमान जी समुद्र लाँघकर लंका जा रहे थे तो उनके पसीने की बूँद को एक मकरी निगल गई और उसके गर्भ रह गया। उसी का पुत्र मकरध्वज हुआ।

श्री सी. वी. वैद्य ने अपने 'स्टोरी ऑफ दी रामायण' नामक ग्रन्थ के पृ. 55 में लिखा है कि हनुमान मनुष्य कोटि के थे।

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

प्रमानुषिक प्रथा को भी बन्द करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और मध्यस्थ बनी हुई (ब्रिटिश) शक्ति ने देश को आतंक एवं मुल्कगीरी अभियानों से प्रतिवर्ष होने वाली हानि से बचाने का बीड़ा उठाया। इन करारों को स्थायी रूप से कायम रखने व गायकवाड सरकार को यह पक्का विश्वास दिलाने को कि इन सदुपायों को अपनाने पर बहुत से भावी लाभ आधारित है, प्रान्त में मरहठा घुड़सवारों और ब्रिटिश सहायक सेना की एक पलटन कायम रखने का निश्चय किया गया।

ब्रिटिश राजदूत के प्रभाव से जो बन्दोबस्त योग्यतापूर्वक किया गया उसके फलस्वरूप काठियावाड के तालुकेदारों ने तो इस बात का आभार माना कि रकम वसूल करने के एक आतंकपूर्ण तरीके में बहुत बड़ा सुधार आ गया और इसका भविष्य प्रायः निश्चित हो गया; उधर, गायकवाड सरकार के अधिकारों को (जो अब पहले की तरह केवल अधिकाधिक शक्ति के साधनों पर ही आधारित नहीं रहे थे) देश के ठाकुरों ने स्वेच्छा से अधिक दृढ़ता और औपचारिकता के साथ मान्य कर लिया और अब ये सम्बन्ध भविष्य के लिए ऐसे आधारों पर स्थिर हो गए जो प्रायः सभ्य रियासतों में परस्पर हुआ करते हैं। कर्नल वॉकर का कहना है कि "इससे यथार्थ रूप में वह लाभ हुआ जिसको गायकवाड़ से पूर्व कोई भी सरकार प्राप्त नहीं कर सकी थी।"



प्रकरण छठा

बाघेल–धोलका के कसबाती–झाला

अब हम उन राजपूत घरानों का विवेचन करेंगे जिनका कर्नल वॉकर से उस समय वास्ता पडा। जब गुजरात के पूर्वोल्लिखित बहुत से परगने ब्रिटिश अधिकार मे आए तो बाद के कौल करारों द्वारा उस क्षेत्र के अनेक भागो में अंग्रेजी सरकार के प्रभाव का प्रसार हुआ।

राजवंशी बाघेलो की छोटी शाखा के विषय मे हमको अहमदशाह के समय से अब तक कोई बात लिखने का अवसर नही मिला।[1] कर्नल वॉकर ने साणंद अथवा कोट के राजा का पता लगाया जो धोलका परगना के स्वतंत्र गरासियो[2] मे अग्रगण्य था। यद्यपि उसके अधिकार मे चौबीस ही ग्राम थे फिर भी वह राजा की पदवी धारण करता था एवं विस्मृत अणहिलपुर के उच्च राजवश की सन्तान होने का गर्व करता था। उसका मुख्य नगर कोट था जो यद्यपि दुर्ग अथवा नगरकोट से सुरक्षित नही था फिर भी एक दुर्भेद्य झाडियो के जगल से घिरा हुआ था। वह अपनी सेवा मे दो हजार पैदल सिपाही व डेढ सौ घुड़सवार रखता था जो हमेशा उसके निवास-स्थान पर पहरा देते थे और उसकी अगरक्षा करने अथवा शत्रु पर आक्रमण करने मे उसी तत्परता से सलग्न थे जैसे किसी सार्वभौम सत्ताधारी राजा के सेवक होते हैं। गागड का सरदार उनका सम्बन्धी था जिसके पास यद्यपि गिनती के आठ ही गाव थे परन्तु वे बहुत उपजाऊ थे और उसके पास एक हजार सिपाहियो की सेना थी।

ये दोनो ही ठाकुर सर्वोच्च सत्ता को वार्षिक कर दिया करते थे। यह रकम परिस्थितियो के अनुसार घटती बढती रहती थी। सरकार को उनके आन्तरिक

---

1 देखिए रासमाला, हि अ, भा. 1 (उ.); पृ 314–15.

2 गुजरात के गरासिया वशपरम्परागत भू-स्वामी, जमीनदार या वतनदार थे। बहुत करके ये लोग मुसलमानो के समय से ही शासक सत्ता को एक निश्चित 'जमा' या रकम कर के रूप में देते आते थे। मरहठो के अधिकार मे गरासियो का एक नया दल उठ खडा हुआ, जो सिर्फ लुटेरे थे और जहाँ कहीं मौका मिलता जमीन पर कब्जा करके वे गढियाँ बना लेते थे। वहाँ से आस-पास के देश से 'टोडा गरास' के नाम से कर वसूल करते या लूटपाट करते रहते। वे लोग प्राय: गुजरात के बडे मैदान (रास्ती) के पूर्व मे पहाड़ी इलाके (मेहवास) में बने रहते थे और मैदान मे लूटपाट किया करते थे।

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—47 ‧ 3

मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था; वह तो केवल इनसे बलपूर्वक कर वसूल कर लेती थी और इनको देश की शान्ति में गड़बड़ी पैदा करने से रोके रखती थी।

बाघेलों के पडोस मे ही धोलका के कसबाती[3] थे, जो मुसलमानों की एक लड़ाकू जमात थी। ये लोग प्रान्त के मुख्य नगर मे रहते थे और मरहठे इनको राजपूत गरासियो की शक्ति से मुकाबला करने के लिये बहुत ही उपयोगी समझते थे। कसबातियो के तीन भेद थे, मीणा; रहेण और परमार। ऐसी प्रसिद्धि है कि पहली दो जातियां तो सोलहवी शताब्दी के अन्त मे दिल्ली की तरफ से आई थी। अन्तिम जाति के लोग, जैसा कि उनके नाम से ही ज्ञात होता है, राजपूत रक्त के है और वास्तव मे मूली के परमारों के वशज हैं जो मुसलमान धर्म मे परिवर्तित होकर बोताद में बस गए थे।[4]

कवियो की कथा के अनुसार सन् 1654 ई० मे बोताद के मलिको में से दो भाइयो में झगड़ा हुआ और उनमे से एक मलिक मोहम्मद नाराज हो कर धोलका चला गया। उसके पौत्र कमाल मोहम्मद के सात पुत्र हुए जो अपनी अधीनता में दो सौ घुड़सवारों के साथ अहमदाबाद मे अभयसिंह राठौड की सेवा मे रहते थे और बाद में नवाब कमालउद्दीन (या जवामर्द खा) बाबी के साथ हो गए थे। जब नवाब अहमदाबाद छोड़ने को बाध्य हुआ तो परमार जूनागढ़ लौट आए और वहा पर बहुत वर्षों तक सेवा करते रहे। अन्त मे, जब उनकी तनख्वाहें बहुत चढ गई तो जूनागढ के नवाब ने गारियाधार के गावो की खिराज वसूली के अपने अधिकार उनको दे दिए क्योंकि वह स्वय वसूल करने मे समर्थ नही था। ये भाई गारियाधार के लोगो से पहले ही से बहुत मिले जुले थे इसलिए वे अपने कुटुंब और सेना सहित राजी-खुशी वहां के लिए रवाना हो गए। गाव वालो को इससे बड़ी तकलीफ हुई और उन्होंने इस पाप को हमेशा के लिए काट देना चाहा; परन्तु, इसी बीच मे उन लोगो के मन मे किसी प्रकार की शका उत्पन्न न हो जाय इसलिए उन्होंने एक-एक घुडसवार को

3. कसबाती का अर्थ है कस्बे या नगर मे रहने वाले। ये कसबाती लोग प्राय: उन सिपाहियो के वंशज है जो लूट या बोहरगत (रुपया उधार का लेनदेन) के द्वारा मालदार हो गए है और मध्यम वर्ग अथवा जमीदार श्रेणी तक आ पहुंचे हैं। गायकवाड सरकार इनसे नरमी का व्यवहार करती थी और इनसे ही अधिकृत गाँवो के कर की रकम तय कराती थी। इनको ऋणियो को बन्दी बनाने का अधिकार प्राप्त था और सुरक्षा की एवज मे वनियों से रकम वसूल करने को भी ये लोग अधिकृत थे। घोघा समुद्रतट के कुछ मल्लाह भी कसबाती है। हमारे व्यापारिक जहाजों के लिए आजकल हमको घोघा प्रान्त से बहुत से कुशल नाविक इन्ही में से प्राप्त होते है।

4. देखिए रासमाला हि. अ.; भा-1 (उ.) पृ 339-345।

एक-एक घर मे ग्रामन्त्रित किया ग्रौर उनकी बड़ी ग्रावभगत की। ग्रन्त मे, एक रात को जब सभी ग्रश्वारोही ग्राराम कर रहे थे तो संकेत के लिए नगाड़ा बजाया गया ग्रौर प्रत्येक गृहस्वामी ने ग्रपने ग्रतिथि घुड़सवार को मार डाला। मलिक फतह मोहम्मद ग्रौर मलिक उच्छा, बस यही दो परमार-बन्धु जीवित बचे, बाकी उनके सभी भाई ग्रपने समस्त रक्षकों के साथ नष्ट हो गए।

जब यह खबर धोलका पहुची तो सब तरफ से यही चिल्लाहट हुई कि बड़ा भारी ग्रत्याचार हो गया। दोनो ताल्लुकेदारो ने भी कहा, 'यदि हम युद्ध मे मारे जाते तो कोई गम नही था, परन्तु हमारे साथ दगा करके यह ग्रत्याचार किया गया है। हम तो ग्रब फकीर हो जाएंगे।" उनके मित्रों ने फकीर न बनने ग्रौर बदला लेने के लिए उनको समझाया बुझाया। उन्होने यह बात मान ली ग्रौर नये घोड़े खरीद कर व नये ग्रादमी साथ लेकर नवाब की सेवा मे जूनागढ़ लौट गये। कुछ वर्षों तक तो बदला लेने का कोई ग्रवसर नही मिला परन्तु ग्रन्त में एक बार जब गायकवाड़ की सेना काठियावाड़ मे दौरा कर रही थी तो धोलका का कसबाती नीवाज खां रेहण भी मरहठो के साथ था। रेहण ग्रौर परमारों मे ग्रच्छा मेलजोल था इसलिए मलिक फतह मोहम्मद ग्रौर मलिक उच्छा भी उसके साथ हो लिये। नीवाज खां ने गारियाधार का लगान गायकवाड़ को चुका दिया ग्रौर बाद मे ताल्लुकेदारो का बदला लेने के लिए उसने गाव पर ग्राक्रमण करके उसको नष्ट कर दिया; वहा पर गधो से हल चलवाया ग्रौर नमक बुग्रा दिया। परमारो ने गाव के मुखिया व उसकी दो लड़कियों को पकड़ लिया ग्रौर उनको ग्रपनी रखैल बना लिया।

कमाल मोहम्मद ने बहुत धन पैदा किया था; परन्तु उसके सब से बड़े लड़के ने ग्रपनी तलवार का उपयोग इतनी ग्रच्छी तरह किया कि उनके वंश की सम्पदा बढ़ गई ग्रौर उसको कुछ गांव भी प्राप्त हो गए। वह केशरी का ताल्लुकेदार कहलाता था ग्रौर उसके ग्रधिकार मे सोलह गांव थे। गारियाधार मे उसकी मृत्यु हो जाने के बाद उसका भाई फतह मोहम्मद उसका वारिस हुग्रा; वह भी 1746 ई० मे मर गया तब उसका पुत्र शेर मियां गद्दी पर बैठा। उसने ताल्लुके पर ग्रच्छी तरह शासन किया, ग्रपनी तलवार का ग्रच्छा उपयोग किया ग्रौर ग्रपने गरास मे वृद्धि की।

शेर मियां 1799 ई० मे मर गया ग्रौर उसका पुत्र भावा मियां उत्तराधिकारी हुग्रा।

फतह मोहम्मद के भाई मलिक उच्छा को उसके पिता की जायदाद मे कोई हिस्सा नही मिला परन्तु ग्रपने सद्भाग्य से उसको स्वतंत्र रूप से कुछ गाव मिल गए ग्रौर उसने ग्रपना ठिकाना कायम कर लिया; वह धनवाड़ा का ताल्लुकेदार कहलाने लगा। यह तालुका भी धोलका परगना मे ही था। 1765 ई० मे उसकी मृत्यु हुई तब उसके तीन पुत्र थे। सब से बड़ा नाना मियां ग्रपने पिता की गद्दी पर बैठा ग्रौर

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

1799 ई० में निःसन्तान मर गया। उसके भाइयो को पिता के गरास मे तो कोई हक नहीं मिला परन्तु उन्होने अपने ही बलबूते पर कई ग्राम प्राप्त कर लिए। उनकी बहन मूल बीवी शेर मिया को ब्याही थी। और भावा मिया यद्यपि दूसरी स्त्री का लड़का था फिर भी वह एक तरह से नाना मिया का भानजा था इसलिए वही उसका वारिस हो गया और उसको पाच गाव, एक हाथी, दो सौ घोडे व अन्य सम्पत्ति प्राप्त हो गई।

भावा मिया के गद्दी पर बैठने के कुछ ही समय बाद चार सौ लुटेरे जट्ट अश्वारोहियो की एक टोली ने आकर उसके एक गाव पर आक्रमण किया, उनका खयाल था कि शेर मिया तो मर ही गया है, अब वे निर्भय होकर यह कार्यवाही कर सकते हैं। यद्यपि वे शेर मिया से कई बार मात खा चुके थे, परन्तु इस बार कुछ मवेशी घेर ले गए और वापस केशरी पहुच कर ही उन्होने दम लिया। यहां उन्होने गांव वालो को बहुत तग किया और यद्यपि लोगो ने बहुत समझाया कि "यह शेर मियां का गांव है, यदि उसके घुड़सवार आ पहुंचेंगे तो तुमको हानि उठानी पड़ेगी"; परन्तु जट्टो ने कोई ध्यान नही दिया और कहा "शेर मिया तो ससार से चला गया और उसका लड़का पालने मे झूल रहा है।" भावा मिया ने जब इस घटना का हाल धोलका मे सुना तो वह तुरन्त घोडे पर सवार हो साठ अश्वारोहियो को साथ लेकर रवाना हो गया। उस समय उसकी अवस्था बाईस वर्ष की थी। जब उसका मुकाबला लुटेरे घुडसवारो से हुआ तो वह निधड़क होकर उनके बीच मे चला गया और उसने ऐसी तलवार चलाई कि उसकी उम्र को देखते हुए सब दग रह गए। लुटेरे जल्दी ही भाग खडे हुए और पाच मृतको व अनेक घायलो को पीछे छोड गए। जब धोलका के लोगों को मालूम हुआ कि *ताल्लुकेदार जट्टो पर हमला करने के लिए रवाना हो गया है* तो बडी सख्या मे घुड़सवार तैयार होकर उसकी मदद करने को दौड पड़े परन्तु वे लडाई के समय पर वहां नही पहुच सके। उनके पहुंचने से पहले ही भावा मियां और उसके साथी गिरफ्तार किए हुए घोड़ो और मारे गए पाच जट्ट मुखियाओ के सिर साथ लिए हुए लौट रहे थे।

उन दिनों जट्ट और काठी बडी-बड़ी टोलियां बना कर देश में बेरोकटोक घूमते रहते थे मानों वे सरकारी सिपाही हो। भावा मियाँ के पूर्वजों ने उन्हें अनेक बार परास्त किया था और इसी कारण उनमें कट्टर दुश्मनी चली आ रही थी, परन्तु जब उसने उस नादान उम्र में ही ऐसी बहादुरी दिखाई और उसकी कीर्ति दिन ब दिन बढने लगी तो जट्ट लोग उसका सामना करने से डरने लगे।

शेर मियां पेशवा की सेवा में रहा था, परन्तु भावा मियां गायकवाड से मिल गया और वहां उसने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। जब 1800 ई० में शेलूकर को निकालने के लिए बड़ोदा की सेना अहमदाबाद के विरुद्ध रवाना हुई तो भावा

मिया दो सौ घुड़सवार लेकर उसके साथ था; और 1802 ई० में जब गायकवाड ने मल्हारराव के विरुद्ध ब्रिटिश सहायता मागी और उनकी सेना को खम्भात मे उतर कर कडी की ओर बढने में कठिनाई महसूस हुई तो गायकवाड़ ने भावा मिया को लिखा। वह दो सौ घुडसवार लेकर ब्रिटिश सेना के साथ गया और अंग्रेजों के साथ उसके बहुत अच्छे सम्बन्ध बन गए।

प्रसिद्धि प्राप्त करने बाद भावा मिया 1812 ई० मे मर गया। उसके दो पुत्र बापू मिया और मलिक मियां थे जिनमे से बड़ा गद्दी का मालिक हुआ। उस समय उसके ताल्लुके मे तीस गाव थे।

यह वृत्तांत कसबातियो के उस प्रमुख घराने का है जिसके विषय मे कर्नल वॉकर ने उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि ये लोग वीर और उपद्रवी थे। इनमे से बहुतों के पास बड़ी संख्या मे घुडसवार रहते थे जिनको आवश्यकता पडने पर ये पडोसी शक्तियो को किराये पर दे देते थे। धोलका प्रान्त का प्राय: सभी खुशहाल हिस्सा इनके अधिकार मे था; ये लगान के लिए रकम अगाऊ देकर भूमि को रहन लिखवा लेते थे इसलिए यहा पर इन लोगो का बहुत प्रभाव था।

पाटडी[5] मे सस्थापित हो जाने के बाद झाला राजपूतों की उन्नति के विषय मे लिखने को हमें बहुत ही कम सामग्री प्राप्त हुई है। हरपाल का ज्येष्ठ पुत्र शेडो अथवा सोढोजी हुआ। उसकी पन्द्रहवी पीढ़ी में चन्द्रसिहजी[6] के समय में झालों की राजधानी पाटड़ी से कच्छ के छोटे रण के किनारे हलवद नामक नगर मे स्थानान्तरित हो गई और उसी के राज्यकाल मे अथवा उसके तुरन्त बाद ही हरपाल की रियासत दो भागों मे बंट गई जो अब तक अपनी-अपनी स्वतंत्रता बनाए हुए है। चन्द्रसिहजी के बड़े पुत्र पृथ्वीराज ने अपना पैतृक राज्य तो खो दिया परन्तु वांकानेर और वढवाण की अलग गद्दियां कायम कर ली; दूसरा पुत्र अमरसिह हलवद मे अपने पिता की गद्दी पर बैठा जिसकी सन्तान मे ध्रांगध्रा के वर्तमान महाराजा हैं; तीसरे पुत्र अभयराज जी ने लखतर मे अपनी गद्दी स्थापित की। सायला का घराना हलवद वाले अमरसिह की शाखा में है और चूडा मे वढवाण वालो के छुटभाई की शाखा चलती है। जिस महाराणा चन्द्रसिह जी का हवाला यहा पर दिया गया है उसका नाम मीरात-ए-अहमदी मे मिलता है

5. देखिए रासमाला (हि. अ.) भा. 3, पृ. 22-23।
6. काठियावाड गजेटियर के पृ. 426 में लिखा है कि चन्द्रसिह जी ने 1584 ई० से 1628 ई० तक राज्य किया।
वे 1618 ई० मे बादशाह जहांगीर से भी मिले थे। (तुजुके जहांगीरी का रॉजर्स और बेवरिज,कृत अंग्रेजी अनु. भा. 1; पृ. 428।

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470 003

और लिखा है कि वह 1590 ई० मे वीरमगाव मे गुजरात के शाही वजीर खान अजीज कोका से मिला था। हरपाल के दूसरे पुत्र शेखडोजी ने वीरमगांव जिले मे सचाणा (अथवा ससाना) में चौरासी गावो का गरास कायम कर लिया था जो बाद मे ब्रिटिश राज्य मे मिला दिए गये थे, परन्तु उसके वंशज वहां पर अब भी 'वाटा' वसूल करते है। हरपाल के तीसरे पुत्र मागोजी ने लीमडी की गद्दी कायम की जो पहले शीआनी[7] मे और बाद मे जाम्बू मे स्थापित की गई थी।

चन्द्रसिहजी के पुत्र पृथ्वीराज की बात भाट लोगो ने इस प्रकार कही है—

हलवद के राजा राजश्री चन्द्रसिह जी के तीन पुत्र थे जिनमे पृथ्वीराज सब से बड़ा था। शीआनी के राजपूत उदाजी ने अहमदावाद के सूबेदार से झगडा होने के कारण गाव छोड दिया और हलवद की तरफ चला गया। पृथ्वीराज घुड़सवारी के लिए निकला था। वह अपने घोडे को पानी पिलाने के लिए एक तालाब पर ले गया और सयोग से उसी समय ऊदाजी भी इसी अभिप्राय से वहां आ गया। तालाब पर कुछ लोगो ने ऊदाजी को पृथ्वीराज के पास न जाने की चेतावनी दी क्योकि उसकी आदत अपने पास आए हुए घोड़ो के चाबुक मार देने की थी। ऊदाजी ने इस बात की परवाह नही की और कुअर के पास चला गया। जब कुअर उसके घोड़े के चाबुक मारने को तैयार हुआ तो ऊदाजी ने तुरन्त अपना भाला सम्हाला और कहा 'अगर तुम मेरे घोड़े के चाबुक मारोगे तो मैं भाला चलाऊंगा।' उस समय पृथ्वीराज निशस्त्र था इसलिए वह गाव लौट गया और वहा पर ऊदाजी के डेरे को लूटने की तैयारियां करने लगा। जब चन्द्रसिह जी ने यह बात सुनी तो तुरन्त ही उन्होने हलवद की सीमा मे शरण लेने वालो को लूटने के लिए मना करवा दिया। पृथ्वीराज ने इन बातों पर कोई ध्यान नही दिया और जब तैयारी पूरी हो गई तो डेरा लूटने को निकल पडा। इस पर चन्द्रसिह जी भी अपने घोडे पर सवार हो कर ऊदाजी के डेरे मे जा उतरे। जब कुंअर को उसके पिता की इस कार्यवाही का पता चला तो उसने आक्रमण का विचार तो छोड दिया, परन्तु नाराज होकर वढवाण की तरफ चला गया और वहा से आसपास के इलाकों में लूटमार करने लगा।

कुछ समय बाद उसके पास दो हजार साथी हो गये। एक बार जब उसको खबर मिली कि ऊंटों पर लदा हुआ खजाना जूनागढ से अहमदावाद जा रहा है तो वह तैयार हो कर मार्ग में छुपकर बैठ गया और खजाने को लूट ले गया। जब खजाने के रक्षको ने जा कर शिकायत की तो मुसलमानी सरकार ने पृथ्वीराज का सर काट लाने वाले के लिए इनाम का ऐलान किया और उसकी

---

7. शीआनी लीमडी का कस्बा और उपजिला है।

तलाश मे एक जमादार को दो हजार घुडसवार देकर रवाना कर दिया। जब इस अधिकारी को पृथ्वीराज की शक्ति का पता चला तो उसने चालाकी से काम लेने का फैसला किया। उसने एक दूत को वदवाण भेज कर कहलाया कि उसे तो लगान वसूल करने को तैनात किया गया है अतः यदि पृथ्वीराज उसका साथ देगा तो बडी कृपा होगी, जमादार ने कुरान की कसम खाई कि जब तक पृथ्वीराज उसको धोखा न देगा तो वह भी कोई धोखादेही का काम नही करेगा। इस पर पृथ्वीराज उसके साथ हो गया और उन्होने शीआनी पर आक्रमण करने की योजना बनाई। इस हमले मे वे सफल भी हुए और ऊदाजी मारा गया। तब उसकी स्त्री के 'सत' चढा और उसने सेवकों को पृथ्वीराज से अपने पति का सर मागकर लाने को भेजा। पृथ्वीराज ने ऊदाजी का सर काटकर एक पेड पर लटका दिया था। उसने सती को कहला दिया कि जब तक वह स्वय आकर उसे न ले जाय सर नही दिया जाएगा। इस पर ऊदाजी की स्त्री आई और वस्त्र कमर पर लपेटकर पेड पर चढ गई। उसी समय पृथ्वीराज ने ऊदाजी को गाली देकर कहा, 'बेटा ! तूने तो मेरे ऊपर भाला सम्हाला ही था, अब देख, मैंने भी तेरी स्त्री को पेड पर चढने को मजबूर कर दिया है।' जब सती ने ये शब्द सुने तो क्रोधित होकर उसने पृथ्वीराज को शाप दिया, 'ठीक है, तूने मुझे वृक्ष पर चढने को विवश कर दिया है, परन्तु तेरे शोक मे तो कोई भी स्त्री स्नान नही कर पाएगी।'[8] सती ने और दूसरे लोगो ने भी पृथ्वीराज को उसके कर्मों के लिए बुरा-भला कहा और उसको भी इसके लिए पछतावा भोगने मे अधिक समय नही लगा। अस्तु, वह जमादार के साथ खिराज वसूल करता रहा। एक बार पृथ्वीराज के आदमी सेना के अग्रभाग मे होने के कारण किसी विश्रामस्थल पर पहले जा पहुचे। वहा पर एक कुआ था परन्तु उसमे पानी बहुत कम था इसलिए उन्होंने उस पर तम्बू तान दिया और कह दिया कि वहा कोई कुआ नहीं था।

---

8 उसका तात्पर्य यह था कि जब पृथ्वीराज की मृत्यु होगी तो किसी को पता भी न चलेगा कि वह कब और कहा मर गया।

मृतक को जब श्मशान मे ले जाते हैं तो घर पर उसकी स्त्री और अन्य कुटुम्ब की स्त्रिया स्नान करती है। इसको 'पाणीवाडा' कहते है। यहां सती के शाप का यही तात्पर्य ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज का 'पाणीवाडा' ही नही होगा।

[वास्तव मे, उसके भाइयो के बहकावे में आकर अहमदाबाद के सूबेदार ने पृथ्वीराज को कैद कर लिया था और उस नगर मे बन्दी के रूप मे उसकी मृत्यु हुई थी। ध्रांग्ध्रा राज्य का विस्तृत विवरण काठियावाड गजेटियर मे देखना चाहिए। वंशावली इस प्रकरण के अन्त मे दी गई है।]

इस प्रकार उसके सिपाहियों को तो वही पानी मिल गया और जमादार के आदमियो को छः मील से पानी लाना पडता था। जब जमादार को यह वात वताई गई तो उसने कहा 'पृथ्वीराज ने पहले धोखा दे दिया; अब मेरी कसम टूट गई।' इसके वाद वह छलकपट करके पृथ्वीराज को पकड ले गया और आज तक इस देश में किसी को मालूम नही है कि उसका क्या हुआ।

इस प्रकार अपने पिता की मृत्यु के समय पृथ्वीराज अनुपस्थित रहा और उसके भाई अमरसिह ने हलवद पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज के दो पुत्र थे; एक सुलतान जी जिसके वशज वांकानेर के वर्तमान राजा वखतसिह जी हैं; दूसरा राजाजी था जो वढवाण की गद्दी का प्रथम पुरुष हुआ। राजाजी का विवाह सोम कुअर बाई से हुआ था जो राव नारायणदास के पुत्र और वीरमदेव के भाई राठौड श्री ईसवदासजी की पुत्री थी—सम्भवत. यह वही महिला थी जिसका उल्लेख ईडर के राजकुमार के चरित्र मे हुआ है। यह 'राठौडानी' सन् 1643 ई. मे अपने प्रियपति के साथ ज्वालाओ मे बैठ कर इस ससार से विदा हुई, यह वात हमे उसके दाहस्थान पर निर्मित मदिर की मूर्ति और शिलालेख से ज्ञात होती है। इस मन्दिर को बड़े आदरभाव से 'सती राठौड़ माता' का मन्दिर कहा जाता है और यह स्थान अभागिनी राणक देवी के मन्दिर से अधिक दूर नही है। त्यौहार के दिन राजसी वस्त्रों और रत्नो से मूर्ति का शृगार किया जाता है। और उसके वशज वहां आकर प्रणाम करते है।

वढवाण मे जो सतियो के मन्दिर है उनमे एक 'हाडी माता' का मन्दिर भी है। इस महिला का नाम बाई श्री देव कुंअर था; वह हाडा सरदार अमरसिंह की पुत्री और महाराणा श्री अर्जुनसिह की पत्नी थी और उन्ही के साथ 1741 ई. मे सती हुई थी। यह मन्दिर अर्जुनसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी महाराणा श्री सबल सिंह ने बनवाया था, जो हाड़ीरानी के पेट से पैदा नही हुआ था अपितु उसकी माता परमार शाखा की थी और उसका नाम अच्छूवा था। हाडी माता के देवरे के बराबर ही महाराणा श्री चन्द्र सिंह जी की छतरी है, जो उनके पुत्र और उत्तराधिकारी महाराणा श्री पृथ्वीराज ने 1779 ई. मे बनवाई थी। उसकी माता का नाम बाई श्री कुशल कुंवर था और वह पीथापुर के वाघेला सरदार श्री जोराजी की पुत्री थी। इन थोड़े से स्मारकों से ही हमको झालावंश की सम्पदा के विषय मे कितने ही वर्षों का मात्र वृतान्त प्राप्त होता है।

अन्तिम उल्लिखित वढवाण अधिपति चन्द्रसिह जी का वृत्तान्त भाटों की ख्यातों मे इस प्रकार मिलता है :—वढवाण के समीप मेमका ग्राम का एक लोहाना बैलों पर दाल लाद कर धन्धुका के पास भाल प्रान्त मे रोजका नामक गाव में वेचने गया था। काठियावाड़ मे बैलों पर लादे हुए बोझ को 'झालड़ें' कहते है। रोजका के मेपजी नामक चूड.समा गरासिया ने अपनी एक पुत्री का विवाह झाला राजकुमार के साथ

अरब जमादार ने, जो उसका सेवक था, कहा, 'ठाकुर ! यदि आप को उचित प्रतीत हो तो मैं अपने पांच सौ मकरानियों के साथ उनकी तोपो पर हमला करूं और आप मुख्य फौज का सामना करें अथवा मैं केन्द्र पर आक्रमण करूं और आप तोपो का सामना करें।' चन्द्रसिंहजी ने प्रथम प्रस्ताव को ही सबसे अच्छा समझा और घोडे से उतर कर अपनी तलवार और ढाल सम्हाल ली। तब उसके सरदारों मे से एक ने आकर समझाया कि पैदल युद्ध करना ठीक नही है, परन्तु दरबार ने उत्तर दिया 'क्या अब भी जीवित रहने की कोई आशा बच रही है ?' सरदार ने उत्तर दिया, 'महाराज ! यह तो परमात्मा के हाथ की बात है, भाभरा कुलदेव और शक्तिदेवी आपकी रक्षा करें ! परन्तु, जब घोड़ा मौजूद है तो आपको पैदल युद्ध करने की क्या आवश्यकता है ?' इस प्रकार उसने राजा को पुन. घोड़े पर चढने को राजी कर लिया और दूसरे सवार भी अपने-अपने घोडो पर चढ कर शत्रु पर आक्रमण करने चल पड़े। उधर गोरिम्भो जमादार अपने पाच सौ पैदलो के साथ तोपों की तरफ आगे वढा। तोपो मे गोले भरे हुए थे और वे नदी के दूसरे किनारे पर थीं। गोलदाजों ने भरसक जल्दी की, परन्तु जमादार के आदमी पहले ही किनारे से उतर कर नदी के पेंटे मे पहुच गए थे इसलिये अब वे गोले उनके सर से ऊपर होकर दूसरी ओर जाने लगे। जमादार ने तुरन्त ही गोलदाजो पर आक्रमण कर दिया और वे तोपे छोड़कर भाग खडे हुए। इसी बीच मे चन्द्रसिंहजी ने हरभूमजी की सेना के मुख-भाग पर आक्रमण कर दिया और गोलदाजो के भागने के कारण पस्तहिम्मत होकर वह सेना भी भाग गई। हरभूमजी बचकर लीमडी भाग गया परन्तु चन्द्रसिंह जी ने उसका ठेठ तक पीछा किया और लगभग पचास सवारो को मार गिराया।[13]

जब लडाई समाप्त हो गई तो गायकवाड के सेनानायक भगवानभाई ने एक छडी बरदार[14] को भेज कर कहलाया कि तोपें तो उसके स्वामी की सम्पत्ति थी। चन्द्रसिंहजी ने कहा कि उसे तो इस बात का कोई पता ही नही था, सेनानायक आकर अपनी तोपें ले जाए अथवा वह स्वय भेज देगा। तब मरहठा घुडसवार आकर तोपें वापस ले गए और भगवानभाई वडोदा लौट गया। चन्द्रसिंहजी भी अपने घर वढवाण वापस चला गया।

चन्द्रसिंहजी और हरभूमजी की मृत्यु के बाद लीमड़ी के राजा हरभूमजी के पुत्र हरिसिंहजी ने चन्द्रसिंह जी के पुत्र पाथाभाई (पृथ्वीराज) से बदला लेने को आक्रमण किया। वह पाच सौ घोड़े और दो सौ पैंदल लेकर वढवाण पर आया।

---

13. भाटो ने एक ऐसी भी वार्ता लिख रखी है कि चन्द्रसिंह जी को हरभूम जी पिता अदेराजी (उदेराज जी) ने परास्त किया था। काठियावाड़ गजे.के पृष्ठ 553-54

14. चादी की छडी लेकर जाने वाला सन्देश वाहक।

किया था, परन्तु वह उस घराने से हमेशा झगड़ा ही रखता था। उसने मसखरी करते हुए लोहान से कहा, 'तेरे झाले का क्या मोल है ? 'लोहाना ने उत्तर दिया,' एक झाला के एक सौ भाल्या[9] लगते है।' यह सुनकर चूडासमा बहुत नाराज हुआ और उसने लोहाना को खूब पीटा तथा उसका बैल छीन कर गाव से बाहर निकाल दिया। लोहाना ने जाकर अपने स्वामी वढवाण के राजा चन्द्रसिंह जी से पुकार की। राजा ने बैल और उस पर लदे हुए बोझ की कीमत पूछ कर लोहाना को चुका दी और अपने मन मे किसी न किसी दिन रोजका के ठाकुर से बदला लेने का दृढ निश्चय किया।

चूडासमा का मोरशिया नामक ग्राम था। कुछ समय बाद चन्द्रसिंहजी दो हजार सवार लेकर उधर गए। उन्होंने गाव को लूटा और घरो की लकडियां गाडियों में भरवा कर अपने घर की ओर रवाना हो गये। मेपजी के पुत्र लाखाभाई और रामाभाई अपने बहनोई लीमडी के राजा हरभूमजी[10] के पास गए और वढवाण के साथ झगडे का किस्सा कह कर अपने भारी नुकसान का हाल सुनाया। हरभूमजी तुरन्त ही सात सौ घोडे और आठ सौ पैदल लेकर उनकी सहायतार्थ रवाना हो गया और अपने साथ गायकवाड के सेनानायक भगवानभाई को भी ले गया, जो उस समय बारह हजार घुडसवार लेकर उस इलाके मे आया हुआ था और लीमडी मे ठहरा हुआ था। मित्र सेनाए शाम को भादर नदी के किनारे पर ठहरीं और उन्होने अपनी बन्दूको से चन्द्रसिंह जी का रास्ता रोकने का इरादा किया। इतने ही मे वढवाण का राजा भी वहां आ पहुचा और उसने उनके पास ही अपना पडाव डाला। उसने सोचा कि अब लूट के सामान को घर ले जाना असम्भव है और यदि एक भी गाड़ी पीछे रह गई तो उसकी आबरू चली जायगी इसलिए उसने सब गाडियो के आग लगा दी। प्रात.काल तीन बजे उठकर चन्द्रसिंह जी ने कसूभे का 'लाल प्याला[11] पिया। उसे निश्चय हो गया था कि होने वाली लड़ाई मे वह अवश्य मारा जायगा इसलिए उसने गगाजल पिया, पवित्र तुलसीदल मु ह मे रखा और कुछ मू गे के आभूषण धारण किए।[12] जब वह इस प्रकार तैयार हो गया तो गोरिम्भो नामक एक

9. झाल्या के दो अर्थ है; एक, मिट्टी का बर्तन और दूसरा, झाला इलाके का निवासी।

10. लीमडी के हरभूम जी के वर्णन के लिए देखिए--काठियावाड गजेटियर, पृष्ठ 534.

11. घोटी हुई अफीम को 'कसूभा' कहते है, जिसका त्योहार के अवसरो पर प्रत्येक राजपूत सरदार पान करता है और अपने हाथ से साथियो में भी वितरण करता है।

12. ये सब क्रियाएं अन्तिम समय मे सम्पन्न की जाती है।

पता . सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470 03

अरव जमादार ने, जो उसका सेवक था, कहा, 'ठाकुर ! यदि आप को उचित प्रतीत हो तो मैं अपने पांच सौ मकरानियो के साथ उनकी तोपों पर हमला करूं और आप मुख्य फौज का सामना करें अथवा मैं केन्द्र पर आक्रमण करूं और आप तोपों का सामना करें।' चन्द्रसिहजी ने प्रथम प्रस्ताव को ही सबसे अच्छा समझा और घोड़े से उतर कर अपनी तलवार और ढाल सम्हाल ली। तब उसके सरदारों मे से एक ने आकर समझाया कि पैदल युद्ध करना ठीक नही है, परन्तु दरबार ने उत्तर दिया 'क्या अब भी जीवित रहने की कोई आशा बच रही है ?' सरदार ने उत्तर दिया, 'महाराज ! यह तो परमात्मा के हाथ की बात है, भाभरा कुलदेव और शक्तिदेवी आपकी रक्षा करे ! परन्तु, जब घोडा मौजूद है तो आपको पैदल युद्ध करने की क्या आवश्यकता है ?' इस प्रकार उसने राजा को पुनः घोडे पर चढने को राजी कर लिया और दूसरे सवार भी अपने-अपने घोड़ो पर चढ कर शत्रु पर आक्रमण करने चल पड़े। उधर गोरिम्भो जमादार अपने पाच सौ पैंदलों के साथ तोपो की तरफ आगे बढा। तोपो मे गोले भरे हुए थे और वे नदी के दूसरे किनारे पर थी। गोलदाजो ने भरसक जल्दी की, परन्तु जमादार के आदमी पहले ही किनारे से उतर कर नदी के पेटे मे पहुंच गए थे इसलिये अब वे गोले उनके सर से ऊपर होकर दूसरी ओर जाने लगे। जमादार ने तुरन्त ही गोलदाजो पर आक्रमण कर दिया और वे तोपें छोडकर भाग खडे हुए। इसी बीच में चन्द्रसिहजी ने हरभूमजी की सेना के मुख-भाग पर आक्रमण कर दिया और गोलदाजो के भागने के कारण पस्तहिम्मत होकर वह सेना भी भाग गई। हरभूमजी बचकर लीमडी भाग गया परन्तु चन्द्रसिह जी ने उसका ठेठ तक पीछा किया और लगभग पचास सवारो को मार गिराया।[13]

जब लड़ाई समाप्त हो गई तो गायकवाड़ के सेनानायक भगवानभाई ने एक छडी बरदार[14] को भेज कर कहलाया कि तोपें तो उसके स्वामी की सम्पत्ति थी। चन्द्रसिहजी ने कहा कि उसे तो इस बात का कोई पता ही नही था, सेनानायक आकर अपनी तोपें ले जाए अथवा वह स्वय भेज देगा। तब मरहठा घुड़सवार आकर तोपें वापस ले गए और भगवानभाई वड़ोदा लौट गया। चन्द्रसिहजी भी अपने घर वढवाण वापस चला गया।

चन्द्रसिहजी और हरभूमजी की मृत्यु के बाद लीमड़ी के राजा हरभूमजी के पुत्र हरिसिहजी ने चन्द्रसिह जी के पुत्र पाथाभाई (पृथ्वीराज) से बदला लेने को आक्रमण किया। वह पांच सौ घोड़े और दो सौ पैदल लेकर वढवाण पर आया।

---

13. भाटों ने एक ऐसी भी वार्ता लिख रखी है कि चन्द्रसिह जी को हरभूम जो पिता अदेराजी (उदेराज जी) ने परास्त किया था। काठियावाड़ गजे.के पृष्ठ 553-54

14. चादी की छडी लेकर जाने वाला सन्देश वाहक।

घुड़सवार-सेना को तीन भागों मे विभक्त किया गया; एक टुकडी तो वढवाण से छ: मील दूर खारी नदी पर और वाकी दो केराल् (केराला) और पालीयावल्ली के तालाबों पर जमा की गई। ऐसा हुआ कि लीमडी के कोई पचीस सवार वढवाण के दरवाजे तक बढ गए और उन्होने एक किसान को मार डाला, और आगे भी कुछ नुकसान किया इतने ही मे गश्त पर निकले हुए पाथाभाई के पन्द्रह सवारों ने उन पर अचानक आक्रमण कर दिया। लीमडी के आदमी भाग गए और पाथाभाई के सवारों ने नदी के किनारे तक उनका पीछा किया जहा उनकी आगे वाली सेना पडी हुई थी। वढवाण के सिपाहियो ने छावनी पर गोलियां चलाई और पाच आदमियों को मार दिया, बाकी लोग भी भाग गए और उन्होने केराला तक उनका पीछा किया। राजा पाथाभाई को जब इस घटना की खबर मिली तो वह दो सौ पैदल और तीन सौ सवार लेकर तुरन्त रवाना हो गया और उसने केराला मे डेरा डाले हुए शत्रुओ पर आक्रमण कर दिया, जो हार कर भाग गये। इस झगड़े मे परवड़ी का रामाभाई और हरिसिंहजी का मामा लाखाभाई काम आए। उनकी छतरिया अब भी उस स्थान पर मौजूद है।

खारी नदी पर एक और लड़ाई हुई जिसमें स्वयं हरिसिंह जी मौजूद था। इस मुकाम पर पाथाभाई के मामा पीथापुर के बाघेला शेर भाई को उसका घोड़ा हरिसिंहजी की फौज के बीच मे लेकर निकल गया। हरिसिंह जी ने उसका पीछा किया और मार डाला। इसके बाद दोनो सेनाए अपने-अपने घरो को वापस लौट गई।[15]

कुछ वर्षों बाद सवत् 1863 (1807 ई) मे झालो मे पुन: परस्पर झगड़ा हो गया। वढवाण की सीमा पर एक खोरा नाम का गाव है जिसमें एक पुराना गढ

15. नीचे दिए हुए दोनो दस्तावेजों से दोनो पक्षों मे हुए समझौते पर प्रकाश पडता है। पहला तो 'रणवटी' दस्तावेज है जो लडाई मे मारे गए मनुष्यों के वारिसों की क्षति पूर्ति के लिए लिखा गया है; दूसरा 'बाहरवाटियों' (दस्युओ) को वापस उनके घर बैठाने के समय का है।

(1)

महाराणा श्री हरभूम जी योग्य लिपायत झाला गोपालजी, झाला वीसोजी झाला भावजी, झाला भाईजी, झाला अज्जा भाई, झाला मूलोजी, झाला रामसिहजी, झाला रतनजी, झाला सग्रामजी, झाला रतनजी लाखाजी तथा समस्त भायात को राम-राम बचज्यो। अपरंच बारेजडा गाव मे भाइयों मे झगडा खड़ा हुआ और झाला मालजी तथा झाला हमीर जी ने झाला रामसिहजी का माथा काट लिया। इसलिए (लीमडी के) चौरासी गावो से झाला मालजी तथा झाला

है जो सिद्धराज का बनवाया हुआ बताया जाता है। वहा से छः मील की दूरी पर ध्रागध्रा के राजा का गूजरवेदी नामक गाव है। सीमा के इन दोनो नाकों पर वढवाण और हलवद के राजाओं की चौकिया थी। एक बार बकरईद के दिन गूजर

हमीरजी को देश निकाला दिया गया है और झाला मालजी तथा झाला हमीर जी के भाग का जो गरास (वशपरंपरागत भूमि) बारेजडा और जालिया गांवों मे है वह झाला राम सिहजी के सर के बदले में झाला कुशियाजी को चन्द्र और सूर्य तपें तब तक के लिए 'आघाट' (कदापि अपुनर्ग्राह्य रूप में) दिया जाता है। कुशियाजी को इन दोनो गावो की उपज मिलेगी और वे ही इस गरास का उपभोग करेंगे। इसके अतिरिक्त झाला मालजी तथा हमीरजी के किसी भी वंशज को चौरासी गावों मे नहीं बसने दिया जावेगा। ऐसे आदमी को जो भी कोई रखेगा वह दरबार (लीमडी के महाराणा) का गुनहगार होगा और दरबार उसे दण्ड देंगे तो कोई शिकायत नहीं होगी। हम सब करार के अनुसार चलेंगे और इसके लिए नीचे लिखे लोगों की जमानत है; वोडाणा का रावा वासग, रावा भग्गा, रावा नारायण, रावा घना तथा गढवी अणदा। हम ऊपर लिखे अनुसार आचरण करेंगे। सवत् 1833 (1777 ई.) मागशिर सुद 6 सोमवार।

दस्तखत	तत्र साख (साक्षी)
गोपालजी आदि	श्री जगदीश (अर्थात् सूर्य)
ब कलम झाला संग्रामजी	झाला मालजी
	झाला मेघा भाई
	झाला चांदा भाई
	राठोड़ कादा
	गोलेतर राजाजी
	देसाई लल्लू भाई

लिखत भवानीदास, धणियों (दोनो पक्षो) के हजूर (उपस्थिति) मे लिखा है।

(2)

नीचे लिखी प्रतिज्ञा के पालन मे श्री भीमनाथ जी साक्षी हैं। हम इसका पालन करेंगे।

महाराणा श्री हरिसिंहजी योग्य लिखायतं झाला कुशिया श्री रामसिंह तथा केशाभाई निवासी बारेजडा का जुहार बचावसी। शा. नानजी डूंगरशी का हम पर कर्जा था उसके चुकारे की निशा मे हमने गाव बारेजडा उनके रहन कर दिया था। बाद में हमारे और नानजी के झगड़ा हो गया और हम गाव छोड कर उकराला चले गए, जहां से हमने दरबार को बहुत कष्ट पहुंचाया। इन कृत्यों के पश्चाताप मे हम बारेजड़ा गांव दरबार को सत्तर वर्ष

वेदी के मुसलमान सिपाही अपने गावों मे बकरा तलाश करने गए और जब वहां कोई बकरा नही मिला तो खोरा की तरफ निकल गए। वहां एक एवड़वाले से तीन शिलिंग (डेढ़ रुपये) मे बकरा ठहरा लिया परन्तु बिना कीमत चुकाए ही उस पशु को लेकर चलते बने। एवड़वाला तुरन्त ही गांव मे लीमड़ी की चौकी पर गया और उसने जो कुछ वाकया हुआ उसको बयान कर दिया। इस पर लीमड़ी थाने के आदमी निकले और गूजरवेदी जाकर बकरा मागने लगे। ध्रांग्ध्रा के सिपाहियों ने अब पशु की कीमत देने का इकरार किया परन्तु लीमड़ी वालो ने पैसा लेने से इनकार कर दिया और बकरा लेकर वापस घर चले गए। जब ध्रांग्ध्रा के आदमियों ने हलवद

के लिए नजर करते हैं; इस अवधि पर्यन्त दरवार ही इस गाव का उपभोग करें। इसके बाद जैसा भी दो आदमी कहेंगे वैसा फैसला नानजी की देनदारी का कर लेंगे। इन शर्तों के बाद ही दरवार ने हमको बुलाकर गाव मे 'जिवाई भूमि' (निर्वाह योग्य) प्रदान की है जिसका उपभोग करते हुए हम जीवनयापन करेंगे और किसी प्रकार की गड़बड़ी भविष्य में नही करेंगे। इस करार का पालन करने हेतु हम निम्नलिखित व्यक्तियो की जमानत पेश करते हैं—धंधुका कसबाती, सैयद बुलाकी आजम भाई, शेख साहिब तथा परवडी के चूडासमा रामसिंह जी, ये सब अपनी-अपनी माल मिल्कियत सहित जवाबदार हैं। सवत् 1853 (1797 ई) भाद्रपद सुद 2, शनिवार।

इसके सिवाय यदि ऊपर लिखे जमानतदार कभी अस्वीकार करे तो भगवान दास मेहता की जमानत है; तथा गढवी दला जीवण तापड़िया शाखावाला, गढवी जीवण साहू खम्भलाव का, गढवी अज्जा ऊदा देथा शाखा का पचम गांव का और रावल देव करशणवाला पानशीणा गाव का भी अपनी-अपनी माल मिल्कियत सहित जवाबदार है।

गढवी दला, ऊपर लिखा सही	साख (साक्षी)
	श्री जगदीश (सूर्य)
	राठोड़ कांदा
	झाला बाजीभाई, गेडी ग्रामवासी
	बाघेला हाथी भाई भवानजी लोलियाना का
गढवी अज्जा देथा, ऊपर लिखा सही	शा पीताम्बर भवानी
गढवी जीवण साहू, ऊपर लिखा सही	सोलकी काका जेतारा
	पटेल मूलो आशा
	गोहिल हजूजी जेठाजी दो कुरला का
रावल देव करण वेला ऊपर लिखा सही	

लिखितं मयाराम, धणियों के हजूर में लिखा [देखिए—टॉड कृत राजस्थान का इतिहास, सन् 1920; भा. 1; पृष्ठ 235, 324

जाकर अपने राजा को घटना का वर्णन किया तो वह नाराज हुआ और बोला 'तुमने त्यौहार के दिन जो पशु खरीद लिया था उसे वापस क्यों ले जाने दिया ?' इसके बाद उसने वढवाण पर चढ़ाई करने का पक्का इरादा कर लिया और कानेर, वांकानेर, सायला और चूडा के ठाकुरो तथा लीमड़ी के हरिसिंह जी को सहायता के लिए बुला भेजा । इनमे से वांकानेर वाला तो नहीं आया और बाकी सब अपना-अपना लश्कर लेकर आ गए । हरिसिंह जी ने वढवाण वालों को कहलाया 'तुम आत्म-समर्पण कर दो । तुम हलवद और लीमड़ी को अलग-अलग समझते हो ? यदि तुम हनुमान से मुकाबला करोगे तो अवश्य ही हार खाओगे । समझदार मनुष्य यम को अपने द्वार पर कभी नही बुलाता । जो कुछ होना था सो हो गया, परन्तु अब भी यदि तुम हठ करोगे तो तुम्हारे दुर्ग का नाश हो जाएगा और फिरंगियों की सेना देश भर मे फैल जाएगी ।[16] परन्तु, वढवाण के पृथ्वीराज ने तो सामना करने का ही निश्चय किया और कभी ध्रांगध्रा और कभी लीमडी से लूटे हुए धन से सेना इकट्ठी कर ली । जब मित्र सेनाए एकत्रित हो गईं तो एक बार तो ध्रांगध्रा के राजा ने सम्पूर्ण खर्चा उठाया और बाद मे जब उसने बन्द कर दिया तो सब ठाकुर अपने-अपने आदमियों का खर्च उठाने लगे । मैदान मे कुछ लडाइया होने के बाद पृथ्वीराज वढवाण के किले में जाने को विवश हुआ तब मित्र-सेनाओ ने घेरा डाल दिया और अपनी तोपों से एक जगह रास्ता निकाल लिया । इस अवसर पर भाटों और चारणों ने दोनों ओर के योद्धाओं में बीच बचाव करके शाति करा दी ।

यहां तक तो भाटों के आधार पर वृत्तान्त लिखा गया है; अब, इसके बाद ही कर्नल वॉकर झालावाड़ मे पहुंचा था, उसने यहां का हाल इस प्रकार लिखा है—

---

16 कवि जमाल ने 'बकरी की लड़ाई का गीत' रचा है, जो 'फॉर्ब्स गुजराती सभा' के हस्तलिखित-ग्रन्थ-संग्रह मे सं. 35–1–च पर सुरक्षित है :—

हरि हदे फरमाण लख्यो, वली भेज्यो वढवाण ।
हलवद ने गढ लिंबडी, जूदां पथा म जाण ।।
जूदां पथा म जाण, नवी नहि धारिये ।
हडमत माथे बाथ, भरता हारिये ।।
कर माह बाधव प्रीत, अजारे कारणे ।
बुद्धि कोय जमराज, तेडावे बारणे ?
वेधियां ज्या न दीशे, दुजो जाशे दरंग ।
फेलाशे फरंगी घटा, चोकाशे चतरंग ।।
चोकाशे चतरंग, सवइया चालशे ।
होक हवाईयां कंईक, बाण हालशे ।।
गोलें मारी कोट, पियाले घालशां ।
हलहलो ही लोक, ने भाला भ्रालशां ।।

'लीमडी, वढवाण और ध्रागध्रा के राजाओ मे जो पिछले दिनों लड़ाई हुई वह भी (देश की दुर्दशा का) एक कारण है। इस लड़ाई का उपहासयोग्य प्रसग इस प्रकार बन गया कि ध्रागध्रा के थाने के कुछ सवारो ने एक गड़रिये से मूल्य तय करके बकरा लिया था, परन्तु उसने जाकर फरियाद कर दी। इस पर वढवाण के कुछ आदमी आकर उन सवारो से उस बकरे का मास छीन ले गए जो वे पका रहे थे। इससे ध्रागध्रा वालो मे वैरभाव उत्पन्न हो गया, एक लडाई से दूसरी की आग सुलग गई, लीमडी का ठाकुर भी इस झगडे मे शामिल हुआ और यह विरोध यहा तक बढ़ा कि वढवाण के साठ से भी अधिक गावो मे से चार को छोडकर जब तक सब बरबाद न हो गये और वढवाण के किले की दीवारें न टूट गई तब तक शाति नही हुई। दूसरे तालुको मे भी इसी तरह का नुकसान हुआ।

भाट की ख्यात के अनुसार इस झगडे मे हलवद के राजा का एक लाख रुपया, लीमडी वाले के पचासी हजार और चूडा व सायला वालो के दस-दस हजार रुपये खर्च हुए।

जब कर्नल वॉकर काठियावाड़ मे मरहठो की मुल्कगीरी का बन्दोबस्त कर रहा था तब समस्त झालावाड़ भी इसी मे शामिल था और कितने ही कारणो से यह देश अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त हो गया था। आपसी कलह का मूल कारण किसी भी राजा अथवा ठाकुर की जायदाद का उसके वशजों मे बटने का रिवाज था; और, यह रिवाज गुजरात के इसी भाग तक सीमित नही था। बडी शाखा वाले छोटी शाखा वालों के विरुद्ध इसलिए जोरजबर्दस्ती या छल कपट करके ऐसे प्रयत्न करते रहते थे कि उनकी जायदाद अधिक छिन्न-भिन्न न हो। इससे राजपूत कुटुम्बो मे निरन्तर ही आपसी वैमनस्य बना रहता था। देश पर बाहरी सकट भी कम दुखःदायक नही थे, काठी, जट्ट, मियाणा[17] और अन्य लुटेरी जातिया इस प्रान्त के थोड़े से गावो के दुःखी लोगों मे सदैव त्रास उत्पन्न करती रहती थी। लकडी और वनस्पति के अभाव मे खेतीबाडी की दुर्दशा साफ दिखाई देती थी। झालावाड के बहुत से हिस्सो मे तो किसान शस्त्र लेकर खेतो मे जाते थे और प्रत्येक

17 मियाणो का निकास सिन्धियो से है। ये बहुत लड़ाकू होते है और मालिया मे बहुत बडी सख्या मे बसे हुए हैं। निम्नलिखित वृत्तान्त से उनके सामान्य रहन-सहन व चालचलन का अनुमान किया जा सकता है—

एक दिन गायकवाड सेना का एक अरब सिपाही नमाज पढ रहा था, उसी समय एक मियाणा उधर से निकला और पूछा 'तुम को ऐसा किसका डर लग रहा है कि सर को इतना भुकाए हुए हो?' अरब ने कुछ नाराज सा होकर जवाब दिया 'मैं अल्लाह के सिवा किसी से भी नही डरता।' मियाणा ने कहा, 'तो आओ, मेरे साथ मालिया चलो न, वहा तो हमे अल्लाह का भी डर नही है।' मियाणा जाति के विशेष विवरण के लिए देखिए, बॉम्बे गजेटियर वा० 9, भाग 1, पृष्ठ 519

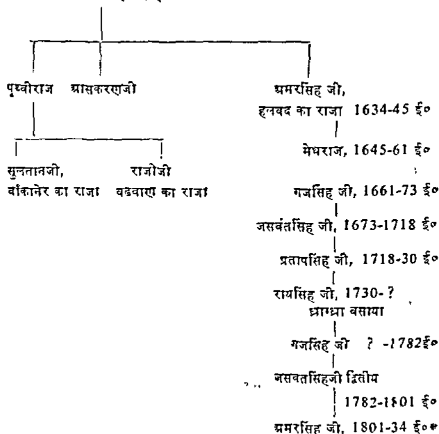
गाव मे किसी ऊचे स्थान अथवा ऊचे पेड पर मचान बाध कर चौकसी की जगह बना ली जाती थी जहा से भयभीत करने वाले लुटेरो के घोडो को देखते ही सूचना दी जाती थी। ढोर, नित्य बरतने योग्य बर्तन और हल ही किसानो की मात्र सम्पत्ति थी; वे तुरन्त ही इनको लेकर पास के किसी ऐसे गाँव मे चले जाते थे जहा थोड़ा बहुत बचाव हो सके; कदाचित् मैदान ही मे लुटेरे उन्हे आ पकड़ते तो वे उन्हें 'रण' के रास्ते मोड़ कर कच्छ अथवा चोरवागड के बाजार मे ले जाते जहा तुरन्त ही उनके दाम उठ जाते थे। पेशवा, गायकवाड और जूनागढ के नवाब द्वारा वार्षिक मुल्कगीरी की चढाइयों से यह देश, जिसको प्रकृति से पूर्ण फलद्रूपता प्राप्त हुई थी, और भी अधिक बरबादी और गैर आबादी की ओर आगे बढ़ रहा था। इसके ऊजड होने की स्थिति का स्पष्ट अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब मरहठा सूबेदार इधर से निकलते ता बलीते (इन्धन) की इतनी तंगी पडती कि कभी-कभी तो भोमिया ठाकुरो को अपना कोई गांव ही खाली कराकर लश्कर को ईंधन पहुचाना पड़ता था। विशेषत. इस समय तो विपत्तियो के और भी बढ जाने के मुख्य कारण बाबाजी द्वारा पिछली बकाया की वसूली, नडियाद से बचकर मल्हारराव का इस देश में आ जाना और झाला सरदारो के आपस के विनाशकारी झगड़े थे, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

झालावाड़ बहुत से स्वतत्र राज्यो मे विभक्त हो गया था जिनमे हलवद अथवा ध्रागध्रा, लीमडी, वढवाण, वांकानेर, चूडा, लख्तर और सायला मुख्य थे। इनकी स्थापना के विषय मे ऊपर लिखा जा चुका है। ध्रागध्रा के राजा को कुल-क्रमानुसार अब भी बड़ा माना जाता था और दरबारी प्रसगों मे उसको प्रथम सम्मान तथा हरपाल के वंशजो मे सबसे ऊचा आसन दिया जाता था। इस राजा के राज-काज मे बडी अव्यवस्था थी और इसके राज्य को एक अयोग्य मत्री लूट रहा था जो बाद मे फरार हो गया। झालाओ की दूसरी रियासतो की हालत भी इससे अच्छी नही थी और चूडा और लख्तर के ताल्लुकेदारो ने तो अस्थायी रूप से मरहठो की अधीनता ही स्वीकार कर ली थी। लख्तर के मत्री हीरजी खवास ने दरबार को पैसा उधार दिया था और रियासत पर सम्पूर्ण सत्ता प्राप्त करली थी। वह किला बनाने की तैयारी कर रहा था और इस तरह अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का मनसूबा बांध रहा था। झाला सरदार ने डर कर अपनी पुत्री गैनाबाई से सहायता मांगी जो स्वर्गीय महाराजा गोविन्दराव गायकवाड़ की विधवा थी। अब, बडौदा सरकार को बीच मे पड़ना पड़ा; उन्होने हीरजी खवास का कर्जा चुका दिया, परन्तु कार्यकर्त्ताओं के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे लख्तर रियासत का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले लें कि जिससे सरकार का ऋण बेबाक हो सके। जब यह कदम उठा लिया गया तो उन्होने दरबार के गुजारे के लिए उपज का एक भाग नियत कर दिया।

प्रकरण छः का परिशिष्ट

(ध्रांगध्रा के राजाओं का वंश वृक्ष)

चन्द्रसिंह जी, हलवद का राजा 1584–1628 ई०



●●

* गुजराती भावान्तरकर्त्ता ने परिशिष्ट में 1843 ई० से लिखा है, वह ठीक है; आगे के राजाओं का क्रम इस प्रकार है :—

रणमलसिंह जी (1843-1869)

मानसिंह जी (1869-1900)

अजीतसिंह जी (1900-1911)

घनश्यामसिंह जी (1911-)

प्रा . सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—4, [illegible]

प्रकरण सातवां

धोलेरा के चूडासमा-गोहिल

पहले कह चुके हैं कि सोरठ प्रायद्वीप में अंग्रेजों ने अपना प्रथम जमाव गिरनार के प्राचीन राजवंश में गणनीय अधिपतियों के आश्रय में कायम किया था। सोरठ के रावों के एक छुटभइया ने पैतृक सम्पत्ति के रूप में चार चौरासियां (अर्थात् प्रत्येक चौरासी गाव का परगना) प्राप्त की थी; इनमे से एक धन्धुका का तालुका उसके पुत्र रायसलजी को मिला था। रायसल जी के चतुर्थ पुत्र मेहरजी के वंश मे चूडासमा *गरासिया सैसलजी हुआ जिसके अधिकार मे, आनन्दराव गायकवाड़* के समय में, धोलेरा, राहतलाव बंदर, भांगड़, भीमतलाव, गूमा और सैंधोलाव ग्राम थे अथवा इन पर वह अपना हक बताया करता था। सब मिला कर इन गांवों का क्षेत्रफल एक लाख बीघा था। इनमें से तीन गांव बेचराग या ऊजड़ थे।

जब अहमदाबाद के सूबेदार और मरहठों में बँटवारा हुआ तो धन्धुका कन्ताजी माण्डे के हिस्से मे आया और वह इसको अपनी निराली जागीर समझने लगा। कन्ता जी से इसे दामाजी गायकवाड़ ने ले लिया और जब दामाजी को पेशवा के अधीन होना पडा तो यह पूना दरबार के अधिकार मे चला गया। मरहठा सरकार की अधीनता में देश की अव्यवस्था और शासको की दिन-ब-दिन बिगड़ती हुई आर्थिक अवस्था के कारण परगनों का ठेका कूमाविशदारों अथवा इजारदारों को इतनी भारी रकम पर दिया जाता था कि बिना अत्याचार किए उसका वसूल होना संभव नहीं था। इन लोगों को जो इलाका इजारे पर दिया जाता था उस पर केवल आस-पास के राज्यों वाले ही धावे नही मारते थे वरन् कोई भी लुटेरा जो सौ-पचास आदमी अपने झण्डे के नीचे इकट्ठे कर लेता था वही इनको लूटने के लिए सक्षम हो जाता था। इस प्रकार गांवो की बरबादी हो रही थी और इलाके का बहुत बड़ा हिस्सा ऊजड हो गया था। उस समय बहुत से छोटे-मोटे जागीरदार यह चाहते थे कि वे अपने आपको व अपनी जागीरों को किसी ऐसी सरकार के संरक्षण में सौंप दें जो पड़ोसी राज्यों की लूट-खसोट से उनकी भूमि को बचा सके और उन राज्यों को उस कर से अधिक रकम वसूल करने से रोक सके जो वे मुगल शासकों को उस समय दिया करते थे। इन गरासियो की नजर मे ब्रिटिश सरकार, जो अब सामने आ रही थी, एक ऐसी सत्ता थी जैसी कि वे चाहते थे इसलिए उन्होंने सहायता के लिए अपने-अपने आवेदन-पत्र भेजे।

मिस्टर डकन ने 11 जून, 1802 ई. के अपने पत्र मे खम्भात से गवर्नर जनरल को लिखा "यहा से बीस मील दक्षिण मे राहतलाव अथवा धोलेरा नामक बन्दरगाह है, उसके स्वामी मानाभाई गोरभाई और सायसलजी सत्ताजी तथा उनके भाईबन्धु हैं; ये लोग पिछले चार वर्षो से आग्रह कर रहे थे कि उनके गाव की उपज मे से उनके लिए आधा भाग छोड़ देने की शर्त पर उस बन्दर पर कब्जा कर लू। गुजरात द्वीपकल्प के साथ अपने व्यापारिक और अन्त मे राजकीय सम्बन्धो मे सुधार करने की दृष्टि से मैंने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली है। उन लोगो ने ऐसा इसलिए किया है कि पड़ोसी लुटेरो से उनकी रक्षा हो जाय और मुख्यत: भावनगर के राजा द्वारा भूमि हडप लेने की कार्यवाही से वे बच सकें। बात यह है कि धोलेरा की अपेक्षा भावनगर बन्दर छोटा और असुविधाजनक पड़ता है इसलिए भावनगर का राजा इसको दबा लेने और अपने बन्दर को मुख्य बनाने की इच्छा से यहा की आबादी को परेशान करता है और गरासियो के भायातो को अपना हिस्सा उसे सौंप देने के लिए मजबूर करने की युक्तिया करता रहता है। इन्ही लोगो मे से हालोजी नाम का एक छुटभाई है जिसने अपना भाग उसको लिख भी दिया है, परन्तु वह हिस्सा इतना छोटा (धोलेरा के सौ भागो मे से ग्यारह के बराबर भी नही) है कि हमारे साथ इन सब लोगो के हित मे जो सधि हो रही है उसमे बाधक बनने मे नगण्य है। इसके अतिरिक्त, सम्मिलित जायदाद के किसी भाग को एक ही भाई किसी अन्य को दे दे यह मान्य नही हो सकता और यह तुच्छ प्रयास हमारे साथ करार हो जाने के बाद की तारीख मे इसलिए किया गया है कि हमारे अधिकारो में बाधा पडे, परन्तु इसमे कोई दम नही है। इसमे कोई सन्देह नही है कि सब गरासियों ने मिलकर हमसे जो पहले मुआयदा कर लिया है उसी की प्रथम प्रतिक्रिया मे ही इस कदम को माना जा सकता है। इन गरासियो का इलाका धन्धुका परगने मे है और इनको पेशवा को 'खण्डणी' (कर) देनी पडती है, परन्तु ऐसा लगता है कि पेशवा इनके आन्तरिक प्रबन्धो मे कोई हस्तक्षेप नही करता है। यह बात भावनगर के राजा के ताजा प्रयत्नो और जिन शर्तों पर कुछ भूमि वास्तव मे उसके अधिकार में दे दी गई है उससे साफ प्रकट हो जाती है।"

सायसलें जी और मानाभाई ने जो रास्ता निकाला उसी का अनुसरण करते हुए तुरन्त ही धन्धुका और धोलका परगनो के ग्रामाधिपतियों एवं हकदारो ने सर मिगुएल डी सूजा (Sir Miguel de Souza) के द्वारा सिफारिश करा कर अपनी अर्जियां भेजना आरम्भ कर दिया। परन्तु, इस प्रकार जिन गांवो को ब्रिटिश सरकार के अधिकार मे देने के प्रस्ताव आए उनमें से बहुतों पर तो भावनगर के रावल लीमडी के ठाकुर अथवा अन्य राजाओं का बीस या इससे भी अधिक वर्षों से कब्जा चला आ रहा था इसलिए रेजीडेन्ट की राय में उन लोगो द्वारा जो दावे पुन: खड़े किए जा रहे थे वे बहुत पुराने पड़ चुके थे अत: उसने इन प्रस्तावों की स्वीकृति को सफलतापूर्वक अमान्य कर दिया। कर्नल वॉकर ने लिखा है—"माननीय कम्पनी

सरकार को जो अस्पष्ट, अविश्वस्त और विवादग्रस्त हक उदारतापूर्वक अर्पित किए जा रहे हैं उनका न कहीं अता-पता है, न किसी को उनकी स्थिति का ही स्मरण है; उनकी शर्तें भी ऐसी हैं कि जिन ऊजड़ ग्रामों को वर्तमान स्वामियों ने आबाद और कृषियोग्य बनाया है वे उनसे ले लिए जाएं और इस प्रकार केवल कम्पनी के साधनो द्वारा होने वाले लाभ का अर्धांश हकदार गरासियों को छोड दिया जाय तथा उन्ही के हित के लिए कम्पनी पुनर्निर्माण कराकर उन गावो को आबाद करावे। काठियावाड़ में हमारे दृष्टिकोण के अनुसार आगे बढ़ने के लिए मानवीय हितों पर मुख्य ध्यान देना होगा और सामान्यत: कम्पनी सरकार का लाभ, प्रतिष्ठा एव मान इसी बात मे है कि पारस्परिक द्वेषवश झगड़ने वाले प्रतिस्पर्द्धी राजाओं की स्थिति मे संकटापन्न लाभ उठाने की अपेक्षा उनमे मेलजोल पैदा किया जाय।"

अब हम पुन: गोहिलों के वृत्तान्त पर आते हैं जो सौराष्ट्र प्रायद्वीप के तट पर अंग्रेजों द्वारा नए अधिकृत स्थानों के समीपतर पड़ोसी थे।

गोहिलों का दसोघी भाट कहता है[1] कि जब बादशाह की मुद्रा साहू राजा की मुद्रा में बदल गई तो अरबों की टोलियां उस राजा के साथ रहने लगीं; उसका राज्य मक्का तक फैल गया और पूर्व में भद्रिका तक चला गया; उसके सूबेदार इतने शक्तिशाली थे कि दो-गुनी दर पर खंडणी वसूल करते थे।

---

1. गुजराती भाषान्तर में इस वृत्तान्त का एक रूपक दिया है :—

शक्का शाह का फरक्का हुआ शाह हुवा गज शक्का,
लगशा हलका लगे आरबांका लार।
लगे मक्का पूर्वका अठीने बद्रका लगे,
दूणा टका लेवे ऐसा पक्का सूवेदार। 1
ग्रेह फरी फरी आया कमाय मुलकगरी,
वणी सभा आवी करी हाजरी बखत।
गंध्रवा संगीत गीत केई भांत वाता गाता,
ता ता थेई थेई राजे पीरो तखत। 2
शिवाजी की घोड़ी बाबा कांक तोड़ी बोला शाहू,
दलीका मरोड़ी तोड़ी लीयाने संदेश।
हाथ जोडी देशपति कौण देश पेश हुवा,
नुम्रा कौण देश पेश देशका नरेश ।। 3
लडी आठ काठ लगे राजरे नीम बोलीया,
पाट कीया भाठराज नाटराज पेश।
नरा तरां ठाठ बधे तोय ठांठ आपे नावे,
दरंगा तोपां का ठाठ हे सोरठ देश।।[4]
पोर पटा सूवेदार बठा दटा कंठा पीर्सा,

वे दिग्विजय करके उसके दरबार में लौटे। सभी का नामोच्चार किया गया, राजसभा बुलाई गई, गंधर्व गान करने लगे और वार्ताओं का बखान होने लगा, राजा सिंहासन पर विराजमान हुआ। साहू ने शिवाजी को कहा, 'हमने दिल्ली को तोड़कर विशाल प्रदेश पर अधिकार कर लिया है। अब, कौन-कौन

तठा लखा पदा कीया तठा ही तागीर ।
अठा जो सोरठा जीति आव तो सोरठ आंपु,
जठा तठा नग्र ठठा तठा ही जागीर।5

चढाया मुगटा भटापट्टा चढे सेन
वंश वडा सोई बेवटा वसात ।
वस्ता रस्ता शहेर सोई जावे ऊपसता,
रसता बसता आया छाया गुजरात।6

जाड़ा शलेखाना लही दली का असली जादा,
खागां झली आया भले मुगली खंधार ।
मही वही रत चाली रुस्तम अली मार,
हले लार लार जुमले असी हजार।7

कोल पामी जमीदार शीश नामी एम कहे,
ठेई सामी न दे कोउ सलामी गाम ठाम ।
दाधी कोएा बाधे अठे हमारो गरीब दावो,
नमावो भावो ती पावो सतारा ईनाम।8

आया डेरा देता देता हेरा करे फरी आया,
शीशकुं नमाया भाया थे हो मेरा शाम ।
कोट बीया सेच लीया पेश बीया कीया केक,
कठे रोप धरी कीया कोस दो मकाम।9

पंडे कुवो बाला पाती मंडे जाची भावा पाश,
शीहोर का कोट छंडुं तो शंभुका सोगन ।
मंडुगा प्रभात झंडा डंडु शहर चारमेर;
मेरे तेरे चार पहोर रात का मगन।10

चीठी दीठी धीठी तांतो झोझट्ठोन त्रिठी चडी,
पंडा पीठी दास मारावजी ठीको पाप ।
बेर गयो पंडतड़ो तणे कंठा आगे कहे खडा,
बाट बड़ो लडो कोट चढ़ो मारा आप।11

नोबता निसान गडे चढ़े फोजा खडे नोर,
नेजा अडे आया अठे शीहोर नरंद ।

पता : सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—

से देश हमने जीत लिए हैं और कौन से देश बाकी बचे हैं ? शिवाजी ने कहा, 'आपका नमक खाकर मैंने बहुत से देशों को जीता है, भाटी राजा को भी अधीन कर लिया है, परन्तु सोरठ एक ऐसा देश है जहा बहुत से मनुष्य हैं, किले हैं और तोपें हैं। उस देश पर अभी तक अधिकार नहीं हुआ।' तब साहू ने कताजी और पीलाजी दोनों बराबर के सरदारों की ओर देखा और उनको एक लाख वार्षिक का पट्टा कर दिया। उसने कहा 'यदि तुम सोरठ विजय करोगे तो वह मैं तुमको दे दूंगा; जहा-जहा पर नगर हैं वहां-वहां तुम को जागीर दूंगा।' ऐसा कह कर उसने

भीणोऐ कोकबाण ठणाणे ऊगते भाण,
गणोऐ नाला उगोला घणोऐ गरद ।।2

दो बला धुम्राका गोट ताकी ओट दहूं दोट,
चलाये कटका कोट आमसामी चोट ।
लगे नांही चोट लडे लोढ़ जाता कोट लागा
लगे चोट लोटपोट ज्युं कबूत्र लोट ।।3

फडके कड़के केक बीया सीस धुड फके,
न धूगंडी रही महाभड केने दान ।
रदे न थडकी बैंठा भावसिंह रतनाणी,
मरेठा फडके बैंठा वडके मेदान ।।4

काय तुं हैरान मले कानमां दीवान क्यो
सामन आपको रीयो से नही सामान ।
काय तुं गुमान करे मोर कह्यो मान कंठा,
मान मायो नही मारूं लागो आसमान ।।5

गुप्टी हुं करे गीया कंठा तो ठाउद गीया,
कूच कीया डेरा पाड़े उपाड़े मकाम ।
गीया नांही घरे फरे जाता जाता मरे गीया,
राव घरे नके गीया प्रसा गीया राम ।।6

फरे साख आई शाऊ रावतां बोलाया फरे,
अरे सबे घर आया कबाया आलम ।
पीला कंठा नाठा फरे, अठे कठे फता पाया
मता पाया बता पाया न पाया मालम ।।7

फेर रावताण कावे नाव का नीयाव फावे,
जावे जावे सोई जावे कवू आवे जोय ।
धुगो हतो लावे जे तो छोरवां को छोरू चावे,
मायाकुल लेवा जावें, न आवे अबोय ।।8

उनको राजपद और सिरोपाव प्रदान किए; सेना तुरन्त रवाना हो गई; वह बस्तियों को उजाड़ती हुई आगे बढ़ती रही और गुजरात पहुंच कर अधिकार कर लिया। दिल्ली के अधिकारी तोपखाना लेकर आगे बढ़े और मुगल तलवारें निकल पड़ीं। युद्ध मे अस्सी हजार फौज का नेता रुस्तम अली[2] मारा गया। तब जमींदार लोग सिर नवा कर कहने लगे 'आप हमारे स्वामी हो, प्रत्येक गांव आपको 'सलामी' देगा। हम तो गरीब हैं, आपका कौन सामना करेगा? परन्तु, यदि आप भाव पर विजय प्राप्त करोगे तो सतारा मे आपको इनाम मिलेगा। भाव ने हमको बहुत दुःख दिए तब हमने गर्दन डाल दी और उसको कह दिया 'तुम हमारे स्वामी हो।' उसने बहुत से दुर्गों पर अधिकार कर लिया है।" यह सुन कर कन्ताजी के बदन मे आग लग गई; उसने आगे बढ़कर सिहोर से दो कोस के अन्तर पर डेरा डाला। एक ब्राह्मण को बुला कर उसके हाथ भाव के नाम पत्र भेजा 'सीहोर का किला छोड़ दो अन्यथा, शम्भु की शपथ है, मैं प्रातःकाल मे ही आकर तुम्हारे नगर में सर्वत्र अपने झण्डे फहरा दूंगा। तुम्हे केवल रात्रि की चार घड़ी का समय देता हूं।" भावसिंह ने उसका पत्र पढ़ा और वह बहुत क्रुद्ध हुआ। ब्राह्मण को कहा "तुम मुझे अपनी पीठ दिखाओ जिससे तुम्हारा वध करने का पाप न लगे।" ब्राह्मण ने जा कर कन्ताजी से कहा "प्रात. प्रयाण करके उससे युद्ध करो।"

नौबतें गड़गड़ाई, सेना ने कूच किया और कन्ताजी सीहोर आकर पहुंचा जहा पर वह नरेन्द्र विराजमान था। कोकबाण[3] चलने लगे, तोपों के गोले दड-दडाने लगे और पहाडिया गूंज उठी। दोनों ओर से गोलाबारी शुरू हुई। दुर्ग मे बसने वालो का तो कोई नुकसान नही हुआ परन्तु आक्रमणकारी कबूतरों की तरह बिखर गए। बाहरवालो मे से बहुत से मारे गए और रेत चाटने लगे। किलेवाले अडिग रहे। रतनसिंह का पुत्र भावसिंह किंचित् भी भयभीत नहीं हुआ—मरहठे थक गए। दीवान ने कहा—"क्यो परेशान हो रहे हो—हमारी सेना और सामग्री बहुत थोड़ी रह गई है? मेरी सलाह मानो। गगनचुम्बी मरू हमारे हाथ नही आ सकता।" ऐसा कहकर उन्होने अपने डेरे उखाड लिए और वापस लौट गए। परन्तु, कन्ताजी घर नही लौटा और रास्ते मे ही मर गया। वह अपने राजा के पास न जा कर यमलोक को चला गया।

दूसरा वर्ष आया। साहू ने अपने रावतो को पुनः एकत्रित किया। उसने कहा "क्या आप सब लोग देश विजय करके आए हैं? क्या पीलाजी और कन्नाजी की कहीं पराजय हो गई, जो वे नही आए? उनका क्या हुआ?" रावतो ने जवाब दिया "जो जाता है वह शायद वापस भी लौट आता है और साथ मे इतना धन भी

2. रुस्तम अली की हार के लिए ऊपर देखिए पृ० 4
3 अग्निबाण।

ले आता है कि बेटे-पोते बैठे-बैठे खावें; परन्तु, जो भाव से युद्ध करने जाता है वह कभी नही लौटता।"[4]

पहले लिख चुके हैं कि भावसिंह गोहिल ने अपनी नई राजधानी भावनगर की स्थापना 1723 ई. मे की थी।[5] वह साहसी और सूझबूझ वाला

---

4. गुजरात में एक कहावत प्रचलित है—

'जे जाय जावे, ते कदि नह आवे,
जो ते आवे, सात पीढ़ी बैठ के खावे।

इसी का रूपान्तर है—

ते जांय जावे, ते पहरी ने आवे,
जो पहरी आवे, तो परया-परया खावे,
एतलु धान लावे।

यह कहावत रोचक होने के साथ–साथ 600 ई० के लगभग जावा उपनिवेश की भी सूचना देती है जो गुजरात के राजा क्षेमचरित द्वारा स्थापित किया गया था। यद्यपि जावा के ऐतिहासिक वृत्तान्तों मे इसका उल्लेख मिलता है परन्तु गुजरात में केवल उक्त कहावतों से ही इस बात का पता चलता है। देखिए बाम्बे गजेटियर वा. 1, भा. 1, परिशिष्ट 4, पृ० 489 और हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट्स इन इंडिया एण्ड सिलोन, पृ० 259

5. यह गोहिलो के दसोंधी भाटों का कहना है। कर्नल वॉकर कहते हैं कि इस नगर की स्थापना 1742-43 ई. में हुई थी। (काठियावाड गजेटियर मे भी ऐसा ही उल्लेख है; देखिये—भावनगर पर लेख, पृ० 385–97) परन्तु, यह ठीक नही है। कथा इस प्रकार है कि भावसिंहजी एक बार सीहोर से ख्वायरी माता के दर्शन करने गये थे तो वहा वडवा नामक गांव से आगे एक रमणीय मैदान में जा निकले; इसके एक ओर सुन्दर समुद्री खाडी थी, दूसरी ओर सीहोर का मनोरम किला और पालीताना की पर्वत श्रेणी थी; फिर, एक ओर समुद्र का विस्तार और पीरम द्वीप का अद्भुत दृश्य था। इन सब प्राकृतिक सुन्दर दृश्यों को देखकर उनके मन मे वहा एक शहर बसाने का विचार उत्पन्न हुआ। सीहोर मे लगभग 150 वर्ष से गद्दी चली आती थी और बहुत-सी बातों की वहा अनुकूलता भी थी परन्तु समुद्री लहरों वाले शहर के बिना व्यापार की अपार आमदनी और अन्य सुविधाओं का अभाव ही था। इस विचार को दृढ करके उन्होंने पण्डित बुला कर मुहूर्त निकलवाया और संवत् 1779 के वैसाख सुदि 3 के दिन चढते पहर अपने नाम पर भावनगर बसाकर वहा अपनी राजधानी संस्थापित की। इस तरह यह सन् 1723 ई० ही आता है।

सरदार था और अपनी मृत्यु से पूर्व ही इस नव संस्थापित नगर को एक सुस्थिर व्यापारिक केन्द्र के रूप में देख कर उसे सन्तोष प्राप्त हुआ था।[6] मुगल साम्राज्य की अवनति के कारण वह उथल-पुथल और अशान्ति का समय था; नावों द्वारा यातायात खतरे से खाली नहीं था और व्यापार पर भी भारभूत करों में वृद्धि हो गई थी। घोघा और खम्भात को संरक्षण मिलना बन्द हो गया था तथा अहमदाबाद के साथ लाभदायक व्यापार में कमी आ गई थी इसलिए इन दोनों बन्दरगाहों के व्यापार को अपेक्षाकृत हानि पहुंची थी। वहां बहुत थोड़े से वर्ग ही सस्थापित रूप में रह गए थे, मही के मुहाने से सिन्धु नदी तक का प्रदेश लुटेरों के कब्जे में आ गया था जो नजर पड़ते ही व्यापारियों के माल को लूट लेते थे: और समुद्र दरियाई डाकुओं से भर गया था। इस प्रकार भावनगर में एक अपेक्षाकृत शक्तिशाली शासक के जम जाने से बहुत लाभ हुआ क्योंकि वह सुयोग्य, समर्थ और व्यापार की वृद्धि को प्रोत्साहन देने के लिए उत्सुक भी था।[7] गोहिल *रावलों और बम्बई सरकार के पारस्परिक सम्बन्धों का श्रीगणेश हम इसी तिथि* से मानते है; जैसा कि कर्नल वॉकर ने कहा है "उस समय, जब कि इस इलाके में व्यापार और साधन अब (1807 ई.) की अपेक्षा बहुत सीमित थे तो भावनगर के रावल के साथ मित्रता का निर्वाह बहुत आदर एवं यत्नपूर्वक किया हुआ प्रतीत होता है।"

भावसिंह के बाद 1764-65 ई. में उसका पुत्र अखैराजजी गद्दी पर बैठा। वह सामान्यतः भावाजी के नाम से प्रसिद्ध था। उसके स्वभाव में महत्वाकांक्षा नहीं थी इसलिए युद्ध में भी उसकी रुचि नहीं थी। उस समय तलाजा और महुवा कोलियों के अधिकार में थे जो व्यापारियों और अन्य लोगों के वाहनों पर हमला करके ही अपना गुजरबसर करते थे। इन दोनों स्थानों को मुक्त कराने के लिये जब बम्बई से फौज रवाना हुई तो, अपने समुद्री व्यापार के संरक्षण और संवर्द्धन

6. सूरत के सीदी (सिधी) किलेदार के साथ उन्होंने इस प्रकार अनुबन्ध किया था। सन् 1739 ई० में भावनगर के महाराजा और सूरत के किलेदार में यह करार हुआ कि एक ओर महाराजा को बन्दरगाह की जकाती आमदनी का $1\frac{1}{4}$ प्र०श० देगा और सूरत से लदनेवाले व्यापारियों के माल पर कम जकात लेगा; दूसरे, सीदी भावनगर बन्दरगाह और राज्य के शत्रुओं के विरुद्ध महाराजा की मदद करेगा और भावनगर के व्यापारियों का जो माल सूरत जायगा उस पर बिल्कुल जकात वसूल नहीं करेगा। सन् 1760 ई० में दिल्ली के बादशाह ने सूरत के किलेदार का हक ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया तभी से भावनगर राज्य और ब्रिटिश सरकार के बीच मैत्री का बीजारोपण हुआ।

7. भावनगर राज्य की राजवंशावली–भा० 2 के गोहिल प्रकरण में देखना चाहिए।

के लिए आवश्यक समझकर, वह रावल अपनी सेना लेकर उससे जा मिला। विजय के बाद ब्रिटिश सरकार ने तलाजा रावल के सुपुर्द करना चाहा परन्तु अपनी विनम्र नीति के अनुसार उसने इनकार कर दिया। इसके फलस्वरूप तलाजा खम्भात के नवाब को दे दिया गया। यह घटना 1771 या 1772 ई. की है। इससे कोई एक वर्ष बाद ही रावल अखैराजजी कालवश हो गये और उनका पुत्र वखतसिंह गद्दी पर बैठा।

रावल वखतसिंह आताभाई के नाम से अधिक प्रसिद्ध था। वह अपने पिता की अपेक्षा अत्यधिक महत्वाकांक्षी और साहसी था। उसने विविध उपायों और उपलब्धियों द्वारा अपने राज्य का विस्तार किया और साथ ही व्यापार को भी बढ़ावा देकर उसका संरक्षण किया। भाट कहते हैं कि "संवत् 1836 (1780 ई०) में श्री वखतसिंह ने नूर मोहम्मद को तलाजा से निकाल बाहर किया और वहां पर अपना कब्जा कर लिया; उसने जाजमेर को भी अपने अधीन कर लिया। उसी वर्ष उसने जसा खसिया कोली को मार भगाया और श्री महुवा वन्दर पर अधिकार कर लिया।" कर्नल वॉकर का कहना है कि तलाजा से खम्भात के नवाब को निकालने में वखतसिंह ने बल और युक्ति दोनों ही का प्रयोग किया था, उसका यह भी कहना है कि इसके तुरन्त बाद ही रावल ने वालाक जिले पर भी अपना शासन जमा लिया (जिसे प्राचीन काल मे वाला राजपूतों[7] की सम्पत्ति होने के कारण यह नाम मिला था) परन्तु उसमे से कुछ ऐसे गावो को छोड़ दिया था जो सरवैया जाति के अधिकार में थे; पहले अंग्रेजी फौजों के साथ जिस महुआ के किले पर चढ़ाई करके उसको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था उसी को अब उसने पुनः आबाद करके एक चहल-पहल वाला बन्दरगाह बना दिया।

ब्रिटिश प्रतिनिधि कर्नल वॉकर ने आगे कहा है "यहां यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि इस मूल्यवान् प्रदेश और विस्तीर्ण समुद्रीतट को जलदस्युओं से प्राप्त किया गया है और इसके लिए भावनगर के ठाकुरो ने कितना भी बल एव साहस का प्रयोग किया हो परन्तु उनका मुख्य उद्देश्य व्यापार का संरक्षण करने का ही था। इस नीति के नतीजे बहुत अच्छे निकले और व्यापार का संरक्षण करने की इस नियमित योजना से कम्पनी सरकार की रियाया को समुद्रतट पर व्यापार करने की प्रत्येक सुविधा सुलभ हुई। इस नीति से होने वाले लाभ की खोज करने का सर्वप्रथम विचार भावनगर के रावलों की ही सूझबूझ का फल था और उनकी प्रजा

7. वलभीपुर का विध्वंस होने के बाद वहां का राजवंश पहले ईडर और फिर मेवाड़ चला गया। वहां से एक शाखा गुजरात में चली आई जो अब धर्मपुर में है। मेवाड़ में बापा रावल के वंशज राणा रहप (1201ई०–1239ई०) के कुल के रामराजा अथवा रामशाह ने गुजरात में आ कर अलीराजपुर में गद्दी स्थापित की।

मे लूटपाट करके गुजर करने की जो टेव पड़ गई थी उसे छुडा कर मेहनत मजदूरी करके पैसा कमाने की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करने और व्यापारियो के जान-माल को सरक्षण प्रदान करने का भी अद्वितीय श्रेय उन्ही को प्राप्त है जिससे विशाल समुद्र-तट लूटपाट से मुक्त हो गया और इसके अतिरिक्त अन्य स्थायी लाभ भी हुए।[9] इसके साथ ही, यहा यह भी मानना पड़ेगा कि अपनी महत्वाकाक्षापूर्ण नीति

---

9 अंग्रेजों का एक पत्र—

"दौलत व-अलकाब पनाह शौकत व-इजलाल दरतगाह-जीशान दोस्तों के भरोसेदार ऊँचे खानदान वाले राजा आताभाई वीखतसिह ! परमेश्वर तुमको सलामत रखे।

आपकी दोस्ती की शोभा के विचार से दोस्ती (प्रकट करने वाले) भाव, मुबारकबादी व दुआ जाहिर करते हैं। कुछ समय हुआ तब ता० 5वी जिलहद का आपका दोस्ती का खत आया था जिसका जवाब अब से पहले लिखता मगर वहोत से कामो की वजह से देरी हो गई। आपने लिखा था कि बावनगर के कोलियो को इस तरफ से निकाल दिया गया है। सूरत और बंबई मुबारक के व्यापारियो के लिए बन्दर मजकूर साफ हो गया है, इसके लिए दिल से खुशी (जाहिर करते हैं), अब बन्दर मजकूर के व्यापार का कारोबार जारी होगा। इन नालायक चोरो पर आप दोस्तदार की फतहयाबी से मेरी खुशी बहुत बढी है और बन्दर मजकूर पर आपके इकबाल की निशानी में राज का कब्जा हुआ इसके लिए इस खुशी के खत के जरिये मुबारकबादी पेश की जा रही है। उम्मीद है कि खुदा का दिया हुआ यह तालुका बढेगा और ताकतवर दिखाई देगा। खुदा की मदद से हमेशा आप इकबाल की निशानी पर काबिज रहे, कि जिससे, उस तरफ की तमाम चोरियाँ बन्द हो जावें और व्यापारियो के जहाजो को जो चोर लूट लेते थे, उनसे व्यापारियो को निजात हासिल हो। अगर बावनगर से निकाले हुए कोलियो को नवाब हामिदखाँ आसरा देगा तो हमको और हमारे दोस्त को दिली नाखुशी पैदा होने का पूरा वजूद होगा। खास तौर पर यह कि हम अभी इतने ताकतवर नही हैं कि अपने दोस्तदार की मदद कर सकें। खुदा के फजल से उम्मीद है कि नवाब मजकूर आप दोस्तदार के काम के बारे में खयाल खराब नहीं करेगा और आप दोस्तदार को इकबाल की निशानी वाली कम्पनी बहादुर से मदद की दरख्वास्त नहीं करनी पड़ेगी। आप यकीन रखें कि हम हमेशा दिल मे आपके मरतबे, दोस्ती और फतह की बढ़ोतरी के ख्वाहिशमंद हैं। अब दोस्ती व आपसी मेल की बढोतरी की इच्छा के सिवाय क्या लिखूं ? खुशी और ऐश के साथ हमेशा सुख भोगते रहो।

बम्बई ता० 14 दिसम्बर, सन् 1785 — अंग्रेजी अक्षरो मे हस्ताक्षर

के कारण दूसरी बातों में बखतसिंह ने प्रतिष्ठा और न्याय के प्रति अपेक्षाकृत कम ही ध्यान दिया। उसने जितने कदम उठाए सब दमदारी और प्रायः समझदारी से ही उठाए हैं; परन्तु, उसके सभी कार्यों पर स्वार्थ का अत्यधिक प्रभाव रहा है जिसको सिद्ध करने के लिए, सत्ता का विस्तार करने निमित्त अथवा अपनी सफलता की सुनिश्चितता के लिए, उसने बल, छल और युक्ति का खुल कर प्रयोग किया है।"

इन साधनों के कारण गुजरात, सोरठ और मारवाड़ से भावनगर में माल आने लगा व यहां का माल उन देशों को जाने लगा और व्यापारियों को जो प्रोत्साहन मिला उससे बहुत से धनी लोग यहां आकर बसने को ललचाने लगे तथा पास ही में स्थित घोघा बन्दरगाह अन्य बहुत-सी सुविधायें होते हुए भी, हल्का पड़ गया।[10] गोहिल ठाकुरों की ऊंची सूझबूझ और उत्तम नीति का उदाहरण देते हुए कर्नल वॉकर ने एक ध्यान देने योग्य बात कही है कि घोघा बन्दर पर, जो उस समय पेशवा सरकार के अधीन था, किनारे से टकराये हुए या टूटे हुए तथा डूबे हुए जहाज वार्षिक आय का स्रोत समझे जाते थे जब कि गोहिलों के अधिकार में जो समुद्र तट था उस पर सर्वत्र उनका संरक्षण होता था तथा व्यापारियों को यथावत् उनका माल लौटा दिया जाता था।

भाटों की कथा के अनुसार 1792 ई. में बखतसिंह का काठियों के साथ झगड़ा हुआ। वह सेना लेकर चीतल गया तब सब काठी वहां से भाग गये। बखतसिंह वहां से बहुत से घोड़े, ऊंट और गाड़ियां भर-भर कर माल अपने साथ लाया।[11] फिर उसने कुंडले जाकर अपना झण्डा फहरा दिया।[12]

---

10. परन्तु अब दशा विपरीत हो गई है; घोघा का व्यापार चालू हो गया और भावनगर का मन्दा पड़ गया है।

11. चीतल की इस लड़ाई का चित्र सीहोर के दरबारी महल में है। इसी के आधार पर गंजीफा के आकार में चित्र छपवाकर महाराजा भावसिंह ने प्रकाशित किए थे, वे बहुत मनोरंजक हैं।

12. बखतसिंह ने जो एक के बाद एक ताबड़तोड़ गढ़ आदि जीते उनका वर्णन फार्बस गुजराती सभा के हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रह के अंक 34म वाले गीत में मिलता है, जो इस प्रकार है—

ठाकुर बखतसिंह जी नु' गीत सपाखरू

प्रथम लियो गढ तलाजो,[1] बंदर सरतन पर,[2] तेम अजमेर[3×] अठ बद्रतामां;
मवा,[4] भाद्रोड शिरमोड़ मरदो परद, धरद जुलापुरी˜ नदी धामा। 1
(× अंजमेर = आंजमेर; ˜ जुलापुरी = नालापुरी, करला ग्राम के पास;)

→

में लूटपाट करके गुजर करने की जो टेव पड़ गई थी उसे छुड़ा कर मेहनत मजदूरी करके *पैसा कमाने की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करने और व्यापारियों के जान-माल को* सरक्षण प्रदान करने का भी अद्वितीय श्रेय उन्ही को प्राप्त है जिससे विशाल समुद्र-तट लूटपाट से मुक्त हो गया और इसके अतिरिक्त अन्य स्थायी लाभ भी हुए।[9] इसके साथ ही, यहा यह भी मानना पड़ेगा कि अपनी महत्वाकांक्षापूर्ण नीति

---

9 अंग्रेजो का एक पत्र—

"दौलत ब-अलकाब पनाह शौकत ब-इजलाल दरतगाह-जीशान दोस्तो के भरोसेदार ऊँचे खानदान वाले राजा आताभाई बीखतसिंह ! परमेश्वर तुमको सलामत रखे।

आपकी दोस्ती की शोभा के विचार से दोस्ती (प्रकट करने वाले) भाव, मुबारकबादी व दुआ जाहिर करते हैं। कुछ समय हुआ तब ता० 5वीं जिलहद का आपका दोस्ती का खत आया था जिसका जवाब अब से पहले लिखता मगर बहोत से कामो की वजह से देरी हो गई। आपने लिखा था कि बाघनगर के कोलियो को इस तरफ से निकाल दिया गया है। सूरत और बबई मुबारक के व्यापारियो के लिए बन्दर मजकूर साफ हो गया है, इसके लिए दिल से खुशी (जाहिर करते हैं), अब बन्दर मजकूर के व्यापार का कारोबार जारी होगा। इन नालायक चोरो पर आप दोस्तदार की फतहयाबी से मेरी खुशी बहुत बढी है और बन्दर मजकूर पर आपके इकबाल की निशानी मे राज का कब्जा हुआ इसके लिए इस खुशी के खत के जरिये मुबारकबादी पेश की जा रही है। उम्मीद है कि खुदा का दिया हुआ यह तालुका बढेगा और ताकतवर दिखाई देगा। खुदा की मदद से हमेशा आप इकबाल की निशानी पर काबिज रहे, कि जिससे उस तरफ की तमाम चोरियां बन्द हो *जावें और व्यापारियो के जहाजो को जो चोर लूट लेते हैं उनसे व्यापारियों* को निजात हासिल हो। अगर बाघनगर से निकाले हुए कोलियों को नवाब हामिदखां आसरा देगा तो हमको और हमारे दोस्त को दिली नाखुशी पैदा होने का पूरा वजूद होगा। खास तौर पर यह कि हम अभी इतने ताकतवर नहीं हैं कि अपने दोस्तदार की मदद कर सकें। खुदा के फज्ल से उम्मीद है कि नवाब मजकूर आप दोस्तदार के काम के बारे में खयाल खराब नही करेगा और आप दोस्तदार को इकबाल की निशानी वाली कम्पनी बहादुर से मदद की दरख्वास्त नही करनी पड़ेगी। आप यकीन रखें कि हम हमेशा दिल मे आपके मरतबे, दोस्ती और फतह की बढ़ोतरी के ख्वास्तगार हैं। अब दोस्ती व आपसी मेल की बढ़ोतरी की इच्छा के सिवाय क्या लिखूं ? खुशी और ऐश के साथ हमेशा सुख भोगते रहो।

बम्बई, ता० 14 दिसम्बर, सन् 1785 — अंग्रेजी अक्षरो मे हस्ताक्षर

पता : मो.50, गौरनगर, सागर ग्रन्थ भवन, मार—

के कारण दूसरी बातों में बखतसिंह ने प्रतिष्ठा और न्याय के प्रति अपेक्षाकृत कम ही ध्यान दिया। उसने जितने कदम उठाए सब दमदारी और प्रायः समझदारी से ही उठाए हैं; परन्तु, उसके सभी कार्यों पर स्वार्थ का अत्यधिक प्रभाव रहा है जिसको सिद्ध करने के लिए, सत्ता का विस्तार करने निमित्त अथवा अपनी सफलता की सुनिश्चितता के लिए, उसने बल, छल और युक्ति का खुल कर प्रयोग किया है।"

इन साधनों के कारण गुजरात, सोरठ और मारवाड़ से भावनगर में माल आने लगा व यहां का माल उन देशों को जाने लगा और व्यापारियों को जो प्रोत्साहन मिला उससे बहुत से धनी लोग यहां आकर बसने को ललचाने लगे तथा पास ही में स्थित घोघा बन्दरगाह अन्य बहुत-सी सुविधायें होते हुए भी, हलका पड़ गया।[10] गोहिल ठाकुरों की ऊंची सूझबूझ और उत्तम नीति का उदाहरण देते हुए कर्नल वॉकर ने एक ध्यान देने योग्य बात कही है कि घोघा बन्दर पर, जो उस समय पेशवा सरकार के अधीन था, किनारे से टकराये हुए या टूटे हुए तथा डूबे हुए जहाज वार्षिक *आय का स्रोत समझे जाते थे जब कि गोहिलों के अधिकार में जो समुद्र तट था उस* पर सर्वत्र उनका संरक्षण होता था तथा व्यापारियों को यथावत् उनका माल लौटा दिया जाता था।

भाटों की कथा के अनुसार 1792 ई. में बखतसिंह का काठियों के साथ झगड़ा हुआ। वह सेना लेकर चीतल गया तब सब काठी वहां से भाग गये। बखतसिंह वहां से बहुत से घोड़े, ऊंट और गाड़ियां भर-भर कर माल अपने साथ लाया।[11] फिर उसने कुंडले जाकर अपना झण्डा फहरा दिया।[12]

---

10. परन्तु अब दशा विपरीत हो गई है; घोघा का व्यापार चालू हो गया और भावनगर का मन्दा पड़ गया है।

11. चीतल की इस लड़ाई का चित्र सीहोर के दरबारी महल में है। इसी के आधार पर गंजीफा के आकार में चित्र छपवाकर महाराजा भावसिंह ने प्रकाशित किए थे, वे बहुत मनोरंजक हैं।

12. बखतसिंह ने जो एक के बाद एक ताबडतोड़ गढ़ आदि जीते उनका वर्णन फार्बस गुजराती सभा के हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रह के अंक 34घ वाले गीत में मिलता है, जो इस प्रकार है—

ठाकुर बखतसिंह जी नुं गीत सपाखरूं

प्रथम लियो गढ तलाजो,[1] बंदर सरतन पर,[2] तेम अजमेर[3×] अठ बद्रतामां;
मवा,[4] भाद्रोड शिरमोड़ मरदां परद, धरद जुलापुरी– नदी धामा। 1
(× अंजमेर = आजमेर; – जुलापुरी = नालापुरी, करला ग्राम के पास;

बहुत से काठी जूनागढ जाकर वहां के नवाब महमद खान से मिले और उससे शिकायत की कि रावल बखतसिंह जी ने उनका गरास छीन लिया। इस पर नवाब फौज लेकर चढा तो रावल ने चालीस हजार सेना से उसका मुकाबला किया और पाटणा ग्राम के मोर्चे पर नवाब को उसके तोपखाने सहित पीछे हटा दिया तथा राजुल ग्राम पर अधिकार कर लिया। बाद मे जेठवा राजपूत जीयाजी ने नवाब और रावल मे मेल करा दिया। उन सब ने साथ-साथ कसूंभा पिया[13] परन्तु काठियो के साथ रावल का झगडा बारह वर्ष तक चलता रहा।

गाजीया देश वाघेर उनागरा, राजुले तखतंत्र वाबु रडीया;
उ डले दो मुजे भीत पर आणीया, छत्रपति कुंडले झंडा चढ़ीया। 2
मइ करी चांदगर अने सलड़ी थका, वेहेद इंगलिये डंका वागा;
शहर लाडी करी बावरा सामली, मड़लीया गामरा होई भागा। 3
गढपति रावले गुंद्रगढ×, गालीयो, नवड़ गढड़ा घस एकनो रे;
पोहोलि बोटाद भीमडाद तें पाणवी, काठीयारी हरपराको रे। 4
कौरवा जेम जांजेरिया कोपियां, मरद घर अडाडेय खेल माते;
जीघ भावाहरो भीम पांडव जेही, आंबलो पीपली करी आते। 5
हेकणी वाजुये समुद्र मोजा हुवो, हेकणी बाजुए हसम⁰ हाले;
टुड भड चोकटी अडग कीधो हुवो, तणा सब मालरी जुओ ताले। 6
लाज रख मणहरा केक बालालियण, कवि एकी रसण कहे केता;
पाटकें वेट पेरभरो पातसा, मतबल भोगवें देस एता। 7
हाथ वखते घणा भेद वखता हुवा, प्रथी रमपालरो देश वखतो;
शिओरो पाटवी जगोजग सलामत, वखतवत मावाणे तखत वखतो। 8

(×गुंद्रगढ़ = यह काठियों का ग्राम था; मराठम = परगना; 0हसम = सवारी)

13. फार्बस गुजराती सभा के हस्तलिखित ग्रन्थ-सग्रह अंक 34ड मे इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है—

वखतसिंह जी नु गीत

चोपे आवीया नवाब सेन काठीयां की घरे चाड,
अडे नको गढे कोटे गामड़े अशेष;
चडे जटाधार क्रोध केना जणा इन्द्र चढे,
वडे वाजवनां सामा चढे वखतेश। 1
अवाला रणके घोसां ठणके गरदा टुक,
शेगरा सलके, वोम झलके शमद्र;
अगाली शक्ति तेक अजाड़े, अलके भांण,
नवाबी साहमों सके अखेराजनद। 2

यहां यह उल्लेखनीय है कि उस समय जूनागढ़ शाह महमद की राजधानी (महमदाबाद) के अन्तिम मुसलमान शासक कमालउद्दीन अथवा जवांमर्दखां बाबी के खानदान वालों के हाथ में था।

असंखा रोहला संघी पठाणा घलुर श्राया,
घणां ग्ररबाणां घाया बजे त्रासा धाव;
श्रातातन भ्राता सोत शा महात धरले भाय,
श्राया मलांकाज बाबी चोडे खेत ग्राव। 3

देठाला दोषलां दलां तो पाकी सलामी दीधी,
कीध जंडा घंडा ले मोरचाबधी कीध;
कीधो को सांकडे फेर हेमदे, वचार कीध,
दीधनां दोकड़ा श्राणे रोक मार दीध। 4

सवारां नवाज ठाठ मध्य रात लही नाठा,
घर टोलि होले काग टोंगा जेम थाय;
नंद मोबतांका मागा एड-वेड़ गणे नाही,
जव नाहेडवे ग्रातो केड लीधे जाय। 5

पराठी कोनाडी फोज लाठी महेल गई परी,
ग्रखे काठी कहे नके भागीयां ऊगार;
ग्रधिपति सीहोर को मार मार थको ग्रायो,
शलावंत ग्रादरेका बरदां संभार। 6

एरणी खराई करी फरी पाटणे ग्राया,
काया माया दूर करी घरी क्रोध काम;
धलेतां वंजारां सामीं ग्राधा कोश पले घरी,
मार हरी हरी करी मांडीयां मकाम। 7

देवतां दईतां जेम ग्राम-सामा जुबे दलां,
लुबे कालां गज नेडाह् मेलटीयाल;
गहके शबदां पंथ सुर मेर श्रंबागलां,
लडवा वीजलां खलां भ्रांकडेलां काल। 8

थके प्रलय कालां नालां वहु थके पहो ढाक,
दोरंगी बेरखां छुटी वहे दीन दीन;
संगोर वखतवाला जीन सोर होर लागा,
मीया तीन पहोर मोहमानी थया मीन। 9

बहुत से काठी जूनागढ़ जाकर वहां के नवाब महमद खान से मिले और उससे शिकायत की कि रावल वखतसिंह जी ने उनका गरास छीन लिया। इस पर नवाब फौज लेकर चढा तो रावल ने चालीस हजार सेना से उसका मुकाबला किया और पाटणा ग्राम के मोर्चे पर नवाब को उसके तोपखाने सहित पीछे हटा दिया तथा राजुलु ग्राम पर अधिकार कर लिया। बाद में जेठवा राजपूत जीवाजी ने नवाब और रावल में मेल करा दिया। उन सब ने साथ-साथ कसूंभा पिया[13] परन्तु काठियों के साथ रावल का झगड़ा बारह वर्ष तक चलता रहा।

गांजीया देश वाघेर उनागरा, राजुले तखतंत्र वाबु रडीया;
उ डले दो भुजे भीत पर प्राणीया, छत्रपति कुंडले झंडा चड़ीया। 2
थइ करी चादगर घने सलड़ी थका, वेहेद इंगलिये डंका वागा;
शहर लाडी करी बाबरा सामली, भड़लीया गामरा होई भागा। 3
गढपति रावले गुंद्रगढ×, गालीयो, नवड़ गढ़ड़ा घस एकनो रे;
पोहोलि बोटाद भीमडाद तें पाणवी, काठीयारी हूरपराको रे। 4
कौरवा जेम जांजेरिया कोपियां, मरद धर अडाडेय खेल माते;
जोध भावाहरो भीम पाडव जेही, श्रांबली पीपली करी प्राते। 5
हेकणी बाजुये समुद्र मोजां हुवो, हेकणी बाजुए हसम⁰ हाले;
टुंड भड़ चोकटी खड़ग कोधो हुवो, तणा सब मालरी जुम्रो ताले। 6
लाज रख मणहरा केक बालालियण, कवि एकी रसण कहे केता;
पाटकै वेट पेरंमरो पातसा, भ्रतबल भोगवै देस एता। 7
हाथ वखते घणा भेद वखता हुवा, प्रयो रमपालरो देश वखतो;
शिमोरो पाटवी जगोजग सलामत, वखतवत मावाणे तखत वखतो। 8
(× गुंद्रगढ़ = यह काठियो का ग्राम था; भराठम = परगना; 0हसम = सवारी)

13. फार्बस गुजराती सभा के हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रह ग्रंक 34ड में इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है—

वखतसिंह जी नुं गीत

चोपे आवीया नवाब सेन काठीयां की धरे चाड,
अड नको गढे कोटे गामड़े प्रशेश;
चडे जटाधार क्रोध केना जणा इन्द्र चडे,
वढे वाजवना सामा चढे वखतेश। 1
प्रवालां रणके घोसां ठणके गरदा टुक,
शेशरा सलके, वोम झलके शमद्र;
भजाली शक्ति तेक भजाडुं, प्रलके भोण,
नेवाबां साहमों सके प्रघेरामनद। 2

यहां यह उल्लेखनीय है कि उस समय जूनागढ़ शाह अहमद की राजधानी (अहमदाबाद) के अन्तिम मुसलमान शासक कमालउद्दीन अथवा जवांमर्दखां बाबी के खानदान वालों के हाथ में था।

असंखा रोहला संघी पठाणा धलुर धाया,
घणां अरबाणां धाया बजे त्रासा घाव;
अातातन आला सोत शा महात वरलें आय,
आया भलांकाज बाबी चोडे खेत आव। 3

देठाला दोवलां दलां तो पाको सलामी दीधो,
कीध जंडा थंडा ले मोरचाबधी कीध;
कोधो को सांकडे फेर हेमदे, वचार कीध,
दीधनां दोकड़ा आणे रोक मार दीध। 4

नवारां नवाज ठाठ मध्य रात लही नाठा,
धर टोले होले काग टोगा जेम धाम;
नंद मोबतांका मागा एड-बेड़ गणे नाही,
जव नाहेडवे आतो फेड लीधे जाय। 5

पराठी कोनाडों फोज लाठी महेल गई परी,
असे काठी कहे नके भागीयां ऊगार;
अधिपति सीहोरं को मार मार थको आयो,
धलाचतं बांदरका बरदां संभारं। 6

एरधी खराई करी फरी पाटणे आया,
काया माया दूर करी धरी क्रोध काम;
दलेतां बंजारां सामो आया क्रोश पले धरी,
मार हुरी हुरी करी मांडीयां मकाम। 7

देवतां दईतां जेम आम-सामा जुबे दलां,
लुबे कालां गज नेडाहु बेलटीयाल;
गहके शबदां पंथ सुर मेर त्रंबागलां,
लडवा वीजलां खलां धांकडेलां काल। 8

धके प्रलय कालां नालां घडु थके पडी ढाक,
दोरंगी बेरवां छुटी वहे दीन दीन;
संगीर वखतवाला जीन तीर होर लागा,
मीयां तीन पहोर मोहमाती गया मीन। 9

उक्त लड़ाई का वर्णन भाटों के गीत में भी सुरक्षित है जिसका भावार्थ इस प्रकार है—"काठियों की सेना साथ लेकर नवाब ने तुरन्त ही चढ़ाई की; किले, महल और गांव मे एक भी आदमी नही छोड़ा। जब वह क्रोधायमान होकर आया तो वखतेश भी दूसरे इन्द्र के समान उस यवन से युद्ध करने को चढ़ा। नौबतें बजीं, नगाडे बजे, उनसे पर्वतों के शिखर गूज उठे, पृथ्वी को धारण करने वाला (शेष) नाग कांप उठा और समुद्र की लहरें आकाश को छूने लगी। उसके हाथ की बरछी सूर्य-रश्मि के समान चमचमाहट करने लगी, नवाब के सामने तो अखेराज का पुत्र ही चढ सकता है, और कोई नही। अनगिनती रोहिला, सिन्धी और पठान आये, बहुत से अरब भी नगाडे बजाते हुए आये। आताभाई अपने भाईयो के साथ उससे युद्ध करने आगे बढा, "बावी! तुम बहुत अच्छा आशय लेकर आये हो, घोड़े पर सवार हो कर लड़ाई के मैदान में आगे आओ।" बाद मे, मोरचा बांधा, तोपो की सलामी दी और फिर उसको शोक मे डुबा दिया। हेमद ने देखा कि यहां तो मुझे पैसे की अपेक्षा घाव ही अधिक मिलेंगे इसलिये राजनौबत बजाए बिना ही वह आधी रात को भाग खड़ा हुआ। काठी भी कौवो की तरह इधर-उधर भागने लगे। मोहब्बत खा का लड़का भगा, वह किस रास्ते भाग रहा है, इसका भी उसे पता नहीं रहा। आतो यवन के पीछे पड़ा। सीहोर का स्वामी आगे बढ़ता हुआ हाक लगा रहा था

करावे वशटी सांमी अरजां उलटी करे,
कुलांकी पलटी रीत उपाडू कुरान;
दीया मैं राजुला तोय कुडला चीतल दीया,
जाही मान तोय प्रभु दही सारी जान। 10

करी परवाना और सारी मोरछाप कीनीं,
पोरवाला मीर माना आछवे प्रवीन;
वंका काटे सखायतो हुकरीया हाका-बाका,
हुवा सोरठ का सूबा तरे शंका हीण। 11

कुपा वाजसुर दाहा जाणी रान भार कशा,
नाथ पेरमरा घेर जीतरा नीशाण;
खरा भाजे बांबीयारा काठीयारा कुंजावरा,
हरा भावा तणा अजाजुतरा हालाण। 12

थलं रतनेश भावा अखेराज नीर थाडे,
रंजाडे परजां कोट पाडे दिगा रेश;
मेदीनी भगल गाया सोरन की अपा मंडी
मडी फते पाया मरां आया वखतेश। 1

छन्द: मी-50, गोरनगर, सागर भवन बढा।

"मारो, मारो, सलाबत खां[14] की आबरू की खबर लो।" वह अपने दिल से दोस्ती के भाव को निकालकर क्रुद्ध हुआ और उसने पाटण आकर डेरा जमा दिया, जो शत्रु की सीमा से एक ही कोस की दूरी पर था। हरि! हरि! कहते हुए उसने अपना डेरा जमाया।

मानों देव और दानव ही लडने को तैयार हुए हो, इस तरह काले-काले हाथी और लम्बी-लम्बी अयालों वाले घोड़े आमने-सामने खड़े हुए। पाच प्रकार के वादित्रों[15] का नाद होने लगा, युद्ध के लिए बिजली की तरह चमक वाली तलवारो के झपाके होने लगे, ऐसा लगा मानो संसार का अन्तिम दिन ही आ पहुचा है, बन्दूकें चलने लगीं, दोहरी पक्तिबद्ध अरबों की टुकड़ियां "दीन, दीन"[16] पुकारती हुई आगे बढने लगी, बखतसिंह के शूरवीर सिपाही जैसा वार पड़ा वैसे ही लड़ने लगे। एक ही घड़ी मे मियां ने तोबा माँग ली; वह स्वय ही प्रार्थना करने लगा "मैं कुरान की कसम खा कर कहता हूँ, अब हमला नही करूँगा। मैं राजुला, कुडला और चीतल तुम्हारे हवाले करता हूँ; परवरदिगार ने ही तुमको यह पूरा मुल्क दिया है।" यह कहकर उसने पट्टा लिखवाया और उस पर अपनी मोहर लगा दी। पोरबन्दर के राणा जीवाजी जेठवा ने उसकी हिम्मत बधाई, और भी जो लोग उसके साथ थे सब आश्चर्य मे पड़ गये, सोरठ का सूबेदार बे-आबरू हो गया था। उसके साथ जेतपुर का कूपावत, वाजसूर काठी और जसदन का दाहा भी था। पीरम के स्वामी से, जिसके महल पर विजय ध्वजा फहरा रही थी, मुकाबला करने को उनकी क्या हिम्मत थी? जब बाबी का ही बल टूट गया तो काठियों की क्या बिसात थी? भावसिंह के अद्भुतकर्मा वशज और उसके कुंअर ने रत्नेश, भाव और अखेराज की तलवारो के पानी को फिर चमका दिया। सारे देश में उनके गीत गाए गये, आसपास के राजाओं ने उन पर सोना बरसाया और बखतेश विजयी होकर खुशी से घर लौटा।[17]

---

14. नवाब का पूर्वज।

15. शाही प्रतीक पंच महावाद्य—नगाड़ा, शहनाई, झाझ, करनाय और तुरही।

16. मुसलमान लड़ते समय ईश्वर को पुकारते हुए 'दीन-दीन' कहते हैं।

17. जूनागढ के नवाब और बखतसिंह मे जब सन्धि हो गई तो उन्होने कसूमा पीने का समारोह किया। उस समय नवाब को किस तरह नमना पडा, इसका एक रसीला लोकगीत फार्ब्स गुजराती सभा के हस्तलिखित संग्रह मे सं० 34ब पर प्राप्त है, वह उद्धृत करते हैं—

(झगडा निबट जाने पर कसूंभा पीने के लिए ठाकुर ने नवाब को अपने लश्कर मे बुलाया, उस समय का गीत)

भले पाखरां चचले दले जंगा टोप झलमले,
साबले मुगले आता ऊपरां सामंद;
साबले ऊजले आयो जामवा ओहोणो शुबो,
हेंदले पेंदले खडे पांगलो हामंद।।1

1803 ई० के अक्तूबर मास के प्रारम्भ मे मल्हारराव होल्कर फिर गड़बड़ी करने लगा; वह गोहिलवाड की सीमा के पास साबर कूडला मे बाबाजी आपाजी के घुड़सवारों की टुकड़ी से भिड गया, जो उस समय काठियावाड़ में मुल्कगीरी करने निकला था। इस भिड़न्त में मल्हारराव के आदमियों की हार हो गई और उसका लश्कर लुट गया, तब वह भावनगर भाग गया और वहा उसने बखतसिह जी गोहिल की शरण ग्रहण की। परन्तु, बखतसिह का विचार किसी भी तरह उसका पक्ष लेने का नही हुआ इसलिए उसे नाव मे बैठकर द्वारका अथवा भुज चले जाने मात्र की सुविधा दे दी। मल्हारराव अधिक दूर नही जा पाया था कि दो अंग्रेजी जहाजो ने उसे देख लिया और उसके वाहन पर दो बार गोलियां चलाई इसलिए वह फिर किनारे पर लौट आया और भावनगर के तट पर उतरा

सामले आपाज ऊठ वाद बाप बखतेश,
आदरो संताव खागां नोतरी अमाप;
हाथ मुंछे नोखी आप चक्रावो अबाव खोहे,
नशीबें आपरें आयो ओहोण नवाप। 2
खेतर चट्ट लीधा लारां, धुआधारां, तोपखानां,
मेलि आतर कलारा पेसारा पसंद;
धधकारे पाटी अग चोधारां चोधारां धारां,
मामले अखा रा नंद वरासा समंद्र। 3
बाण कोकबाण उडे सरधार भलेबीयां,
माथे गोली कली सार, हो-होकार मार;
कही जोशे लखा जं धार धार नावं पार,
अहो मजादार करे पीसाणां अपार। 4
कटारां कडवां हाथ, झुमझला कलकला,
गुवामेन कलममां हीलाले मझाथ;
अघायां मुगलां धायां गलो के नवलां धायां,
नोतरां की मुली शोभा पेरंम का माथ। 5
तीरांशा कत सेत से लाडू गोसी अशी भात,
लागां खशी पशी भरे घतरतां लम;
अले असे देनदार पाणी तसां तणे माहे,
मरे लोथडसे धान मधी जुं मुगल। 6
लोदरां बचारे लो से अपसे कतारां [illegible]
[illegible] पान [illegible] अपार

परन्तु रावल ने फिर उसको शरण देना स्वीकार नहीं किया इसलिए परिणाम से भयभीत होकर अपने झण्डे, निशान, हाथी और घोड़े वहीं छोड़ कर वह अपने पुत्र सहित भागा और शत्रुंजय अथवा पालीताना की पवित्र पहाड़ियों में पहुंच-कर दम लिया। केवल एक ही नौकर के साथ वे कुछ दिन वहा पर रहे और किसी तरह भूख प्यास निकालते रहे परन्तु आसपास के निवासियों ने उन्हें खोज कर उनके छिपने का स्थान बाबाजी को बता दिया। गायकवाड़ के सेनापति ने तीन कोतल[1] घोड़ो सहित एक सौ घुड़सवारों को उन्हें लाने के लिए भेजा। वे तीनों भूख प्यास से प्रायः अधमरे हो गए थे और निराश हो चुके थे इसलिए घुड़सवारो के पहुंचने पर उन्होने कोई अड़चन नही की। जब इस प्रकार वे गायकवाड़ की छावनी के पास थोड़ी दूर तक आ पहुंचे तो उन्हें लाने के लिए बाबाजो के भेजे हुए म्याने (पालकिया, डोले) मिले। कड़ी के बुद्धिमान, महत्वाकांक्षी, हठी और अभागे जागीर-दार की, अन्त में, यह दशा गुजरात में हुई। अगले मई के महीने मे उसके पुत्र खडेराव के साथ उसको ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया गया और उनकी आज्ञा से उसे बम्बई के किले मे भेज दिया गया जहा वह अपने अन्तिम समय तक कैद रहा।

1804 ई० के प्रारम्भ मे ही बडोदा राज्य के मुल्कगीरी कर की वाजिब रकम का फैसला मंजूर कराने के लिए एक ब्रिटिश वकील को भावनगर के रावल के पास भेजा गया। गायकवाड़ सरकार ने यह कदम कर्नल वॉकर के अनुरोध पर उठाया था और प्रारम्भ में तो कुछ समय तक बखतसिंह ने भी इस बात को अनुकूलता से सुना। बाद मे, मुख्यतः अपने मन्त्रियो की सलाह से, कुछ समय तक वह इस प्रश्न को टालता रहा और अन्त मे, उसने इस प्रस्ताव को पूर्णतया अस्वीकृत कर दिया। अनुकूल फल निकलने की आशा में बाबाजी कुछ समय तो रावल की सीमा पर ठहरा रहा परन्तु अब मजबूर होकर अगस्त मास में उसे आगे बढना पडा; नतीजा यह हुआ कि लड़ाई चालू हो गई। गायकवाड़ का सेनापति सीहोर की ओर आगे बढा और उसके पिण्डारियो ने कुछ ग्रामवासियो को परेशान किया तथा उनके कुछ मवेशी उठा ले गए। घोघा परगने की धरती रावल और ब्रिटिश मे इस तरह बंटी हुई और मिलीजुली थी कि यदि एक को नुकसान पहुंचाया जाय तो दूसरे की हानि अपने-आप हो जाती थी इसलिए, कर्नल वॉकर ने सोचा कि बखतसिंह ने समझा था कि शायद बाबाजी उसे परेशान नहीं करेगा। ब्रिटिश रेजीडेण्ट लिखता है, "मैंने यह आवश्यक समझा है कि उसे अच्छी तरह समझा दूं कि वह इस विषय मे गाफिल न रहे; गायकवाड़ सरकार का वाजिब कर अदा न करने और मांग का विरोध करने के फलस्वरूप परगने मे कम्पनी सरकार के हिस्से का कोई नुकसान होगा तो रावल उसके लिए जवाबदार होगा। मेरे इस सन्देश का अभी कोई उत्तर तो नही मिला है परन्तु लगता है कि इसका कुछ अच्छा ही असर पड़ेगा क्योंकि मुझे पता चला है

18. आगे चलने वाले घोड़े कोतल कहलाते हैं।

1803 ई० के अक्तूबर मास के प्रारम्भ मे मल्हारराव होलकर फिर गड़बड़ी करने लगा; वह गोहिलवाड की सीमा के पास सावर कुडला मे बावाजी आपाजी के घुड़सवारों की टुकड़ी से भिड़ गया, जो उस समय काठियावाड़ में मुल्कगीरी करने निकला था। इस भिड़न्त में मल्हारराव के आदमियो की हार हो गई और उसका लश्कर लुट गया, तब वह भावनगर भाग गया और वहां उसने बखतसिंह जी गोहिल की शरण ग्रहण की। परन्तु, बखतसिंह का विचार किसी भी तरह उसका पक्ष लेने का नही हुआ इसलिए उसे नाव मे बैठकर द्वारका अथवा भुज चले जाने मात्र की सुविधा दे दी। मल्हारराव अधिक दूर नही जा पाया था कि दो अंग्रेजी जहाजो ने उसे देख लिया और उसके वाहन पर दो बार गोलियां चलाई इसलिए वह फिर किनारे पर लौट आया और भावनगर के तट पर उतरा

सांमले आपाज ऊठ वाद आप बखतेश,
आदरो सताब खागां नोतरो अमाप;
हाथ मुछे नोखो आप चकावो अबाब सोहे,
नशीबें आपरें आयो ओहोएा नवाप। 2
सेतर चट्ट लोश्रा लारा, धुमाधारां, तोपखानां,
मेलि आंतर कलारां पेसारा पसंद;
धधकारे पाटी अग चोधारां चोधारां धारां,
मामले अखा रा नंद वरासा समंद्र। 3
बाण कोकबाण उड़े सरघार झलेवीया,
माथे गोली कली सार, हो-होकार मार;
कहो जोशे लखा जे वार वार नावें पार,
अहो मजादार करे पीमाणां अपार। 4
कटारां कडवां हाथ, झुझमला कलकला,
शुबामेन कलमलां हीलाले सम्राथ;
अघ्राथं मुगलां आयां गली के नवलां आयां,
नोतरां की भली शोभा पेरंभ का नाथ। 5
तीरांशा कत सेत से लाडु गोसी अशी भात,
लागा खशी पशी भरे घतरतो लख;
अले असे देनदार पाणी तसां तणे आहे,
भरे लोघडसे घान अशी जुं मुगल। 6
सोदरां बघारे लो से अपसे कतारां लारां,
वडां खाले पान बीडा पावठां अपार;
कवि कहे बार बार पोय राजे जै-जैकार,
हाथ पगे कीघी जुबेश लाखां हजार। 7
जेठवा नमावुं भाला, हाला तणीं जाशे जाऊं,
दबावुं आपेला पाऊं तसे कोक दन;
जीवतो जो भूले जाऊं आताको न थाऊं जामे,
सांभले ओहोएणी मावुं असाकी सोगन। 8

पत्रा: सा.50, रतनगर, सागर

परन्तु रावल ने फिर उसको शरण देना स्वीकार नहीं किया इसलिए परिणाम से भयभीत होकर अपने झण्डे, निशान, हाथी और घोड़े वहीं छोड़ कर वह अपने पुत्र सहित भागा और शत्रुंजय अथवा पालीताना की पवित्र पहाड़ियों में पहुंचकर दम लिया। केवल एक ही नौकर के साथ वे कुछ दिन वहां पर रहे और किसी तरह भूख प्यास निकालते रहे परन्तु आसपास के निवासियों ने उन्हें खोज कर उनके छिपने का स्थान बाबाजी को बता दिया। गायकवाड़ के सेनापति ने तीन कोतल[1] घोड़ों सहित एक सौ घुड़सवारों को उन्हें लाने के लिए भेजा। ये तीनों भूख प्यास से प्रायः अधमरे हो गए थे और निराश हो चुके थे इसलिए घुड़सवारों के पहुंचने पर उन्होंने कोई अड़चन नहीं की। जब इस प्रकार वे गायकवाड़ की छावनी के पास थोड़ी दूर तक आ पहुंचे तो उन्हें लाने के लिए बाबाजी के भेजे हुए म्याने (पालकियां, डोले) मिले। कड़ी के बुद्धिमान, महत्वाकांक्षी, हठी और अभागे जागीरदार की, अन्त मे, यह दशा गुजरात मे हुई। अगले मई के महीने मे उसके पुत्र खंडेराव के साथ उसको ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया गया और उनकी आज्ञा से उसे बम्बई के किले मे भेज दिया गया जहां वह अपने अन्तिम समय तक कैद रहा।

1804 ई० के प्रारम्भ में ही बडोदा राज्य के मुल्कगीरी कर को वाजिब रकम का फैसला मंजूर कराने के लिए एक ब्रिटिश वकील को भावनगर के रावल के पास भेजा गया। गायकवाड़ सरकार ने यह कदम कर्नल वॉकर के अनुरोध पर उठाया था और प्रारम्भ में तो कुछ समय तक बखतसिंह ने भी इस बात को अनुकूलता से सुना। बाद मे, मुख्यतः अपने मन्त्रियों की सलाह से, कुछ समय तक वह इस प्रश्न को टालता रहा और अन्त मे, उसने इस प्रस्ताव को पूर्णतया अस्वीकृत कर दिया। अनुकूल फल निकलने की आशा में बाबाजी कुछ समय तो रावल की सीमा पर ठहरा रहा परन्तु अब मजबूर होकर अगस्त मास मे उसे आगे बढ़ना पड़ा; नतीजा यह हुआ कि लड़ाई चालू हो गई। गायकवाड़ का सेनापति सीहोर की ओर आगे बढ़ा और उसके पिण्डारियों ने कुछ ग्रामवासियों को परेशान किया तथा उनके कुछ मवेशी उठा ले गए। घोघा परगने की धरती रावल और ब्रिटिश मे इस तरह बंटी हुई और मिलीजुली थी कि यदि एक को नुकसान पहुंचाया जाय तो दूसरे की हानि अपने-आप हो जाती थी इसलिए, कर्नल वॉकर ने सोचा कि बखतसिंह ने समझा था कि शायद बाबाजी उसे परेशान नहीं करेगा। ब्रिटिश रेजीडेण्ट लिखता है, "मैंने यह आवश्यक समझा है कि उसे अच्छी तरह समझा दूं कि वह इस विषय मे गाफिल न रहे; गायकवाड़ सरकार का वाजिब कर अदा न करने और भाग का विरोध करने के फलस्वरूप परगने मे कम्पनी सरकार के हिस्से का कोई नुकसान होगा तो रावल उसके लिए जवाबदार होगा। मेरे इस सन्देश का अभी कोई उत्तर तो नहीं मिला है परन्तु लगता है कि इसका कुछ अच्छा ही असर पड़ेगा क्योंकि मुझे पता चला है

1. आगे चलने वाले घोड़े कोतल कहलाते हैं।

1803 ई० के अक्तूबर मास के आरम्भ मे मल्हारराव होल्कर फिर गड़बड़ी करने लगा; वह गोहिलवाड़ की सीमा के पास साबर कूंडला मे बाबाजी *आपाजी के घुड़सवारो की टुकड़ी से भिड़ गया, जो उस समय काठियावाड़ मे* मुल्कगीरी करने निकला था। इस भिड़न्त में मल्हारराव के आदमियों की हार हो गई और उसका लश्कर लुट गया, तब वह भावनगर भाग गया और वहा उसने बखतसिंह जी गोहिल की शरण ग्रहण की। परन्तु, बखतसिंह का विचार किसी भी तरह उसका पक्ष लेने का नही हुआ इसलिए उसे नाव मे बैठकर द्वारका अथवा भुज चले जाने मात्र की सुविधा दे दी। मल्हारराव अधिक दूर नही जा पाया था कि दो अंग्रेजी जहाजो ने उसे देख लिया और उसके वाहन पर दो बार गोलियां चलाई इसलिए वह फिर किनारे पर लौट आया और भावनगर के तट पर उतरा

सांमले आपाज ऊठ बाद बाप बखतेश,
आदरो सवाव खागो नोतरी अमाप;
हाथ मुंछे नोखो आप चकावो अबाव लोहे,
नशीबे आपरे आयो ओहोणा नवाप। 2

खेतर चट्ट लीआ लारां, धुमत्धारां, तोपखानां,
मेलि पतिर कलारा पेसारा पसंद;
घघकारे पाटी अग चोधारां चोधारां धारां,
मामले अखा रा नंद वरासा समंद्र। 3

बाण कोकबाण उडे सरधार फलेबीयां,
माथे गोली कली सार, हो-होकार मार;
कही जोशे लखा जे वार धार नावे पार,
अहो मजादार करे पीमाणां अपार। 4

कटारी कड़वां हाथ, भुकमलां कलकला,
गुबासेन कलमलो होलाले मआप;
अआया मुगलां आयां गली के नवलां आयां,
नोतरां की भली शोभा पेरंभ का नाप। 5

तीरांशा कत सेत से साड़ गोसी अशी भात,
लागा खशी पशी भरे पतरतां लख;
भले असे देनदार पाणी सरां तणे माहे,
भरे लोधड़से धान अशी जुं मुगल। 6

सोदरां बंधारे लो से अपसे कतारां लारां,
पड़ां धाबे धान बीड़ां पावठां अपार;
कवि कहे धार बार पाय राजे जै-जंकार,
हाथ पगे कीधी जुबेश लाखां हजार। 7

जेठवा अमावुं भाला, हाला तणी जाशे जाऊं,
दबावुं बाघेला पाऊं तले कोक दन;
जीवतो जो जूने जाऊं आताकी न थाऊं जामे,
सांमले ओहोणी मावु अमाकी सोगन। 8

पता: मा-50, रतनर, भाग

परन्तु रावल ने फिर उसको शरण देना स्वीकार नहीं किया इसलिए परिणाम से भयभीत होकर अपने झण्डे, निशान, हाथी और घोड़े वहीं छोड़ कर वह अपने पुत्र सहित भागा और शत्रुंजय अथवा पालीताना की पवित्र पहाड़ियों में पहुंच-कर दम लिया। केवल, एक ही नौकर के साथ वे कुछ दिन वहां पर रहे और किसी तरह भूख प्यास निकालते रहे परन्तु आसपास के निवासियों ने उन्हें खोज कर उनके छिपने का स्थान बाबाजी को बता दिया। गायकवाड़ के सेनापति ने तीन कोतल[18] घोड़ो सहित एक सौ घुड़सवारों को उन्हें लाने के लिए भेजा। वे तीनों भूख प्यास से प्रायः अधमरे हो गए थे और निराश हो चुके थे इसलिए घुड़सवारों के पहुंचने पर उन्होंने कोई अड़चन नहीं की। जब इस प्रकार वे गायकवाड़ की छावनी के पास थोड़ी दूर तक आ पहुंचे तो उन्हें लाने के लिए बाबाजी के भेजे हुए म्याने (पालकियां, डोले) मिले। कड़ी के बुद्धिमान, महत्वाकांक्षी, हठी और अभागे जागीर-दार की, अन्त में, यह दशा गुजरात में हुई। अगले मई के महीने में उसके पुत्र खंडेराव के साथ उसको ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया गया और उनकी आज्ञा से उसे बम्बई के किले में भेज दिया गया जहां वह अपने अन्तिम समय तक कैद रहा।

1804 ई० के प्रारम्भ में ही बड़ोदा राज्य के मुल्कगीरी कर की वाजिब रकम का फैसला मंजूर कराने के लिए एक ब्रिटिश वकील को भावनगर के रावल के पास भेजा गया। गायकवाड़ सरकार ने यह कदम कर्नल वॉकर के अनुरोध पर उठाया था और प्रारम्भ में तो कुछ समय तक बखतसिंह ने भी इस बात को अनुकूलता से सुना। बाद में, मुख्यतः अपने मन्त्रियों की सलाह से, कुछ समय तक वह इस प्रश्न को टालता रहा और अन्त में, उसने इस प्रस्ताव को पूर्णतया अस्वीकृत कर दिया। अनुकूल फल निकलने की आशा में बाबाजी कुछ समय तो रावल की सीमा पर ठहरा रहा परन्तु अब मजबूर होकर अगस्त मास में उसे आगे बढ़ना पड़ा; नतीजा यह हुआ कि लड़ाई चालू हो गई। गायकवाड़ का सेनापति सीहोर की ओर आगे बढा और उसके पिण्डारियों ने कुछ ग्रामवासियों को परेशान किया तथा उनके कुछ मवेशी उठा ले गए। घोघा परगने की धरती रावल और ब्रिटिश में इस तरह बंटी हुई और मिलीजुली थी कि यदि एक को नुकसान पहुंचाया जाय तो दूसरे की हानि अपने-आप हो जाती थी इसलिए, कर्नल वॉकर ने सोचा कि बखतसिंह ने समझा था कि शायद बाबाजी उसे परेशान नहीं करेगा। ब्रिटिश रेजीडेण्ट लिखता है, "मैंने यह आवश्यक समझा है कि उसे अच्छी तरह समझा दूं कि वह इस विषय में गाफिल न रहे; गायकवाड़ सरकार का वाजिब कर अदा न करने और मांग का विरोध करने के फलस्वरूप परगने में कम्पनी सरकार के हिस्से का कोई नुकसान होगा तो रावल उसके लिए जवाबदार होगा। मेरे इस सन्देश का अभी कोई उत्तर तो नहीं मिला है परन्तु लगता है कि इसका कुछ अच्छा ही असर पड़ेगा क्योंकि मुझे पता चला है

18. आगे चलने वाले घोड़े कोतल कहलाते हैं।

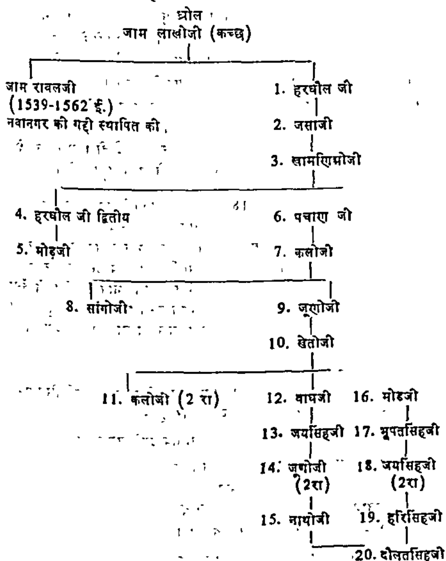
कि राजा अपने वर्तमान सलाहकारों से अप्रसन्न हो गया है और उसने उनको खोटी सलाह देने के अपराध में निकाल देने की धमकी भी दी है।"; अन्त में, अक्तूबर मास में गोहिल रावल ने मरहठों के पराक्रम और उससे भी अधिक ब्रिटिश की धमकी से डर कर चालू दरों के अनुसार तीन वर्ष का कर बाबाजी को देना कबूल कर लिया। गायकवाड की फौजों के सामने सीहोर का सफल संरक्षण करने के विषय में भाटों ने इस प्रकार वर्णन किया है—'बड़ोदा के बलवान् और यशस्वी आना बा के नगाड़े की चोट से समस्त पृथ्वी गूंज उठी। शत्रुओं से युद्ध करके उसने उनकी सीमाओं को भग्न कर दिया। कड़ी और बड़ोदा के स्वामियों में विरोध उत्पन्न हो गया। बाबा की सेना ने फहराते हुए झण्डे लेकर कड़ी पर चढ़ाई की, उस समय आकाश और वायुमण्डल रज से भर गया। बाबाजी कड़ी पर अंग्रेजी फौज भी चढ़ा लाया। असख्य योद्धाओं की गर्जना हुई। दो चार महीनों तक उन्होंने कड़ी पर गोलाबारी की तब अन्त में मल्हारराव कड़ी छोड़ कर भाग गया। बाबा ने दुर्जेय कड़ी पर अधिकार कर लिया। कोई भी उसका सामना नहीं कर सका। जब कड़ी जैसे किले को उसने फतह कर लिया तो सभी उसको सलाम करने आए।

"पाटड़ी के देसाई किसी के आगे नहीं झुकते थे इसलिए अब सेना उनकी तरफ बढ़ी। उनसे युद्ध करके उन्होंने लाखों रुपये वसूल किए; सड़क पर भी कोई वस्तु पड़ी हो तो किसी की उसे उठा लेने की हिम्मत नहीं होती थी, बाबा की ऐसी धाक जमी हुई थी। जैसी हालत उसने कड़ी की बनाई वैसी ही पाटड़ी की हुई; उसने मेवासियों के कितने ही किलों को बरबाद कर दिया; जटवाड़ और लताड़ पर भी कर कायम कर दिया। जहां भी यह सूबा जाता था वहां ऐसी दशा होती थी मानों लुटेरों की जमात आ गई हो। अपनी सेना तैयार करके वह झालावाड में युद्ध करने को आया। पहले उसने अठारह सौ गांवों के स्वामी ध्रांगध्रा[19] के राजा पर कर कायम किया। वढवाण में आराम से दण्ड वसूल किया; वांकानेर, लीमड़ी और सायला पर भी दण्ड किया; उसने जहां जो कुछ मुंह से कहा वही

19. ध्रांगध्रा
- जसवन्त सिंह (द्वितीय)
- रायसिंह जी
- अमरसिंह जी
- रणमलसिंह जी (1843-1869)
- मानसिंह जी (1869-1900)
- अजीतसिंह जी (1900-1911)
- घनश्यामसिंह जी (1911-?)

वसूल किया। सूबा ने समस्त झालावाड़ को परास्त करके दण्ड ग्रहण किया; मोरवी और मालिया के स्वामियों से दण्ड लिया और कभी न झुकने वाले जाम[20]

20. जामकी भायात ध्रोलवाला पर भी लश्कर गया था। ध्रोलवाला की वंशावली इस प्रकार है—



ध्रोल के अधिकार में 400 वर्गमील जमीन, 61 गांव, लगभग 22000 की आबादी और सवालाख रुपये की वार्षिक आमदनी थी। इसमें से गायकवाड़ और जूनागढ़ को कुल मिलाकर 10,231 रुपये कर के देते थे। ठाकुर साहब को 9 तोपों की सलामी थी। - (यह सन् 1927 की बात है)

को भी नहीं छोड़ा; चार हजार ठाकुरों से सूबा ने दण्ड लिया। हालार पर उसने अधिकार कर लिया और बन्दूकों से गोलियां बरसाकर जूनागढ़ के नवाब से नजराना वसूल किया। काठियों पर गोलाबारी करके उनके देश को निर्बल कर दिया। पोर के धनी, माना जेठवा और चूडासमा से भी उसने दण्ड वसूल किया; कोई भी उसका सामना नहीं कर सका। समस्त सोरठ से दण्ड लेकर वह सीहोर की ओर बढ़ा; वह इतनी बड़ी सेना लेकर चला कि पृथ्वी कांप उठी। सीहोर से पांच कोस पर आम्बला में डेरा जमाया। उसने कहा कि "आतो ने बहुत-सा देश जीत लिया है, उसी अनुपात से मुझे धन मिलना चाहिए।' तब दोनों ओर से गोलियां बरसने लगीं, तोपें और जमूरे गाज उठे; मरहठे थक गए, उनके शरीरों से खून के पनाले बह चले और वे हिम्मत हार गए। बहुत से (मारे गए, बहुतों के सिर चकनाचूर हो गए और बहुत से अन्धे हो गए। बखता के योद्धाओं ने बाबा की फौज को इस तरह लूटा मानो जंजीरें तुड़ा कर शेर टूट पड़े हों। सारा रणक्षेत्र रुण्ड-मुण्डों से भर गया और मरहठे जान बचाकर चारों दिशाओं में भागे।"

"बाबा पर यह आपत्ति संवत् 1860 (1804 ई०) में पड़ी। पांच मास तक उसको बचने का कोई उपाय नहीं सूझा; सूबा नष्ट भ्रष्ट हो गया था। कर उगाहना तो वह भूल ही गया, उसे तो किसी तरह बच कर निकल भागने का ही विचार आ रहा था। उसने अपने डेरे में बैठ कर मुंह छुपा लिया। जब उसने सब रकम की भरपाई कर दी तभी उसको लौटने की इजाजत मिल सकी। भाव के पौत्र ने जैसा कहा वैसा ही उसे कबूल करना पड़ा। वह दण्ड वसूल करने आया था परन्तु उसको तो लेने के देने पड़ गए क्योंकि वह केवल ढाई लाख ले जा रहा था जिसके लिए उसने पांच लाख खो दिए थे।"[21]

---

21. इस प्रसंग का एक रसमय गीत फार्बस गुजराती-सभा के हस्तलिखित संग्रह में सं० 34 छ पर सुरक्षित है, जो इस प्रकार है—

—कड़ी ग्राम पर बाबाजी का लश्कर आया तब उससे लड़ाई का गीत—

"गाजे साबधी प्रथमी चला बाजे ओस वागला,
बलाक्रमो बराजे बडोदे मनां वाह;
मसाजे दोलीयां तणी पड़ी भाजे बधी मीण,
गाढी सभ कड़ी रांजे मलारा अथाह।। 1.

पड़ी आटी कड़ो साथे पावती बडोदापति,
फोजां बाबा तणी चडी मीशाणा भटक;
जमी हूऊ पड़ी देह गाढी असमान जातो,
कड़ी माथे आयो बाबो विलाती कटक।। 2

पता : मा-50, मारनगर, मानर

जब कर्नल वॉकर काठियावाड़ में आया तब तक भावनगर के रावल ने महुआ और तलाजा के बन्दरगाहों और पूर्वलिखित परगनों सहित लगभग सम्पूर्ण वालाक तथा साबर कूण्डला जिले व अन्य छोटे-मोटे स्थानों पर अच्छी तरह कब्जा

हलके प्रतागां सेनशूर बीरां बाजे हाक,
मांस दोनु चार लागा तोपु तणा मार;
न टके मलारा पाग थ जागा कागां मोर मोर,
मेली कड़ी पड़ी भागा ऊपड़े मलार। 3

जितीयो प्रनम्र कड़ी चड़ी खंभ बावे जुह,
साम कुं म लड़ो शके करे के सलाम;
कड़ी जशा कोट बाबे चड़ी चोट हाथ कीधा,
कीधा पाटड़ी केसरे फोजां का मकाम। 4

प्रनमी देशाई हुता पाटडी के पीठ प्रादु,
लड़ी लड़ी जमे ताकी लाखु मोडे लीध;
पडी को उठावे नाही प्रसी साख प्रावी पड़ी,
कड़ी रीत जैसी ऐसी पाटडीए कीध। 5

कोट मेवासी का पाडे थं खंडे उजाडे कीधा,
लीधी जतवाड़ दंडे साबधी लताड़;
धाड धाड थी प्रो शूबो गढे कोटे पड़ी धाह,
पढे याकु पढे सेन प्रायो झालावाड। 6

ध्रांगधरा दंडे पेलां प्रडारसो तणा धणी,
नशां बडवाण दंडे, दंडे वांकानेर;
लींबड़ी थायला दंडे मोय भांगी जमे लीध,
झालावाड़ दंडी शूबे कीधी जेर जेर। 7

दंडे मोरवी को साम, मालीया सहित दंडे,
प्रनमी जाम को ठाम दडे सो प्रबाब;
हजारा चोचारा दंडे थालीयो हालार होले,
नशां पार गोले दंडे जूनां को नबाब। 8

काठीग्रों का देश दंडे, खाधा पेस पेस कीधा,
प्रथम कुरेस दीधा दंडे सारा पोर;
सांमा, हाला, झाला, माणा, जेठवा न मंडी शक्या,
साबधी सोरठ दंडी भोंभाणा शीप्रोर। 9

जमा लिया था।[22] प्रजा में अशान्ति होने के कारण उसकी मालगुजारी वसूल होना कठिन हो गया था और ऐसा अनुमान किया जाता था कि उस पर बहुत बड़ा कर्जा हो गया था क्योंकि काठियों को दबाए रखने के लिए उसे अपनी सेना बढ़ाने की आवश्यकता हर समय महसूस होती थी। उसकी सेना में पांच सौ अरब, दो हजार पाच सौ सिंधी पैदल तथा लगभग पाच सौ नियमित घुड़सवार थे। इसके अतिरिक्त वह गोहिल शाखा के अपने भायातो[23] के गावों में से भी तीन हजार राजपूत अश्वा-

हलबले पृथ्वी पीठ अशा, सेन आया हली,
पांच कोशे पालो कीधा आवले पडाव;
देश घणा खाये आतो तेना जुया मांगू दाम,
आय महुवा तेण तोपों का अड़ाव। 10
हडेडे अपार नाला, जंजाल्या कोडे एम,
धडेडे बन्दूकां असो जशी अंद्रधार;
बडेडे कडेडे तां तो सांवधा मरेठा बेठा,
मावता दडेडे पुर रगतां अपार। 11
कटकां का गांठ छूटा, के कष्या आवट कूटा,
के मरेठा सीस फूटा अगुटा करूर;
बखत का जुटा जोध छूटा सेन बाबा वाला,
जाण के सकले सिंह बछूटा जरूर। 12
दडे मरेठां का तुंड धडेडे करी दीधा,
जुजुवा भगाण पड़ा, दो दो वाटे जाय;
नेक सेन गाठा अड़े के क ग्याव मोहा नाठा,
माठा दीह बाबा वाला हुआ साठा मांय। 13
पांच मास जाश नायो सूबो थयो हुलाश पूरो,
जामे तणी आशा छडे जावा दे तो जाय;
पाछो जावे केणी पाय लोंठा रो सकड़ों पेठो,
मोंशो वास करे बेठो बाबो डेरा मांय। 14
आवा आसी दोज तारें फारकती दीधी जारें,
भावा हरा तणी जीमें दीधी सीधी मास;
रेश देवा माम्यो तां तो शामो पोते पाम्यो रेश,
लाख अढी काम्यो तां तो वाम्यो पांच लाख। 15

22. महुवा और तलाजा के लिए देखिए–बम्बई गजेटियर, भा० 8, पृ० 536, 660।
23. भायात, भायाद या भ्यात का अर्थ है भाई-बन्धुओं का संघ। देखिए–टॉडकृत राजस्थान का इतिहास- 1920 ई० का संस्करण; भा० 1, पृ. 154, 202; भा० 2, पृ० 961

रोही एकत्रित कर सकता था तथा सैनिक अभियानो मे तो नही परन्तु, लूटपाट के काम मे मदद देने वाले दो हजार बुनकरों को जमा करने की स्थिति में भी था। पिछने दिनो, उसने धोलका के परमार कसबाती भावा मियां के एक सौ घुड़सवार रखे थे। इसके बदले मे उसन उन्हीं के पूर्वजों के अधिकार में राणपुर परगने का जो बोटाद नामक गाव था वह उनको दे दिया। यह गांव काठियो के मुख्य स्थान जसदन के सामने ही सीमा पर स्थित था। घोघा[24] शहर मुगलों का बन्दरगाह था इसलिए वह खम्भात के सूबेदार के अधिकार मे था। इसको 'बारह' कहते थे जो प्राय: 'बन्दरगाह' का ही पर्यायवाची शब्द है परन्तु उसमें कुछ सीमावर्ती भू-भाग भी सम्मिलित माना जाता था। जब गायकवाड़ और पेशवा में गुजरात का बटवारा हुआ तो 'घोघा बारह' तो पेशवा के हिस्से मे आया और बाकी बचे हुए गोहिलवाड़ की मुल्कगीरी वसूल करने का हक गायकवाड़ को मिला। अन्ततोगत्वा यह सब ब्रिटिश सरकार के हाथ में आ गया।

गोहिलवंशीय राजपूतों के अधिकार मे कुल मिलाकर आठ सौ गाव थे जिनमे से छः सौ पचास रावल बख्तसिंह के अधीन थे। इन ठाकुरों ने प्राय: दुर्गम्य स्थानो मे अपने 'रहठाण'[25] कायम किये थे; कुछ लोगो ने पत्थरो से निर्मित बड़े-बड़े किले बनवा लिए थे, परन्तु उन पर उतनी तोपें नहीं रख पाये थे जितनी उनकी सुरक्षा के लिए आवश्यक थी। रक्षा के दूसरे साधन भी पर्याप्त नही थे। इस वंश की छोटी शाखाओं में मुख्य वला, लाठी और पालीताना[26] की हैं। वला की शाखा ने

---

24. घोघा, अहमदाबाद ज़िले मे है; देखिए 'बम्बई गजेटियर' भा० 4; पृ० 339
25. राज्य-स्थान।
26. पालीताना

सेजकजी

राणोजी — 1. शाहजी (पालीताना) — सारंगजी (लाठी)

2. सरजणजी, 3. अर्जुन, 4. नोघणजी, 5. भारोजी,
6. बनोजी, 7. शिवोजी, 8. हंदोजी, 9. खांदोजी, 10. नोघणजी (द्वितीय)
11. अर्जुनजी (2रा), 12 खांदोजी (2रा), 13. शिवोजी (2रा),
14. सुरतानजी, 15. खांदोजी (3रा), 16. पृथ्वीराज जी, →

शीलादित्य के प्राचीन वला में अपनी राजधानी कायम की। इसका संस्थापक भावनगर बसाने वाले रावल भावसिंह का द्वितीय पुत्र वीसा भाई था। उसके पौत्र मेघराज वा मघाभाई के अधिकार में अभी बत्तीस ग्राम हैं। पालीताना की शाखा शाहजी से चालू हुई जो सेजकजी का छोटा कुमर था। उसे गारियाधार का गरास प्राप्त हुआ था। उसके अधिकार में बयालीस गांव हैं परन्तु उनमें से आधे उजाड़ पड़े हैं। कुछ वर्षों पहले पालीताना के ऊनड़जी (या ऊमरजी) को गायकवाड़ सरकार का आश्रय मांगने की आवश्यकता आ पड़ी, उस समय उसका देश बिलकुल परवशता की दशा में आ गया था। उसके कुछ गांव तो गिरवी पड़े थे और बाकी उन शत्रुओं ने ले लिये थे जिनसे उसकी लड़ाई हो गई थी। उसकी मूल राजधानी गारियाधार मे जब मरहठों का थाना आ गया तब उस तालुके मे कुछ शान्ति हुई। प्रथम गोहिल राजा का एक छोटा राजकुमार सारंग जी था, उसी के वंश मे लाठी का सूरसिंह हुआ। उसके अधिकार मे उसके मूल गरास के पाच गांव रहे। दामाजी गायकवाड़ के समय में वहा का ठाकुर लाखोजी था; उसने अपनी पुत्री का विवाह दामाजी से कर दिया था इसीलिए इस शाखा का पूरा विनाश होते-होते बच गया। इस सम्बन्ध के कारण लाठी के गोहिलों को बड़ोदा सरकार की

---

17. नोघणजी (3रा), 18. सुरतानजी (2रा),
19. ऊनड़जी (1766–1820 ई.)
20. खांदोजी (4था) (1820–1840 ई.)
21. नोघणजी (4था) (1840–1860 ई.)
22. प्रतापसिंह जी (1860–1860 ई.)
23. सूरसिंह जी (1860–1880 ई.)
24. मानसिंह जी — सामतसिंह जी

पालीताना के अधिकार मे 305 वर्गमील भूमि, 100 ग्राम, पचास हजार की आबादी और लगभग पांच लाख रुपयों की वार्षिक आय थी। इसमें से गायकवाड़ और जूनागढ़ को रु. 10,364 देते थे। ठाकुर साहब को 9 तोपों की सलामी थी। (सन् 1927 ई. मे यह हालत थी; स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर यह रियासत पहले सौराष्ट्र, फिर गुजरात मे विलीन हो गई है)

→

हिमायत और मदद प्राप्त हुई। इनको मुल्कगीरी की रकम माफ कर दी गई परन्तु गायकवाड़ का प्रत्यक्ष सम्मान करने के लिए ये प्रतिवर्ष एक घोड़ा भेंट करते थे। गोहिल पुत्री के दहेज मे (खानगी में) छबड़ा परगना दिया गया था जो बाद में मरहठा वर के नाम पर दाम-नगर प्रसिद्ध हुआ।

वला

19. भावसिंह जी, भावनगर (1703–1764 ई)

20. अखैराज (दूसरा) भावनगर

1. वीसाजी (वला) (1764–1774 ई.)
2. नथुभाई (1774–1798 ई)
3. मेघाभाई[x] (1798–1814 ई.)
4. हरभमजी (1814–1838 ई.)
5. दौलतसिंह जी (1838–1840 ई.)
6. मेघाभाई (1840–1853 ई.)
7. पृथिराजजी (1853–1860 ई.)
8. मेघराजजी (1860–1875 ई.)
9. बखतसिंह जी 1875 ई. में गद्दी पर बैठे

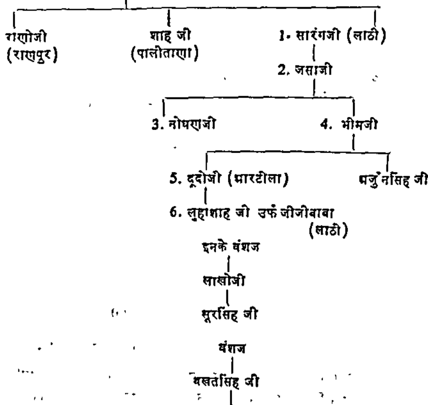
× इस मेघाभाई के दो भाई और थे—एक पाताभाई जिसको दरेड़ आदि तीन गांव मिले थे और दूसरे अदाभाई को कानपुर, रगपुर और पीपल ये तीन गांव मिले। अदाभाई के दीपसिंह जी और फिर गुमानसिंह जी हुए। गुमानसिंह जी पुत्र मानसिंह जी (1927 ई. मे) कानपुर के ठाकुर थे।

वला के अधिकार में 140 वर्ग मील भूमि, 41 ग्राम और लगभग 70 हजार की आबादी तथा एक लाख पैसठ हजार की वार्षिक आय थी। इसमें से गायकवाड़ और जूनागढ को 9,202 रु. वार्षिक देते थे। (सन् 1927 ई.)

अब तक जिन तालुकों के विषय में लिखा गया है उनके अतिरिक्त भी बहुत से अन्य राजपूत तालुके काठियावाड में कर्नल वॉकर के प्रबन्ध में आ गये उनमें मुख्य रूप से कच्छ के जाड़ेजा[27] राजपूतों की शाखा है। परन्तु, उनके विषय में हमें

1—लाठी

सेजक जी (सेजकपुर) 1260–1290 ई.



सूरसिंह जी (1927 ई. में गद्दी पर)

लाठी के अधीन 48 वर्ग मील जमीन, 8 गांव, सात हजार की बस्ती और सत्तर हजार की आमदनी थी जिसमें से गायकवाड़ और जूनागढ़ को 2,007रु. वार्षिक देते थे।

27. जाड़ेजा राजपूतों में कच्छ के 'महाराव' मुख्य हैं। उनकी भायात भी बहुत बड़ी है। काठियावाड़ में हालार और मच्छुकांठा जाड़ेजों का ही था। काठियावाड़ में जाड़ेजों के राज्य और ठिकाने इस प्रकार थे—
1. नवानगर (जामनगर), 2. मोरबी, 3. ध्रोल, 4. राजकोट, 5. गोंडल,

मूल-साहित्य उपलब्ध नहीं हुआ है और हमारे लेख से उनका कोई सम्बन्ध भी नहीं है इसलिए हमने उनके विषय में कुछ नही लिखा है।

●●

6. वीरपुर, 7. कोटड़ा (सांगाणी); 8. मालिया; 9. मेंगणी, 10. गवरीदड, 11. पाल, 12. धरडा, 13. जालिया (देवाणी), 14. भाडवा, 15. राजपुरा, 16. कोठारिया, 17. शापर, 18. लोधीका, 19. वड़ाली 20. लोरसरा, 21. सीसांग चांडली, 22. थोरवाव; 23. काकसीयाली, 24. मोवा, 25. कोटड़ा (नायाणी), 26. द्राफा, 27. सातोदड़ बावड़ी। और 28 मूली लाडेरी।

इनके सिवाय पालनपुर एजेन्सी का सोतलपुर भी आड़ेजों का ही था। इन लोगो के अधिकार में 440 वर्गमील जमीन, 33 ग्राम, अठारह हजार मनुष्यों की बस्ती और पैंतीस हजार की वार्षिक आमदनी थी।

प्रकरण आठवां

बहुचरा जी ; चुंवाल[1]

आरासुरी (अम्बा) माता की अपेक्षा श्री बहुचरा देवी बहुत आधुनिक है, परन्तु फिर भी उसकी महिमा मे कोई कमी नही है; जैसे दांता के परमारो का अम्बा माता से अविच्छेद्य सम्बन्ध है उसी प्रकार चुवाल राजपूतो और बहुचरा जी का सम्बन्ध भी शाश्वत है। एक जनश्रुति है कि कुछ चारण स्त्रियां सलखनपुर[2] के पास किसी गांव में जा रही थी; तब कुछ कोलियो ने हमला करके उनको लूट

---

1 चुवालों को जहाभ्रिया भी कहते हैं। ये चुवाल इसलिए कहलाते है कि इनका सम्बन्ध चौवालीस (44) गांवो वाले भू-खण्ड से है जो अहमदाबाद जिले मे वीरमगांव उपजिले के उत्तर-पूर्व मे स्थित है। ये लोग प्रायः अहमदाबाद और काठियावाड जिलो मे पाये जाते है। ये जंगली और घूमती-फिरती जाति के लोग हैं जो किसी समय उत्तर गुजरात के लिए भय का कारण बने हुये थे। चुवालिया ठाकुर या जमीदार कोलियो की मकवाणा शाखा से सम्बद्ध हैं और अपने को झाला राजपूत बतलाते हैं; ऊँचे कुलों में विवाह सम्बन्धों के कारण ये प्रायः तालवदो की तरह सुन्दर और उज्ज्वल वर्ण के होते हैं। परन्तु, अधिकतर चुवालो का शरीर-गठन और उनके लक्षण भीलों जैसे होते हैं जिनसे सामाजिक स्थिति और सूझबूझ मे ये कुछ ही ऊँचे है।........पहले चुवाल कोलियो की एक सुसंगठित लुटारू-टोली थी। अर्द्ध-राजपूत नायकों अथवा 'ठाकरड़ो' के नेतृत्व में ये लोग गांवों में रहते थे, जिनके चारों ओर कांटों की बाड लगी रहती थी और जिले मे सभी जगह से अपनी लाग-बाग वसूल करते रहते थे।' यदि कहीं पर इनकारी हो जाती तो उस गांव पर रात मे धावा कर देते और लूट के माल को नियमानुसार आपस में' बांट लेते। मरहठो के वशीभूत ये कभी नहीं रहे इसलिए ब्रिटिश शासन के प्रारम्भकाल अर्थात् 1819 और 1825 ई० में इन्होंने कई बार विद्रोह किया। जब इन्होंने दुबारा सिर उठाया तो इनके घेरे और बाड़े हटा दिये गए और संगठित दस्युओ के रूप मे इनकी शक्ति नष्ट कर दी गई।
(देखिए—'चुंवालिया'–बम्बई गजेटियर, जिल्द 9, भा. 1. पृ. 239)

2 'सलखनपुर साखी मा बहुचरी'—वल्लभ भट्ट।

लिया। उन्हीं मे से एक स्त्री ने, जिसका नाम बहुचरा था, एक बालक भृत्य मे तलवार छीनकर अपने दोनों स्तन काट डाले और वह तुरन्त ही मर गई। बूत और बलाल नाम की उसकी बहनो ने भी इसी प्रकार अपघात कर लिया और बहुचरा की भांति देवी संज्ञा को प्राप्त हुईं। श्री बहुचरा जी की स्थापना चुवाल मे हुई, बूत माता की प्रतिष्ठा कोट के निकट अरणेज (अरजण) मे तथा बलाल देवी की सीहोर[3] से पन्द्रह मील की दूरी पर बाकल कू मे हुई।

जिस स्थान पर बहुचराजी का निधन हुआ वहां शंकु के आकार की एक पत्थर की 'खांभी' (स्तम्भ) खड़ी कर दी गई है। बाद मे वहां पर एक छोटा-सा 'देवरा' (देवालय) बना दिया गया जो अब तक मौजूद है। आगे चलकर एक बड़ा मन्दिर बनाया गया जो पहले वाले के सामने ही इतना नजदीक है कि उसका द्वार ही प्रायः बन्द हो गया है। पहला देवालय तो सलख राजा का बनवाया हुआ बताया जाता है, जो प्रत्यक्ष ही कोई कल्पित नाम मालूम होता है और दूसरा किसी मरहठा फड़नवीस[4] द्वारा निर्मापित है। इन देवालयों के पास ही, परन्तु दूसरी तरफ, एक और बड़ा मन्दिर है, जिसको 1783 ई० मे दामाजी के छोटे पुत्र और फतहसिंह

---

3. बहुचरा माता भी अम्बा भवानी के समान उत्तर-कालीन हिन्दू देवता है जिसका सर्वधर्म-समन्वयी रूप मे एक चारण स्त्री मे आविर्भाव हुआ, जिसने त्रागा या अपघात कर लिया था। चारण महिलाओं को बड़े सम्मान के साथ 'माता' कहकर सम्बोधित किया जाता है। 'त्रागा' करने वाली चारण महिला का प्रेत बहुत भयावह होता है। 'काठियावाड की विगत मुर्दुमशुमारी (1921) के अनुसार कछेला चारणो मे, जो पिछले पन्द्रह वर्षों मे पचमहाल जिले के पावागढ़ के पास हालोल में बस गये हैं, नौ लाख माताएँ अर्थात् कुमारिकाएँ थी। इसका कारण यह था कि पावागढ़ के शिखर पर निवास करने वाली प्रसिद्ध कालिका माता नेसड़ा जाति की चारण थी जो काठियावाड़ से हालोल आकर बस गई थी। ('त्रागा' के लिए देखिए—'रासमाला' हि. अ. 9 (उ); 185–7 और यूल का हाब्सन जाब्सन, दि. संस्करण, पृ. 937)

4. फडनीस—पु. 1 एक सरकारी अधिकारी; वरिष्ठ हिशेबनीस; मुख्य दफ्तरदार। पूर्वीच्या राजवटींत दफ्तरें द. ठेवणें; सर्व खात्यांचे हिशेब तपासणें, देणग्या देणें, हुकूम सोडणें इ. कामें यास करावी लागत। हल्ली 'फायनॅन्स मेंबर' ला म्हणतात। -याला:प्रांतांतील सर्व खात्यांचे हिशेब तपासून जमाखर्चाचा तालेबंद तयार करणें, जमा, आणि खर्चयांचा मेल घालणें ही कामे असतात। 2 मामलेदार कचेरीतील वरिष्ठ कारकून; हेड कारकून फडनिशी-सी-स्त्री 1 फडनिसाचें काम। 2 फडनिसाचा अधिकार, हुद्दा, दर्जा।
—महाराष्ट्र शब्दकोश, पृ. 2156।

के छोटे भाई मानाजीराव गायकवाड़ ने बनवाया था। इस इमारत के सामने एक अग्निकुण्ड या हवनकुण्ड बना हुआ है जिसके आगे एक 'चाचर' है जिसमे पशुबलि दी जाती है। देवालय के चारो ओर यात्रियों के ठहरने के लिए घर बने हुए हैं और साथ ही कुछ हारबन्ध (पंक्तिबद्ध) छोटी दूकानें भी हैं जिनमे पूजा-सामग्री व परचूरण सामान मिलता है। एक कोने पर दो-मंजिली अष्टकोण 'दीपमाला' है जिसके ऊपर खुली हुई गुमटी बनी हुई है। दोनो ही ठोस खण्डो मे दीपक रखने के लिए आले बने हुए हैं जो त्यौहार के दिन दीपों से जगमगा उठते हैं। देवालय और उससे सम्बद्ध छोटी इमारतों के चारो ओर एक गोलाकार परकोटा है जिसमे जगह-जगह बन्दूकें चलाने के मोरी रखे गये है और चारो कोनों पर सुरक्षार्थ चार गोल बुर्ज बनी हुई हैं। कोट के दरवाजो की संख्या तीन है। मुख्य द्वार एक आयताकार बुर्ज मे आ गया है जिसके ऊपर के हिस्से मे एक कक्ष बना हुआ है जहाँ नौबत और अन्य वादित्र रखे रहते है। बुर्ज के ऊपर की छत से चारो ओर एक सपाट खुला हुआ प्रदेश दृष्टिगत होता है जिसमे इतस्ततः पेड़ो के झुरमुट मे आये हुए गाव जड़े हुए से प्रतीत होते है। इनमे चन्दूर, पचासर और वनोद, जो अणहिलवाड़ा के प्रथम राजा की कथा का स्मरण कराते हैं; बाघेल, जो इस वंश की अन्तिम शाखा की क्रीडा-स्थली रहा है और कर्णसागर, जो उनके वैभव के मध्याह्न-काल का राजखण्डहर है, यहा से ठीक-ठीक तरह से लक्ष्य मे आ जाते हैं। सलखनपुर तो समीप ही है और इससे भी नजदीक एक ढाणी है जो माता के नाम पर 'बेचर' कहलाती है। कोट के चारों ओर बबूल और अन्य थोड़े पत्तों वाले पेडों की बाड़-सी लगी हुई है। परकोटे के बाहर ही एक छोटा वर्गाकार तालाब है जिसको "मानसरोवर" कहते है। इसके पानी से कई रोगों की चिकित्सा की चमत्कारपूर्ण कथाएँ प्रसिद्ध हैं। पास ही मे, कुछ और बड़े परन्तु अल्प-प्रसिद्ध तालाब हैं।

अहमदाबाद मे वल्लभ भट्ट नामक मेवाड़ा ब्राह्मण हुआ है। उसने 1744 ई. मे बहुचराजी के बहुत-से गरबा-गीतों की रचना की जिनका संकलित रूप 'बहुचराजी पुराण' बन जाता है। कहते हैं कि मुख्यतः इसी के कारण बहुचराजी की महिमा बहुत प्रसिद्धि मे आई। यह बहुचराजी का दुर्गा रूप मे गुणगान करता है, परन्तु दुर्गा का यह नाम अन्यत्र प्राप्त नही है। गुजरात मे कई जगह श्री बहुचराजी के मन्दिर बने हुये हैं, परन्तु किसी मे भी मूर्ति स्थापित नही है। पूजा के लिए एक चौकोर पटड़ी,[5] जिस पर चमकीले धातु के टुकड़े चिपके रहते हैं, उगते हुए सूर्य की ओर देखते हुए एक ताक मे रखी रहती है। नवरात्र अथवा ऐसे ही अन्य त्योहारो पर कोली व अन्य लोग अपने बच्चों व सगे-सम्बन्धियों के मृत्यु-भय-निवारण के लिए श्री बहुचराजी के आगे होम-हवनादि की सामान्य पूजा सामग्री के अतिरिक्त बकरे या पाड़े की पशु बलि देते हैं। यह बलि बड़े देवालय के सामने खुले स्थान

5. इस पटड़ी को गुजरात में 'आंगी' कहते हैं।

मे बने हुए 'चाचर' पर दी जाती है। दूसरे अवसरों पर राजपूत, कोली एवं अन्य जाति के लोग दारू और मास की बलि खुले-आम श्री बहुचराजी को चढाते हैं परन्तु ब्राह्मण और बनिए, जो अपने को शक्ति का उपासक और वाममार्गी कहते है, ऐसी बलि रात के समय छिपे रूप मे अर्पित करते है। माता को अर्पण करने के उपरान्त ही इस नैवेद्य को आराधक ग्रहण करते हैं। ब्राह्मण और बनिए माता के पूजास्थान वाले आले मे जीवित कूकड़ो या मुर्गों को भी चढाते है। इनकी सख्या इतनी बढ गई है कि ये मन्दिर के चारों ओर घूमते ही रहते हैं। इन कूकडों में से एक की कहानी इस प्रकार है कि कोई हिम्मतवाला मुसलमान उसको पकाकर खा गया परन्तु वह उसका पेट फाड़ कर जीवित बाहर निकल आया।

सोरठिया दूहा

"तलियां तेला ताय, कूकड़िया भोजन किया,
म्लेच्छाना घट माय, तें बोलाव्या बेचरा।"

इसी के आधार पर गुजरात मे एक कहावत प्रचलित हो गई हैं; जब कोई आदमी किसी का वाजिब देना नही देता है तो लेन-दार कहता है 'यह धन तेरे लिए बहुचराजी का कूकडा होकर रहेगा।" लंगड़े-लूले, अंधे और दूसरे अपग तथा सन्तान एव अन्य अभिलाषाओं वाले लोग बहुचराजी की मनौती मानते हैं; वे लोग वहा जाकर मन्दिर के बाहर मानसरोवर के किनारे उपवास करते हुए तब तक बैठे रहते है जब तक कि उनकी अभिलाषा के विषय में माता का वरदान प्राप्त नही हो जाता। इसके बाद वे उठकर अपने घर चले जाते हैं। जिनको बहुचराजी की कृपा से पुत्र प्राप्त होता है वे उसका नाम 'बेचर' रखते है। जैन-धर्म मानने वाले भी बहुचराजी को मानते हैं।

इस माता के मुख्य पुजारी ब्राह्मण होते हैं जो सेवापूजा करते हैं, परन्तु कुछ अन्य सेवक व गायक आदि मुसलमान भी होते हैं। देवालय मे जो भेंट, चढावा आदि आता है वह सब कमालिया लोग लेते हैं जिनमे स्त्री, पुरुष, बूढ़े बच्चे आदि सब मिला कर कोई एक सौ प्राणी हैं; ये लोग अपने को माता से उत्पन्न हुआ मानते हैं। यद्यपि ये सब बहुचरा माता को पूजते हैं और उनका त्रिशूल लिए घूमते हैं, परन्तु मुसलमान धर्म का पालन करते हैं। इसका कारण यह बताते हैं कि अलाउद्दीन ने उनको जबरदस्ती मुसलमान बना दिया था। केवल हल्की-फुल्की और कम कीमती भेंट ही कमालियो को मिलती है और जो चीजें भारी तथा कीमती होती हैं वे मन्दिर के भोगराग निमित्त गायकवाड़ के अधिकारियो के अधिकार में रहती हैं। इस पर भी कमालियों को जो कुछ हिस्सा मिलता है, उस पर पास ही के कालड़ी गाव के राजपूत जमींदार भी अपना दावा जाहिर करते हैं। कुछ वर्षों पूर्व, कोई चालीस राजपूत तीनो दरवाजो से बहुचराजी के मन्दिर में घुस आए और

उन्होने वहां जितने कमालिया मिले उनको मौत के घाट उतार दिया । हत्यारो के उसी समय भाग जाने के बाद दस मृतकों को बहुचराजी के मन्दिर के बाहर ही दफना दिया गया । कमालियो से भी उतरती जाति के कुछ पावैया[6] भी श्री बहुचराजी की सेवा मे रहते हैं । ये लोग हिजड़े होते हैं और इनके विषय में जो बात कही जाती है वह यदि सच है तो, ये अप्राकृतिक व्यभिचार कराते हैं । ये लोग अन्य वस्त्र तो स्त्रियो जैसे पहनते हैं परन्तु सिर पर पुरुषो की सी पगड़ी बांधते हैं । इनकी सख्या लगभग चार सौ है जिनमे से आधे तो हलवद के पास टीकर ग्राम मे रहते हैं और बाकी लोग गावो मे घूमते रहते हैं तथा अन्य हिन्दू या मुसलमान भिखारियो की तरह लोगो को भय दिखाकर या गिडगिडा कर भीख मांगते है । प्रायः कहा जाता है कि कुछ पावैयों ने बहुत धन इकट्ठा कर लिया है ।

कडी प्रान्त सर्व सग्रह मे बहुचराजी विषयक निम्न सूचना पृष्ठ 456 एवं 457 मे और अकित है ।

बहुचराजी की यात्रा हिन्दू धर्म की महायात्राओं मे गिनी जाती है । गायकवाड सरकार ने यात्रियो की सुविधा के लिये रेल पहुंचा दी है और बहुचराजी स्थान का एक स्टेशन भी है । दामाजी गायकवाड के छोटे कुमार मानाजी राव का कोई रोग माता की मनौती मे मिट गया था, इसलिये उन्होंने नया देवालय तथा कोट के बाहर मानसरोवर बनवाया मन्दिर के पूजा, नैवेद्य एवं अन्य खर्चों के लिए बेचर, संखलपुर, और डोडीवाडा नामक तीन गांव धर्मदाय के रूप मे अर्पण किये । देवालय के पास ही कोट मे लगे हुए मकान की दीवार पर "श्रीमन्त मानाजी राव ने

---

6. पावैया हिजडों के विषय मे देखिए–बबई गजेटियर, जि० 7, पृ० 613 रपोट मरदुमशुमारी राज मारवाड़–तीसरा हिस्सा पेज 385

फातड़ा और पवैया

मारवाड की कौमों का हाल–यह जो मशहूर है कि गुजरात मे हिजड़े को पवैया कहते है सो गलत है क्योंकि पवैये हिजडे नहीं होते उनके साथ रहकर नाचते गाते हैं और उनकी साग बाग उगाहते हैं, वे हिन्दू भी होते हैं, मुसलमान भी और घरबारी भी । पवैये पोशाक तो मरदो की सी पहनते है मगर पगड़ी नहीं बांधते उनकी बोलचाल सब हिजडो की सी होती है । कुछ पवैये पीरानपट्ट में बेचरा माता जी के पुजारी भी हैं वे हिजडो का साथ नही करते । हिजडों को गुजरात मे फातडा कहते हैं जो नामर्द आदमी उनके हाथ लगता है पहिले उसको भी कम यानी खस्सी करते हैं और फिर अपने मे मिलाते हैं । मारवाड मे भी जो कोई शख्स अपने पुरुषाकार को काट डालता है उसको भीकमचंदी करना कहते हैं । नाजिर गुजरात मे सिवाय जामनगर के और किसी रियासत मे नहीं सुने जाते ।

यह देवालय संवत् 1839 के वैशाख वदि 10 रविवार को बधाया" यह लेख लगा हुआ है। इस देवालय में पत्थर की उत्तम कारीगरी का काम है और बनावट प्राचीन ढग की है। इसकी लम्बाई 50 फुट और चौड़ाई 30 फुट है तथा इस पर दो गुमटियां और शिखर है। दो सभामडप हैं जिनमें से बाहर वाले की अपेक्षा अन्दर वाला बड़ा है। एक ऊंचे चबूतरे पर बने हुए सुन्दर आले में माताजी का बालयंत्र रखा हुआ है जो पूजा की मुख्य वस्तु है। आले के अग्रभाग मे माता जी की चित्रयुक्त आंगी जड़ी हुई है जिससे भीतर का यन्त्र ढंक गया है। इस आले मे रखने के लिये माताजी की चित्रमयी आंगी ही लोग चढ़ावे मे चढाते हैं। रात्रि को शृगार के समय सोने और चादी की आगिया सजाई जाती हैं। आंगी पर कुक्कुटवाहिनी माता की आकृति बनाई जाती है। पश्चिमी दरवाजे पर मानसरोवर नामक कुड है। इस सरोवर के विषय मे एक दन्तकथा प्रचलित है। पहले वहा एक छोटी-सी तलाई थी। सोलकी वश की दो कुंवारियों मे से एक की माता ने अपनी कुंवरी को कुंवर बताकर किसी राजकुमारी से ब्याह दिया। जब कुंवरी बड़ी हुई और उसे भेद ज्ञात हुआ तो उसने मरने का निश्चय किया। इतने ही मे इस तलाई के दूसरे किनारे पर उसने पानी मे स्नान करने के बाद एक कुत्ती को कुत्ता बन जाते देखा। बाद मे एक घोडी भी घोड़ा बन गई। यह देख कर वह स्वयं इसमे कूद पड़ी और वह भी पुरुष बन गई। इसके बाद उसने इस कुण्ड को बड़ा बनवा दिया। आगे चलकर मानाजी राव गायकवाड़ ने इसको पक्का और अधिक बड़ा बनवाया।

इस स्थान पर प्रत्येक पूर्णिमा को मेला लगता है। सबसे बड़ा मेला चैत्र की पूर्णिमा को लगता है। उस समय गुजरात और काठियावाड़ के दूर-दूर के गावों से सभी जातियो के श्रद्धालु यात्री यहां आते हैं। अब कुछ नयी-नयी धर्मशालाए भी बन गई हैं। माताजी के आगे एक बगीचा लगा हुआ है जिसके सुन्दर पुष्प उनको चढ़ाए जाते हैं।

बहुचराजी के पास ही कालडी नामक एक बड़ा गांव है। यहां गरासिया राजपूतों की बस्ती है। इन गरासियों के कारण ही श्री बहुचरा माता जी की बहुत प्रसिद्धि हुई। माता जी के चढ़ावे मे से इन गरासियो को रुपये में दस आना भाग मिलता था। हाल ही में पाटण के इनामदार अमरसिंह विक्रम सिंह बारहठ के कर्जे-पेटे इन लोगों ने इस आमदनी का बेचान कर दिया है।

बहुचराजी के मन्दिर से कुछ ही मील की दूरी पर देतरोज गांव है—जो चुवाल का मध्य भाग या हृदय कहलाता है। वहां देवी का एक और मन्दिर है जिसके लिए लोगों का कहना है कि वही मूल देवस्थान है। वह आसपास मे बसे हुये कोली ठाकरड़ों की कुलदेवी है; अभी पिछले कुछ समय तक देतरोज मे नवरात्र के पहले दिन प्रतिवर्ष मेला लगता था और वहा एकत्रित ठाकरड़े माता को तेरह पाडों का भोग वेदी पर अर्पित करते थे। जंगली ठाकरड़े उस समय दारू पीकर

नशे में चूर हो जाते थे और आपस में झगड़ा भी करते थे जिसके नतीजे में खूब खूनखच्चर होता था। इसीलिए बाद में माता का मेला देतरोज में बन्द कर दिया गया परन्तु अब भी वे ठाकरड़े निश्चित दिन देतरोज के काकड़ में अलग-अलग आते हैं और प्रत्येक ही बहुचराजी को एक भैंसे की बलि चढ़ाता है।

चुवाल के भाटों का कहना है कि सोलंकी राजवंश के प्रधान का सम्बन्ध देतरोज के कुल वालों के साथ हुआ था, परन्तु कब हुआ था, इसका पता नहीं है। उसी के वंशज कोलियों में मिल गये और उन्हीं में से एक कानजी के अधिकार में, जो रात[7] या खवास[8] कहलाता था, "चौवालीस" गांव थे, इसीलिए 'चुवाल' नाम प्रसिद्ध हुआ।[9]

---

7 संभवतः यह 'रावत' शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ योद्धा होता है।

8 शुद्ध क्षत्रिय द्वारा किसी रखैल स्त्री से उत्पन्न सन्तान खवास, खवासवाल या खवासीए कहलाती है।

9 ये राजपूत सरदार, मूल जातियों से निकली हुई शाखाओं के मुखिया के रूप में, स्काटलैण्ड की हाइलैण्ड शाखा के नायकों के समानान्तर हैं। "यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब कभी हाइलैण्ड शाखा के उच्च घरानों के मूल की खोज की गई तो वे बहुधा ट्यूटॉनिक जाति के ही निकले। मैकडोनल्ड, मैक्लीआड और मैकिन्टाश के मुखिया नारवेजियन रक्त के थे। फ्रेज़र, गारडन, कैम्पबेल, क्यूमिन, और अन्य अनेक घरानों के मूल पुरुष भी नारमन थे। ऐसा लगता है कि कैल्टिक लोगों को-जो अनुयायी के रूप में बहुत साहसिक, वीर और सहनशील थे-कतिपय पूर्वी जातियों जैसे, अच्छे संगठक और नियामक नेताओं की आवश्यकता थी। कितने ही उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं कि कुछ विदेशी परिवारों ने कैल्टिक वंशनाम ही ग्रहण कर लिये और वे उन शाखाओं के नाम थे जिनके वे नायक बन गए थे। इनके अतिरिक्त फ्रेज़र एवं गारडन कुलों में कुछ अन्य छोटी छोटी जातियां मिल गईं और उनमें कितने ही ऐसे फुटकर लोग भी शामिल हो गए जिनके तरह तरह के भोंडे कैल्टिक नाम या अवटंक थे; ऐसे लोगों की जमातों ने अपने मुखियाओं के नाम ग्रहण कर लिए। यही कारण है कि हम गारडन या क्यूमिन अवटंकधारी बहुत से नारमनों को भी विशुद्ध अर्स भाषा बोलते हुए देखते हैं। परन्तु, भले ही नायक ने जाति का नाम ग्रहण कर लिया हो या जाति ने नायक का नाम अपनाया हो, फल यही हुआ कि नायकों की उच्च सभ्यता पर पुराने जातीय रीति रिवाजों और विशेषताओं का अप्रतिहत प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा और उनके परिवारों ने धीरे धीरे बोल-चाल और रहन-सहन के वे ही तरीके अपना लिए जो उनके द्वारा प्रशासित लोगों के थे। आयरलैण्ड में भी ऐसा ही हुआ, जहां →

पता : भो-50, नागनगर, [illegible]

कहते हैं कि एक बार जामनगर का भार गढ़वी नामक चारण काशी यात्रा के लिए गया था; लौटती बार वह देतरोज में कानजी रात के घर ठहरा। वहां

"भ्रष्ट अंग्रेजों" ने, जो पीढ़ी दर पीढ़ी देशी कैल्टिक आयरिश लोगों के साथ रहे थे, वही रीति रिवाज और वेशभूषा अपना ली, जो उन लोगों की थी जिनको उन्हें सभ्य बनाने के लिए भेजा गया था। इसी कारण इंगलैण्ड की अंग्रेजी सरकार इन पर लगातार गहरी फटकार देती रही और पालियामेण्ट ने इन पर दण्डात्मक कोप प्रकट किया।"

यह वृत्तान्त लार्ड लोवाट कृत "वर्टन्स लाइफ ऑफ साइमन" नामक पुस्तक से उद्धृत किया गया है। (भारत में विभिन्न राजपूत और अन्य जातियों के प्रवर्तकों का मूल अनुसन्धान करके इनका तुलनात्मक अध्ययन करना एक मनोरंजक विषय होगा। हि. अ.)

गुजरात के कोली ठाकरड़ों की सूची इस प्रकार है:—चुंवाल में कुकुवाव, मकोड़ा, छनियार और डेकावाड़ा के सोलंकी; कटोसण, जिंजूवाड़ा और पनार के मकवाणा; साबरमती नदी के किनारे घाटी और बापपुर के राठौड़; चरोतर में घोडासर के डाभी; महीकांठा में ऊमलियारा के चौहान, काकरेज के बघेला। इनमें से प्रत्येक जाति ने जब पहले पहल कोलियों से सम्बन्ध किया तो वह तुरन्त मूल राजपूत घरानों से विच्छिन्न हो गई और उन लोगों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपने से निम्न स्तर के कोलियों के रीति रिवाज और रंगढंग अपना लें; यद्यपि उनमें उज्जवल हिन्दू वर्णों के समान कुछ फेरफार भी कर लेते थे। (जब मेर लोग गुजरात में बस गए तब से और चौदहवीं शताब्दी में दुर्भाग्यवश राजपूतों पर मुसलमानी जुआ आ जाने से इन योद्धा जातियों के उच्च एवं मध्य वर्ग के लोग आपस में अधिक नजदीक आ गए। उस समय बहुत से राजपूतों ने कोलियों के यहां शरण ली और उन्हीं में बेटी-व्यवहार कर लिया। उनके वंशज अब तक अपने को राजपूत मानते हैं और उन्हीं वंशों का नाम धारण करते है। इसके अतिरिक्त, संभवतः मूल में एकता होने के कारण, गुजरात और काठियावाड़ के कुछ भागों में तालबड़ा कोलियों की लड़कियों और राजपूतों के लड़कों की आपस में शादी हो जाती है। इस प्रकार कोलियों और राजपूतों के संबंध कोलियों और कणबियों तथा राजपूतों और कणबियों के सम्बन्धों की अपेक्षा, अधिक निकट हैं और यह भी स्पष्ट है कि राजपूतों और कोलियों में वर्गभेद कुल जाति की अपेक्षा पद और मर्यादा पर अधिक आधारित है।

—बम्बई गजेटियर, गुजरात की आबादी; भा. 9, 1; पृ. 238-9.

इस विषय में अधिक जानकारी के लिए 'काठियावाड़ गजेटियर' पृ. 139-142 भी देखना चाहिए।

उसकी अच्छी आवभगत हुई और एक घोड़ा भी उसको बख्शीश में दिया गया। घर लौट कर चारण ने जाम के सामने कानजी रात की बहुत प्रशसा की और कहा कि जाम का दसोंधी चारण होने के कारण ही उसका इतना स्वागत हुआ। इस पर प्रसन्न होकर जाम ने कानजी के लिए शिरोपाव भेजा। उस समय देतरोज का गोपी नामक पटेल बहुत प्रभावशाली था। कानजी रात के इस सम्मान से उसे बडी ईर्ष्या हुई और उसने उसको तुरन्त गाव छोड़ देने की आज्ञा दी। कानजी वहा से निकल गया और देतरोज से दो कोस की दूरी पर जांगरापुर नामक गाव मे रहने लगा। बाद मे, जब श्राद्धपक्ष आया तो कानजी ने अपने पिता का श्राद्ध करने के लिए दूध लाने को अपने खवास[10] को देतरोज भेजा। खवास ने घर-घर से दूध इकट्ठा किया और अन्त मे गोपी पटेल के घर जाकर भी दूध देने को कहा। पटेल का पारा चढ गया और उसने अपने नौकरो को कह कर वह भांडा तुडवा दिया जिसमे खवास ने दूध इकट्ठा किया था। इस पर, अपने काम मे असफल होकर वह खवास रोता-रोता कानजी के पास पहुंचा। रात को पटेल की करतूत से चोट तो बहुत पहुंची, परन्तु वह उस समय गम खीच गया। उन्ही दिनों एक और चारण कानजी के यहां आकर ठहरा और उसकी प्रशंसा मे गीत कह कर उसने एक पामरी (रेशमी चादर) की याचना की। यह कानजी की शक्ति से बाहर की बात थी इसलिए उसने यह दोहा कहा—

कौन पाप से अवतरे, बडे बाप के पूत।
मांगण मांगे पामरी, घर मे मिलै न सूत॥

अब, कानजी ने अपने मन मे निश्चय किया कि देतरोज जाकर अपना मस्तक माता के भोग मे चढा दे। ऐसा विचार करके वह सो गया, तब माता ने (स्वप्न में) आकर कहा, "तू मत घबरा, नवरात्र के पहले दिन (अष्टमी को) देतरोज आना। गाव के बाहर एक पाड़ा मिलेगा, उसी की बलि चढा देना। इसके बाद पटेल का घर लूट लेना, निश्चित रह, तेरी जीत होगी। इस स्वप्न के प्रमाण मे मैं तुझे पामरी देती हूं, जिसे तू याचक को दे देना।" ऐसा कहकर माता अन्तर्ध्यान हो गई। कानजी जग पडा और उसने एक पामरी अपने बगल मे देखी। प्रातःकाल होते ही वह रेशमी चादर उसने चारण को दे दी। जब अष्टमी का दिन आया तो उसने अपने साथियों को एकत्रित किया जो संख्या मे दो सौ थे; वे सब हथियारों से लैस होकर घोड़ों पर चढ़े और देतरोज की ओर बढ़े। गांव के

10 अंग्रेजी मे Torch bearer शब्द लिखा है, जिसका अर्थ मशाल लेकर चलने वाला होता है। गावों में नाई या खवास ही यह काम करते थे। मालिक के लिए दूध या अन्य सामग्री आदि एकत्रित करना भी इन्ही का काम था। गुजराती अनुवादक ने हजाम लिखा है, जिसका अर्थ भी हजामत बनाने वाला या नाई होता है। हि. अ.

गीत

सुणे धांह[12] गोपीतणी कचेरी साहरी, चवे[13] फरियाद, को कान चूको[14] ।
मरद उमराव गुजरात ले मोकलो, 'भागरो' कान रो करे भूकोप[15] ।।
मान सनमान ग्रजीम खां मेलियो, करवा काज धर सूत[16] काठा[17] ।
कान, जशवंत ने भभेरी[18] का'डिया, नरपति जेशिया सोत न्हाठा ।।
कमो सनमान दीवान ग्राजीम कियो, मेहेप[19] केताक कर जोड मलिया ।
धड़क[20] ग्राजिम तणी नाश थरा धणी, चार करजा सरे भूप चढ़िया ।।
ऊतर्या करजे थी धन्य हां भागमरा[21], कांहे बो[22] बात मोहे थी कथवी ।
जशवंत, कान कुंभराज, जोशियो रासिया वेड़ ऊनाड़ रखवी[23] ।।

इस घटना के बाद कानजी का देतरोज पर निष्कण्टक अधिकार रहा और उसकी सत्ता एव कीर्ति बढ़ती रही । यह भी कहा जाता है कि बादशाह[24] ने उसको नौबत, चोबदार और आफतावगीरी (सूरजमुखी) के राजचिह्न प्रदान किये थे ।

कानजी के बाद रामसिंह जी, उदेभाणजी और नारायणजी गद्दी पर बैठे । अन्तिम ठाकुर नारायणदास का चबूतरा अब भी चुवाल में मकोड़ा ग्राम में मौजूद है और उस पर लगे हुये लेख में लिखा है, "रात श्री नाराणजी की छतरी उनके भाई श्री हरीसिंहजी और कुग्रर श्री कानाजी ने सन् 1720 ई० में बनवाई ।"

ऐसा लगता है कि इस छोटे कानाजी ने अपने इसी नाम वाले पूर्वज के समान कीर्ति अर्जित की ।

दूहा

काना तरकस कानरो, तैं बाध्यो ज जुवाण[25] ।
बीजो सोज न ऊपडे, देत - रोज दैवाण[26] ।।

कानजी रात की तरह यह भी मुसलमानो के साथ युद्धरत रहा ।

12. फरियाद; 13. कहे; 14. पुकारा करे, पकड़े;
15. लड़ाई; 16. सिंधु; 17. महीकाठा;
18. मार भगाया; 19. महीप, राजा; 20. धाक; 21. हिम्मत;
22. बहुत; 23. चंदुरवाला करमशी अथवा कमा का उपनाम ।
24. गुजराती अनुवाद में अकबर लिखा है जो ठीक नहीं है; परन्तु अंग्रेजी मूल में पादशाह ही लिखा है ।
25. जवान; 26. देव ।

गीत

× दणी करंती वफोर सोर गई साह आगे दोड़ी,
भणी बात सुणी साची श्रवणे सभाए;
"आगरे कहातो ज के झागरो कान रो आगे",
"कान रो झांगरो दूजो हुओ दूजो कान" । 1 ।

जजालां लहे मडा त्रंबालां घरावे जोर,
गुडाला वंधोसे काला नाढाणी सताव;
"पेंगालां काकशा धोखा" सुणो शाह के प्रजा,
"नेजाला धजाला सोता मारिया नवाब" । 2 ।

मारका हसम मले कारका जोरड़ा मडे,
धुमाड़े त्रवडी घटा काढे सत्रा धाए;
गवाडे सिंधुड़ा राग, नमाडे त्रवंका गढां,
मजोडे बावरी गादी हरो अदेभाए । 3 ।

ए आकी शाहमु सदा धरेणो कान रो आगे,
धरे शाह तणी सरे मटे नहि धाह;
"वाह-वाह" हुइयो तो जाम राव आगे वातां,
शाह रा रसाला पाड़े कानो पादशाह । 4 ।

× इस गीत का भावार्थ इस प्रकार है—

दुनिया शोर मचाती हुई दौड़कर बादशाह के पास गई और सच्ची बात कही : बादशाह ने सभा में (दरबार मे) सुना "पहले जो आगरे मे लुटेरा कानेरा सुना जाता था वही अब दूसरा कान रा पैदा हो गया है । 1 ।

वह जजालों और योद्धाओं को साथ लेकर जोर से नौवत बजाता है और वह नाढाजी का पुत्र काले गुडाल हाथियों को तुरन्त बांधता है । प्रजा बादशाह से कहती है, 'सुनो, उसने नेजा और निशान वाले नवाबों को ही मार दिया, पैदल सिपाही उसके सामने क्या चीज हैं ?' । 2 ।

वह बड़े जोर से सज्जित होकर धावे करता है और शत्रुओं को पार पहुचा देता है; वह त्रेवडी (तीन तरह की या तिगुनी) फौज शत्रुओं का कचूमर निकालने को रखता है; वह युद्ध का सिंधु राग गवाता है और किलों को तोड़ देता है; वह उदेभाण का पौत्र अपने पिता की गद्दी को सुशोभित करता है । 3 ।

कान सदा ही शाह के साथ लड़ाई करता है; शाह की प्रजा की धड़कन (भीति) मिटती नहीं है । जाम के सामने बातें हुई कि "वाह-वाह", काना पादशाही रिसाले को नष्ट कर देता है । 4 ।

भाट जिस नायक का वर्णन करता है उसमें शूरवीरता के साथ-साथ उदारता का गुण भी अवश्य होता है; कानजी की उदारता का वर्णन निम्न पद्य मे है—

(⁰) इन्द्र वुठे पख आठ, मास बार तु झड़ मंडे;
ते करे सरस केदार, तु बेदुआ दरिद्र विहडे।
ए गाजे भ्रणी ऊपर, गाजतो तु घमसाण;
ए वुटे धन धान, तुं तो वुठे केकाण।
देतरोज राण मोजद जल, दन-दन शबद दाखिये।
कोनाणी तु नाढास तन, इन्द्र समोवड़ भाखिये।।

ऐसा ज्ञात होता है कि कानजी के अधिकार में चुवाल का चौथाई भाग ही था क्योंकि यह परगना चार तालुको मे बँट गया था। यह विभाजन कब हुआ, यह तो पता नही, परन्तु वे तालुके कोकवाव, मगोड़ा, छनियार और डेकावाडा थे। कानजी ने अपना तालुका जीवनकाल मे ही पुत्रो को बाँट दिया था। सब से बड़े नथूभाई को रामपुरा, कानपुर और कांज नामक गांव मिले; दूसरे पुत्र दादो को दशलाणु और नारायणपुरा मिले; सब से छोटे भूपतसिंह को कोन्तीओ तथा घाटोशाणा गाव दिये गये। तालुके के शेष गाव कानाजी ने अपने पास रखे जो मकोड़ा, कात्रोडी (ली), चूनीनूपुरा (चूंडानीनु परूं), दागडवा, बालशासन, ऍदरा और मदवाहण थे।

जब कानाजी की मृत्यु हुई तो भूपतसिंह की अवस्था बारह वर्ष की ही थी। उसके बड़े भाईयो ने उसे निकाल दिया और वह अपने एक दूर के सम्बन्धी छनियार के ठाकरड़े के पास चला गया। भूपतसिंह के पास एक बकरा था जिसको वह बहुत प्यार करता था। एक दिन उस बकरे में और छनियार ठाकरड़े के बकरे मे लड़ाई हुई तो भूपत वाला मार खाकर भाग गया। तब भूपत बहुत नाराज हुआ और यह कह कर कि 'लानत है तुझ को, तूने मेरी आबरू खराब कर दी' उस बकरे का सिर काट दिया। यह देखकर छनियार का ठाकरड़ा घबराया और सोचा कि कभी इसी तरह गुस्से मे आकर यह मेरे बाल-बच्चों को भी नुकसान पहुचायेगा। अत: उसने भूपत को वहा से कहीं भेज देने का विचार किया। तब भूपतसिंह कोइनिया गांव में

(0) इन्द्र तो आठ पखवाडे (4 मास) ही वर्षा करता है परन्तु तू तो बारह मास ही बरसता रहता है; इन्द्र केदार को सरस करता है और तू विद्वानो के दरिद्र का नाश करता है (उन्हें प्रसन्न करता है); इन्द्र पृथ्वी पर गर्जना करता है, तू घमासान युद्ध में गाजता है; इन्द्र धन-धान्य बरसाता है, तू घोडो की वर्षा करता है; हे देतरोज के राणा! दान देने के लिए जल छोड़ते हुए प्रतिदिन तुम्हारा यश गाया जाता है; हे नाढाजी के पुत्र काना! तुम्हारे समान इन्द्र को कैसे कहा जाय?

[illegible]

जाकर रहने लगा जो उसके पिता ने जागीर मे दिया था। पनार का ठाकुर कूपोजी मकवाणा था। उसके कामदार पुथू ने सलाह दी कि कूपोजी अपनी पुत्री का सम्बन्ध भूपतसिंह से कर दे। कूपोजी देश मे प्रसिद्ध ठाकुर था इसलिए उसने कामदार से कहा कि भूपतसिंह के पास कोई जमीन-जायदाद तो है नही, तब यह सम्बन्ध कैसे हो सकता है? कामदार ने कहा, 'यदि आप मदद करेंगे तो वह अपना गरास वापस ले लेगा।' निदान, उस जवान ठाकरड़े के साथ कूपोजी ने अपनी कन्या ब्याह दी और दो हजार कोलियो को साथ लेकर उसके भाई दादो एव उसके पुत्र बनेसिंह को दशलाणा मे मार डाला। यह देखकर सबसे बडा भाई नथूभाई डर के मारे भाग गया। पहले वह कटोसण मे रहा फिर घाटी चला गया। तब भूपतसिंह ने अपने पिता और भाइयो के सब गावो पर कब्जा कर लिया और भकोड़ा मे गद्दी कायम करके रहने लगा।

भंकोडा मे गुसांइयों का एक मठ था जिसमें से एक अतीत[27] भूपतसिंह की माता के रावले मे आता जाता था। इस पर बनिये कामदारों ने सलाह करके भूपतसिंह से कहा कि अतीत के रावले मे आने जाने से उसकी बदनामी होती है। भूपतसिंह को इस बात पर बहुत क्रोध आया और उसने तलवार से उसी समय अपनी माँ का काम तमाम कर दिया। अतीत भाग गया और कभी वापस नही आया; परन्तु उसका चेला मठ का स्वामी हो गया।

उस समय पनार के मकवाणा कूपोजी के 'मेलीकरो' अथवा लुटेरो ने एक ओर वढवाण और लीमड़ी तक, दूसरी ओर अहमदावाद तक सारे देश पर हल्ला बोला रखा था। साणद का राजा प्रतिवर्ष दीवाली पर कूपोजी को एक घोड़ा देता था और इसी के बदले उसके इलाके मे लूट-पाट न करने का ठहराव था। इसी तरह और भी बहुत से गांवो से दाव-धौस देकर कूपोजी कुछ-न-कुछ वसूल करता रहता था। माडल का जेठा पटेल मरहठों का बहुत कृपापात्र था। जब पेशवा की फौज भोमियो और तालुकेदारो से मुल्कगीरी वसूल करने आती तो वह उसके साथ जाता था। एक बार हलवद के राजा की तरफ पेशवा का दो लाख रुपया बकाया था। जेठा पटेल इस रकम की वसूली का इन्तजाम करने गया। उस समय कुंभर की नाबालिगी मे बाई[28] ही राज्य का प्रबन्ध करती थी। उसने जेठा पटेल से कहा कि उस समय उसके पास देने को रकम बिलकुल नही थी क्योकि वढवाण के ठाकुर ने थोड़े ही दिनो पहले उसके इलाके को उजाड़ दिया था और उसको एक पल भी चैन नही लेने दिया था। जेठा पटेल ने धमकी दी कि यदि उसके द्वारा मांगी हुई रकम

27. अंग्रेजी मूल मे 'वाणिया' लिखा है, जो भूल है। 'अतीत' शैव सन्यासी होते हैं— देखिए—रासमाला भा० I

28. जीजाबा, जसवंतसिंहजी की माता—काठियावाड़ गजेटियर; पृ० 429

नही दी जायगी तो वह गावों मे आग लगाकर जबरदस्ती वसूली कर लेगा। यह कह कर वह चला गया। कूपोजी बाई का धर्म-भाई था इसलिए उसने उसे बुलाकर कहा कि जब तक जेठा पटेल न मारा जायेगा, उसे शान्ति नही मिलेगी। उसी समय जेठा पनार के एक गांव छरियालू मे भी पेशवा की एवज तोरण बंधाने आया। कूपोजी को उससे लडाई करने का यह अच्छा अवसर मिल गया और उसने पटेल को तलवार के घाट पार उतार दिया—यह ऐसा काम हुआ कि जिससे तमाम भोमियों को राहत मिली।

इस घटना के बाद कूपोजी ने एक सौ पचास बख्तरबद सवार साथ लेकर अहमदाबाद के पास 'मोड कमोद' नामक गाव पर धावा किया। वह वहा से मवेशी ले गया। इस गांव में मरहठो का साठ आदमियों का थाना रहता था; वे युद्ध करने आये परन्तु कूपोजी ने लड़कर उनमे से बीस आदमी मार डाले और उनको पीछे हटा दिया; उसके केवल चार आदमी मरे। परन्तु, पास ही सरखेज का दूसरा थाना था; वहा से एक बनिया कामदार सिर्फ छः सवार और दो धौंसे साथ लेकर आया और अचानक कोलियो पर टूट पड़ा; उस समय वे एक स्थान पर विश्राम कर रहे थे। 'मेलीकरों' ने जब धौंसे की आवाज सुनी तो समझा कि कोई बडा सरदार बहुत–सी फौज लेकर चढ़ आया है इसलिए भाग खड़े हुए। कूपोजी ठाकरड़ा भी घोड़ा दौडा कर भगा परन्तु उस पर पीछे से भाले का वार हुआ और वह ढेर हो गया। मरहठे उसकी लाश ले गए और उसके पुत्र शान्ताजी को तब तक नही लौटाई जब तक कि उसने यह प्रतिज्ञा न करली कि वह भविष्य में उनके गांवों पर हमला नही करेगा। शव प्राप्त करके शान्ताजी ने पनार मे उसका दाह-संस्कार किया और 'मोड-कमोद' मे एक पालिया बनवा दिया।

अब भूपतसिंह की बात फिर चालू करते हैं। कड़ी से मल्हारराव गायकवाड़ ने भूपतसिंह को कहलाया, "कामोडी', कोइतियां और पटेशला—ये तीन गांव गायकवाड़ के हैं; इन्हें वापस करो।" परन्तु भूपतसिंह ने इनकार कर दिया और यह झगड़ा कुछ वर्षो तक चलता रहा। एक बार, पाटण का एक व्यापारी रेशम का माल गाड़ियों मे भर कर ले जा रहा था। छनियार के ठाकरडा के कुछ आदमी गाड़ियो की रक्षा के लिए साथ थे। भूपतसिंह ने दगलाणा और मंकोडा के बीच मे माल पकड़ लिया। बाद मे, चौदह हजार रुपये दण्ड ले कर व्यापारी को माल ले जाने दिया। उसके इस व्यवहार के कारण छनियार वालों से वैर बध गया और दानों ही ओर के कई आदमी मारे गए; एक बार स्वयं भूपतसिंह भी बन्दूक की गोली लगने से घायल हो गया था, परन्तु बाद मे ठीक हो गया। इसके बाद कड़ी से मल्हार राव का छोटा भाई हनुमन्त राव मरहठा सेना लेकर मकोडा आया और भूपतसिंह को कहलाया कि 'ठाकरड़ा ने माथे पर पानी डाला है[29] इसलिए पगड़ी बधाने का दस्तूर

29. रोगनिवृत्ति के बाद आरोग्य स्नान।

... : मा-50, जोधपुर, सावर [इतर... 14, ... —4/0.J3

करने आया हूं।' तब भूपतसिंह ने कहा, "मुझे तुम्हारी पगड़ी नहीं चाहिए, मैं मरहठों को अपने गाव मे नहीं घुसने दूंगा।" अब, हनुमन्त राव ने अपना पड़ाव पड़ोस के गांव मे डाला और कड़ी को सन्देश भेज दिया कि भूपतसिंह को छल कपट से नहीं पकड़ा जा सकता। तब मल्हारराव ने बाहधर (आश्वासन) देकर भूपतसिंह को कड़ी बुलवाया। वहा पहुंचने पर उसने फिर तीनो गावों की माग सामने रखी जिसको भूपतसिंह ने अस्वीकार कर दिया। वह फसल काटने का समय था और खेतो मे अनाज पकने लगा था। भूपतसिंह ने उन सब को बरबाद करके गांव छोड़ दिया और अपने बाल बच्चों को वीरमगाम मे रख कर बाहरवाट हो गया। उसके पास निजी तीन सौ घोड़े थे और उसके साथियो ने मिलकर यह संख्या दो हजार तक पहुंचा दी। उसने गायकवाड़ के गांवों को लूटना शुरू कर दिया।[30]

भूपतसिंह के पूर्वज कानजी रात को बादशाह ने नौबत, चोबदार और आफताबगीरी (सूरजमुखी) के राजचिह्न प्रदान किए थे; वह इन सब को अपने पास रखता था। जब मकोडा छोड़ कर भूपत चला गया तो मल्हारराव ने आकर उसकी कोटड़ी को तोपो से उड़ाने का उपक्रम किया; तब एक चारण ने उसका उपहास करते हुए कहा, "भूपतसिंह लड़ता है तो कौन सी अचरज की बात है? अब तो उसके घर की एक एक ईंट युद्ध पर उतर आई है।" जब मल्हारराव ने यह बात सुनी तो वह लज्जित होकर लौट गया। भूपतसिंह बहुत दिनो तक मरहठों के लिए त्रास का कारण बना रहा।

दूहा

मकोड़ू ने कड़ी लड़े, जाणे सतारा जाम।
भडबा[31] चाल्यो भूपतो, रावण माथे राम ॥
कानाणी[32] कुल खो तणा, भोज भरणणहार।[33]
भड़ थई डाकण भूपता, तूं वाली तरवार ॥[34]
महिला जे मराठा तणी, केम सजे सिणगार।
भड़तो ऊभो भूपतो, माथे मोटी मार ॥[35]

---

30. भूपतसिंह ने मरहठों को सताया जिसका यह दोहा प्रसिद्ध है :—
दंतराना दनीया मांय, दखणी करंता कांम;
वनी ने काटये पोल, भालानी अणीये भूपता।
31. लड़ने को। मकोड़ा और कड़ी मे लड़ाई हुई; इस बात को सतारा और जाम ने सुना।
32. काना का वंशज। 33. मांस खाने वाले। 34. हे भूपत! तेरी तलवार सब को खानेवाली डाकिन हो गई। 35. मरहठो की स्त्रियां गहने नहीं पहनती क्योंकि सिर पर योद्धा भूपत खड़ा है।

रावे राफ[36] न जाणियो, घर्‍यो वरांसे पाग।
भड़ अजरायल[37] भूपतो, जग वैयो जड़ नाग ।।[38]
कड़ी ऊमेली का हशे,[39] करशे कौल करार ।[40]
घर भोगवशे भूपतो, मरशे राव मल्हार ।।
काला काई डंबर करे,[41] ठाला[42] तुरक डाय ।
भल ते कीधा भूपता, चोखड चाकरडाय ।[43]

जब कडी मे मल्हार राव की स्त्री ने पुत्र को जन्म दिया तो उसकी एक दासी बाजार मे सोंठ लेने गई । प्रसव के बाद पुनः शक्ति प्राप्ति के लिए स्त्रियां सोंठ का प्रयोग करती हैं । वह दासी पंसारी को लगातार कहती रही 'तुम्हारी दूकान में जो सब से बढ़िया सोंठ हो, वह देना ।' तब दूकानदार ने कहा 'अच्छी सोंठ तो सब भूपतसिंह की माता ने खाई है, अब तो छूंछे रह गए है ।' दासी ने घर जाकर मल्हार राव को सब बात बताई तो वह बहुत नाराज हुआ और उसने पसारी की दूकान लुटवा ली । जब भूपतसिंह ने यह बात सुनी तो उसने बनिये का नुकसान पूरा कर दिया । इस तरह, मल्हारराव और भूपतसिंह मे कई बरसों तक चलती रही । अन्त मे, जब मल्हारराव की अंग्रेजों और बड़ोदा राज्य से लड़ाई हुई तो उसने भूपतसिंह को जिंजुवाडा से अपनी मदद के लिए बुलाया और जब मल्हारराव कैद हो गया तो भूपत ने ही उसके परिवार को संरक्षण दिया ।

इस ठाकुर के विषय में नीचे लिखी और भी बातें प्रचलित हैं—

जूनागढ के नवाब ने धाधरपुर के गोदड काठी पर आक्रमण कर दिया । उसने हलवद के राजा से सहायता मांगी, परन्तु वह तो नवाब से डरता था इसलिए इनकार कर गया । इस पर गोदड काठी ने भूपतसिंह को बुलाया; उसने धांधलपुर जाकर अच्छी तरह उसका रक्षण किया ।[44]

मेयाणा का गरासिया हलवद के राजा का छुटभाई था । राजा ने उसका गराम दबा लिया; ऐसे अवसरो पर दूसरे ठाकुर अपनी लड़कियां मुसलमानो को देकर सहायता मांगते थे परन्तु मेयाणा के झाला ने भूपतसिंह को लड़की दी । तब हलवद का राजा भूपतसिंह से डर गया और उसने तुरन्त ही दबाई हुई भूमि को छोड़ दिया ।

---

36. राफड़ा=बिल, सांप का बिल ।37. अजेय । 38. महासर्प । 39. उखाड़ डालेगा । 40. सन्धि करने को बाध्य करेगा । 41. नामसभी करते हैं । 42 व्यर्थ । 43. नौकर, दास ।

44. फार्बस गुजराती सभा की हस्तलिखित प्रति सं० 46-1-57 मे इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है—

मरो गेड गवड़ा तणो भेल मानी मरी सागर लाखां दला मेल लाडो;
जेरदर राज्य थी भीग्न हुई जदी, धावीयो भूपतो तदे धाडो । 1. →

भूपतसिंह प्रत्येक द्वादशी के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराता था; उसने अपने गांव में गरीबों के लिए सदाव्रत भी खोल रखा था। वह निर्धनों को कभी नहीं लूटता था। वह तो राजाओं से ही लोहा लेता था। 1814 ई. में उसका देहान्त हो गया। चुंवाल के सोलंकी-कोलियों के पड़ोस में ही मकवाणा कोली है, जिनके अधिकार में जुंजूवाड़ा, कटोमण और पनार के गरास है। केसर मकवाणा का कुंअर हरपाल, झाला शाखा का मूल-पुरुष था। उसके अतिरिक्त केसर के दो पुत्र और थे, विजैपाल और शाता जी। मुसलमानों के साथ लड़ाई में विजैपाल घायल होकर कैद हो गया; *बाद में, वह मौलेसलाम[45] हुआ। उसके वंशज मही काठा में माडुवा के जमींदार हैं।*

सेध खरा शाणरा, वेध नाता खरा, धरा पर धपधपे गेंण धूजो;
भीर गोदड़ तणी ताणवा महाभड़, डमरं कर आवीयो कान दूजो। 2.
हेमरां डूगरा नरां चालतां हशम, वशम गत सीधुवा राग वागे;
भीकतो आभसर टेक दे भीलिओ, खेलीयो अजारां बीच खागें। 3.
अलंगारो बेडीयो नाढहर ऊकरो, दले दई पाण घमशाण दाखे;
भाहरां धरावे घर भूपतो राव काठां तणी धरा राखे। 4.

45. गुजरात के सुल्तान महमूद बेगड़ा (1459 से 1511 ई.) ने बहुत से हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया था, जिनमें राजपूत भी शामिल थे। इस प्रकार परिवर्तित मुसलमान मौलेसलाम कहलाते थे जिसका अर्थ इस्लाम का मौला या मालिक होता है। जब काफिरों को इस्लाम में परिवर्तित कर लिया जाता था तो उन्हें मौला कहने का रिवाज था। आमोद और केरवाड़ा के मौले-सलाम *ठाकुर अपने को यादव राजपूतों के वंशज बताते हैं। 1921 ई की जनगणना* में भड़ौच और राजपीपला उपजिलों में इन मौले-सलामों की संख्या 4666 थी, जिनमें 2357 पुरुष और 2309 स्त्रियां थी।

ये लोग सुन्नी होते हैं, गुजराती बोलते है, और हिन्दू विधान इन पर लागू होता है। परन्तु बाद में पढ़े लिखे लोगों ने उर्दू जबान और मुसलमानी कानून को अपना लिया है। इनमें से कुछ लोग छोटी-छोटी दाढ़ियाँ भी रखते है। घर में ये लोग लुंगी पहनते हैं और जब बाहर निकलते हैं तब साफा या फेंटा बांध लेते हैं और राजपूतों की तरह कमरबन्द बांधते हैं या कंधों पर दुपट्टा रखते हैं। *इनकी स्त्रियां राजपूत अथवा गरासिया जाति की स्त्रियों की तरह सल्ला, अंगिया और घाघरा पहनती है। ये परदा नहीं रखती।*

मौलेसलाम अन्य मुसलमानों के साथ ही दस्तरखान पर खाना खा लेते हैं और कभी-कभी मांस भक्षण भी करते हैं, परन्तु सामान्यतः वे हिन्दुओं की तरह शाकाहारी ही होते हैं। मौलेसलाम अपनी लड़कियों का विवाह शेखों, सैयदों, मुगलों या बाबियों में करते हैं, परन्तु नीचे दर्जे के मुसलमानों में विवाह करने

इनका प्रवर्तक लालमिया है जिसके विषय मे ईडर के राव वीरमदेव का चरित लिखते समय उल्लेख किया गया है। शांता जी ने अपने बाहुबल से सांथल पर अधिकार कर लिया। महमूद बेगडा के समय मे वहा उसका वंशज कानोजी राज्य करता था। कानोजी ने एक भील सरदार की लडकी से विवाह कर लिया इसलिए वह जाति-च्युत हो गया, परन्तु वह सुलतान की सेवा बडी तत्परता से करता था इसलिए महमूद ने उसको चौरासी गावों की कटोसण की जागीर दे दी थी। कानोजी की तेरहवी पीढी मे नाराणजी कटोसण का ठाकुर हुआ; उसी के समय से इस कुटुम्ब के वृत्तान्त और भाग्य का गहराई से अनुसधान किया जा सकता है और उसी से गुजरात के हिन्दुओ मे भाई-बट करके जमीन का बटवारा-दर-बटवारा करने के क्या परिणाम हुए, इसका भी अच्छी तरह पता चल जाता है। परन्तु, इस विषय मे प्रवेश करने का हमारा विचार नही है क्योकि यह भू-राजस्व के अध्येताओ के लिए तो काम का विषय हो सकता है, सामान्य पाठको के लिए रुचिकर नही होगा। मंकोड़ा वालो का बखान करने के लिए भाटो को जितनी सामग्री मिली उस परिमाण मे तो कटोमण के मकवाणो का कीर्तिगान करने को मसाला नही मिला. फिर भी नाराणजी के पौत्र अजबोजी और अगरोजी के नाम, अपने ढंग से, कीर्ति-रहित नही हैं। यहां, उपसहार मे, उन्ही से सम्बद्ध कुछ गीतो के चुने हुए अंशों का साराश देते हैं।

नीचे कटोसण के अजबोजी मकवाणा के दरबार का चित्र प्रस्तुत किया जाता है :—•

"दरबार मे नौबतें गडगडाती थी; जमीन पर छिड़काव होता था; बहुत से ठाकुर हाथ जोडते हुए शरण मांगने आते थे; वे अपनी फरियादें करते थे; कानोजी के वशज के आगे छत्तीस तरह के बाजे बजते थे मानों इन्द्र के सामने बज रहे हों;

का नियम नही है। किसी मौले-सलाम ठाकुर को राजपूत कन्या भी ब्याह दी जाती है, परन्तु अन्य मुसलमान अपनी ही जाति में विवाह करते है अथवा अन्य गरीब मुसलमान परिवारो मे से लड़की ले लेते हैं। ये काजियों और मौलवियों को तो मानते ही हैं, परन्तु अपने परम्परागत कुलगुरु ब्राह्मण का भी मान करते हैं, भाटों और चारणों को दान देते हैं। इनमे से जो धनाढ्य होते है, वे भाटों और चारणों को अपने आमोद के समय में कवितायें सुनाने के लिये रखते हैं। दूसरे लोग विवाहादि अवसरों पर इनका सम्मान करते हैं। वंश-परम्परागत तालुकेदारों और जमींदारो के अतिरिक्त अधिकतर मौलेसलाम कृषक, दूकानदार, व्यापारी अथवा व्यवसायी होते हैं। ... .

(गजेटियर ऑफ इण्डिया, गुजरात स्टेट, भड़ौच डिस्ट्रिक्ट, 1961, पृष्ठ 189)

• फार्बस गुजराती सभा का ह० लि० ग्रन्थ 'अजब-वरद-शृंगार' चारण त्रिकमजी रचित; न० 48–2 स. के आधार पर

विद्वान् वेद-पाठ करते थे; अतिथियों को शक्कर, बकरे का और सूअर का मांस परोसा जाता था; अफीम और केसर का नित्य वितरण होता था; अजबो के आगे नर्तकियां नृत्य करती थी; वह सदा रागरंग मे ही मस्त रहता था; शहनाई की जोड़ी बजती थी; हाथियों की तरह झूमते हुये गायक गाते थे; धन का व्यय करने मे वह राजा बलि के समान था; उसके रसोवड़े मे नित्य ही दूध-पाक, खीर और अमृत जैसे स्वादिष्ट भोजन बनते थे; उसके भवन पर धर्म की ध्वजा फहराती थी, ऐसा चुवाल का धणी था, बादशाह भी जिसकी आन मानता था। जसा के पुत्र! मकवाणा! हिन्दुओं और मर्यादा के रक्षक? सूर्य के समान तेरा उदय हुआ है।" उसका भाई उगरेश भी कम प्रसिद्ध नही था। वे दोनो भाई लोगो को दशरथ के पुत्रों का स्मरण कराते थे।

भाट ने वर्णन किया है कि अजबोजी जगद्विजयी था, उसने साहू की सेना, दखिनियों की सेना और दिल्ली की सेना को समान रूप से पराजित किया था, परन्तु वह अपनी इच्छानुसार स्वार्थ-साधन में भी नही चूकता था। उसने गाव-गाव मे अपना गरास कायम कर लिया था, हमलो से उसे नित्य ही कीर्ति प्राप्त होती थी। विशरोडिया, पनारा, भरतोलिया और बहुत से अर्द्ध-भग्न गावपति उसके अमीर थे। कपडे लत्ते पहनने और पोशाक सजाने मे भी वह कम नही था। भाट ने मुख्य रूप से लिखा है कि वह 'जरी और रेशम की पोशाक' पहनता था।

अजबोजी ने और भी अधिक सम्मानपूर्ण कीर्ति तो तब अर्जित की जब 1813 ई. के भयंकर दुष्काल मे उसने अपने अन्न के कोठारो को गरीबो के लिए खोल दिया, इस दुष्काल का स्मरण एक अविस्मरणीय शोक गीत की छाया के समान है जो कवि के अत्यन्त हर्षोन्मादपूर्ण काव्य को भी धूमिल कर देता है—

"पृथ्वी पर आपत्ति छा गई थी, राजा बिना भोजन रहे, राव-राणों के पास एक दाना भी देने को नही था, पति और पत्नी एक दूसरे को छोड़ गये, माता-पिता सन्तानो को छोड़ चले, सब धर्मकर्म भूल गये, धर्मदाय (सदाव्रत) बन्द हो गये, जलाशय सूख गए और बादलो मे एक बूंद भी पानी नही गिरा। ऐसे समय मे जब गाव-गाव से ऐसी सूचनाए आ रही थी, सारा देश भिखारी बन गया था उस समय वनोजी के वंशज ने अपना झण्डा फहराया; उसने अपने कोठार खोल दिए जब कि और राजा परदेशियो को अपने गाव मे घुसने ही नहीं देते थे, अजबोजी उनका स्वागत करता था। यद्यपि स्वर्ग का इन्द्र कोपायमान था परन्तु यह पृथ्वी का इन्द्र तो प्रसन्न था; उसने देश मे से दुष्काल को निकाल बाहर करने की प्राणपण से चेष्टा की।"

मुसलमानो के साथ हुए युद्ध का वर्णन इस प्रकार है :—

"उस समय कडी मे भावो खा और लँबो नामक दो तुर्क राज्य करते थे; वे बहुत बड़े अत्याचारी थे। जब उन्होंने अजबो और अमरो की कीर्ति सुनी तो अपनी मानहानी कबूल करने व खिराज देने के लिए कठोरतम पत्र लिखा। अजबो ने

इस सन्देश को सुन कर आगबबूला हो गया। अगरो ने किसी तरह उसको रोका और दूत को नहीं मारने दिया। उन्होंने तुरन्त ही मदनशाह के पुत्र, अपने दीवान, दीपचन्द को बुलाया और तुर्कों के नाम क्रोध उत्पन्न करने वाला उत्तर लिखवाया जिसमें उनको केसर के पराक्रमी और कीरंतीगढ़ (कीर्तिगढ़) के अधिपतियों के शौर्य की याद दिलाई। लम्बी-लम्बी दाढ़ीवाले मुसलमान घमण्ड में भरकर इकट्ठे हुए और उन्होंने डागरवाड़ा में अपना पड़ाव डाला। जब यह खबर कटोसण पहुंची तो अजबो ने अपने भायातों को बुलाया; उनमें अभग तलवार का धनी तेजल, मेघराज, जगतो और सूरजसिंह थे। अगरो ने मूंछों पर हाथ फेरते हुए उनको सब बात समझाई तो उन भाइयों ने भ्रातृत्व निभाने की सौगन्ध खाई। विक्रमशी कवि ने उच्च स्वर में कहा, "वाह, वाह!' मैं तुम्हारी हिम्मत देखकर प्रसन्न हो गया।" उसने उनके पूर्वजों के गीत गा कर उनको उत्साहित किया, उसने सांथल के शाम्ना जी और हरखा सवाई तथा कानो के गीत कहे। बहुत से कोली एकत्रित हो गये; वे अपने कन्धों पर भाथे लटका-लटका कर आए, धनुष की टंकार गूंज उठी, कुछ घोड़ों पर सवार होकर आए, कुछ पैदल आए और बहुत से रात को हमला करने वाले आए। जोरा और जस्मा जकाणा के आदमियों को लेकर आए; अगरंजा का हेमू, मरतोली का मानू और बहुत से लोग आए।" इसके आगे कवि ने अपनी भाट-परम्परा के अनुसार युद्ध का वर्णन किया है जिसका विस्तार करने की यहां आवश्यकता नहीं है—यथा—"शेषनाग कांपने लगा, हिन्दू मुसलमानों से भिड़े मानों पहाड़ से पहाड़ टकरा गया; रक्त की नदी बह चली; शिवजी सदा ही ऐसे अवसरों पर अपने वीर, भूत, वेताल, राक्षसों के साथ प्रकट होते हैं; सूर्य का रथ ठहर गया, उसने अपने घोड़ों की लगाम खींच ली, अप्सराएं और हूरें हिन्दुओं और मुसलमानों का वरण करके स्वर्ग एवं जन्नत में ले जाने को आईं। आबो और लैंबो, जो युद्ध से पलायन करने वाले नहीं थे, खड्गधारी क्षत्रियों से भिड़ गए।"

यह तो हुआ सामान्य वर्णन, अब विशेष इस प्रकार है:—

"जब अगरेश ने अजबो को उत्साहित किया तो उसने रात-दिन युद्ध करने व शत्रु पर बाघ के समान टूट पड़ने का निश्चय किया। उसने एक डेरे से दूसरे डेरे तक खाइयां खुदवा दीं; धन, जवाहरात, शस्त्रास्त्र और कपड़े आदि सब छीन ले गया। उसने शत्रु को दो तरह से मारा; उनके पास भागने को कुछ नहीं रहा और बहुत थोड़े आदमी और थोड़े ही बच पाए। जब यह दशा हो गई तो वरसोड़ा का ठाकुर बीच बचाव करने आया। [illegible] की मांग की। उसने किसी तरह मामला निपटा [illegible]

विशेष टिप्पणी

दी वाम्बे गजेटियर, वॉल्यूम 7; पृ 611–614 मे बहुचराजी सम्बन्धी वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—

वर्तमान मन्दिर से पूर्व मे 3 मील की दूरी पर कालडी गाव के कुछ गड़रिये बालक जानवर चरा रहे थे। खेल-खेल में ही उन्होंने देवी का आला बना लिया। घर से कुछ चावल लाकर वही पकाये और उन्होने तथाकथित देवी को भोग लगाया। फिर उन्होने एक मोटे से पाडे को पकड़ा और वरखारिया पेड़ की टहनी से उसका गला घोट दिया। पाड़े का सिर अलग जा गिरा और इस प्रकार देवी ने उस बलिदान को ग्रहण कर लिया।

उसी समय एक राजा अपनी सेना सहित उधर से निकला। उसने जब इस चमत्कारपूर्ण घटना को सुना तो उसने देवी से अपना चावलो का पात्र पूर्ण कर देने की प्रार्थना की जिससे वह अपनी सेना को भोजन करा सके। तुरन्त ही, राजा के हाथ का पात्र अमोघ हो गया। सेना को भोजन करा देने के बाद भी वह खाली नही हुआ। इसी तरह के अनेक चमत्कार बहुचराजी के मन्दिर के बारे मे सुने जाते है।

मन्दिर मे अनेक जातियो के लोग सेवा करते हैं जिनमे ब्राह्मण भी हैं। इन सब को गायकवाड सरकार नियुक्त करती है और मन्दिर के कोष से उनको वेतन मिलता है। माता की निज-सेवा के लिए छः औदीच्य या श्रीमाली ब्राह्मण रखे जाते है जो 492 रु. वार्षिक वेतन पाते है। अन्य 2। लोगो मे, नौ नक्कारचियों को 765 रु., एक छडीदार और एक मशालची को 126 रु., छः कहारों को 180 रु. और चार भिश्तियो को 150 रु. दिया जाता है।

बहुत सवेरे ही नहा-धोकर मुख्य पुजारी निज-मन्दिर में प्रवेश करता है और दूध, दही, घृत, शक्कर तथा मधु मिश्रित पञ्चामृत मे प्रतिमाओ को स्नान करा कर रामभारे के ठण्डे जल से शुद्धि-स्नान कराता है। इस अभिषेक के समय ब्राह्मण वेद-मन्त्रो का उच्चार करते रहते है। तदनन्तर प्रतिमा और आंगी को कुकुम तथा पुष्प अर्पित करके धूप और कपूर जलाए जाते हैं और चांदी के पात्रों मे दीपक रात-दिन जलते रहते हैं। सात बजे आटा, घृत और शक्कर से बने हुए शीरे का बाल-भोग चढाया जाता है और घण्टा झालर बजाते हुए महंगान के साथ आरती करके प्रातःकालीन पूजा सम्पन्न कर दी जाती है। दस बजे दूध-बूरे का भोग लगता है जिसमे से कुछ तो प्रतिमा पर छिड़क देते है और शेष को पुजारी लोग काम में ले लेते हैं। पहले जब राजपूत, कमालिया और अन्य गैर-ब्राह्मण लोग पूजा करते थे तो नित्य

इस सन्देश को सुन कर आगबबूला हो गया। अगरो ने
दूत को नहीं मारने दिया। उन्होंने तुरन्त ही मदनश
दीपचन्द को बुलाया और तुर्कों के नाम अ
उत्तर लिखवाया जिसमें उनको केसर के पराक्रमों और
अधिपतियों के शौर्य की याद दिलाई। लम्बी-लम्बी दा
भरकर इकट्ठे हुए और उन्होंने डांगरवाड़ा में अपना प
कटोमण पहुंची तो अजबो ने अपने भायातों को बुलाया;
तेजल, मेघराज, जगतो और सूरजसिंह थे। अगरो ने मूं
सब बात समझाई तो उन भाइयों ने भ्रातृत्व निभाने की
कवि ने उच्च स्वर में कहा, "वाह, वाह! मैं तुम्हा
गया।" उसने उनके पूर्वजों के गीत गा कर उनको उत्त
के शान्ना जी और हरगा सवाई तथा कानो के गीत कहे
हो गये; वे अपने कन्धों पर भाले लटका-लटका कर
उठी, कुछ घोड़ों पर सवार होकर आए, कुछ पैदल आए
करने वाले आए। जोरा और जस्मा जकाणा के आदमि
का हेमू, मरतोली का मानूं और बहुत से लोग आए।"
भाट-परम्परा के अनुसार युद्ध का वर्णन किया है जिस
आवश्यकता नहीं है—यथा—"शेषनाग कांपने लगा, हिन्दू मुस
से पहाड़ टकरा गया; रक्त की नदी बह चली; "शिवज
अपने वीर, भूत, वेताल, राक्षसों के साथ प्रकट होते हैं; सू
अपने घोड़ों की लगाम खींच ली, अप्सराएं और हूरें हिन्
वरण करके स्वर्ग एवं जन्नत में ले जाने को आई। आव
पलायन करने वाले नहीं थे, खड्गधारी ... भिड़ ग

यह तो हुआ सामान्य ...

"जब अगरेश ने अजबो व ...
शत्रु पर बाघ के समान टूट पड़ने
सब साइयां मुदवा दी; धन,
गया। उसने शत्रु को दो तरह से
बहुत थोड़े आदमी और थोड़े ही
का ठाकुर बीच बचाव करने आया।
उसने किसी तरह मामला निपटा

निश्चय किया। उन्होंने दोनो ही पक्षों को लोहे की गरम सलाख लेकर पांच कदम चलने को कहा। कमालिया इसमें खरे उतरे और राजपूत पीछे हट गए। यद्यपि परिणाम स्पष्ट था परन्तु संवत् 1907 (1851 ई.) में राजपूतो ने कमालियों पर मन्दिर मे ही हमला करके उनमे से दस को मार दिया। इस पर महाराजा खंडेराव ने नया फैसला किया कि चढ़ावे मे से दस आना हिस्सा राजपूत लें और छः आना कमालिया ले। इस निर्णय मे महाराजा मल्हारराव ने कुछ बाधा अवश्य डाली थी फिर भी यह इसी तरह चला आता है परन्तु कमालिया तो असन्तोष प्रकट करते हुए कुछ न कुछ आन्दोलन करते ही रहते हैं।

भेंट स्वरूप प्राप्त होने वाले नकदी, कपड़ा, गहने और मूल्यवान वस्तुओ के लिए यह नियम है कि पचास रुपये से अधिक मूल्य की चीजें तो देवी के लिए सुरक्षित रखी जाती है और बाकी गोलख मे जमा करा दी जाती है। इस गोलख (कोष) में से साधु-सन्तो और ब्राह्मणो को भोजन-सामग्री दी जाती है जिसकी चिट्ठी पर कमालिया, सोलंकी और गायकवाड के अधिकारियो की सही होती है। गोलख की वार्षिक आय लगभग पांच हजार रुपये होती है जिसमें से 3000 तो धर्मार्थ या सदाव्रत मे खर्च होते हैं और 2000 देवी के काम आते हैं।

पवैया या हिजड़े प्राकृतिक रूप से नपुंसक होने के कारण चुने जाते हैं परन्तु उनको बहुत थोड़ा हिस्सा मिलता है। विशेष अवसरो पर वे यात्रियो से हल्का-सा शुल्क वसूल करते हैं। पिछले दिनो गायकवाड़ सरकार ने इस कार्य मे बड़ा व्यवधान उत्पन्न कर दिया था जिससे इन लोगो को तो दुःख हुआ परन्तु मानव समाज का बहुत उपकार हुआ।

प्रति मास की पूर्णिमा को माता का उत्सव होता है। उस दिन बेचराजी के भक्त आस-पास के गांवो से यहां नियमित रूप से आते है। वे मानसरोवर में स्नान करते हैं और देवी के प्रसाद चढ़ाते हैं। आश्विन और चैत्र की पूर्णिमा को और दोनो नवरात्रों में विशेष उत्सव होता है। इन अवसरो पर गरीब लोग कागज या भोडल की तथा राजपूत सरदार चांदी की आंगियां प्रसाद के साथ विशेष रूप से भेंट करते हैं। सस्ती आंगियां प्रसाद के साथ भक्तों में वितरित कर दी जाती हैं। कभी-कभी लोग मनौतियां भी मानते हैं और अभीष्ट सिद्ध होने पर आंगी ले जा कर अपने बनवाये हुए मन्दिर में पधराते हैं।

आश्विन शुक्ला और चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन मन्दिर के सामने वेदी पर बलिदान होता है। वहां अग्नि प्रज्वलित करके भोजन-सामग्री और घृत से होम-हवन किया जाता है और शतचण्डी का पाठ होता है। समाप्ति पर आश्विन बदी 14 को भैंसे की बलि दी जाती है। ब्राह्मणों एवं अन्य लोगों की भावनाओं को ठेस न लगे इसलिए यह बलिकर्म रात्रि के समय चुपचाप सम्पन्न होता है। कमालिया मन्दिर के सामने एक पत्थर पर भैंसे को लाते हैं; इस स्थान को 'चाचर' कहते हैं। कुकुम और

मदिरा और मांस चढता था। संवत् 1915 (1859 ई.) में गायकवाड़ ने उन अन्याई पुजारियों को हटा कर एक नारायणराव माधव नामक दाक्षिणात्य ब्राह्मण को प्रबन्धक और ब्राह्मणों को पुजारी नियुक्त किया। दोपहर में दुर्गा-सप्तशती का पाठ होता है, प्रतिमा को पुनः स्नान करा कर चावल, दाल, शाक-सब्जी और आटे-शक्कर-घृत के लड्डुओं का भोग लगता है। इसको महानैवेद्य कहते है। दर्शनार्थी भी इसी प्रकार का प्रसाद चढाते हैं। बडी विचित्र बात है कि यह प्रसाद छः दिन तक कमालिया ले जाते है और दस दिन तक राजपूत लेते हैं। सन्ध्या समय फिर पूजन होता है और उस समय का प्रसाद भी कमालिया और राजपूत अपनी-अपनी पारी के अनुसार ग्रहण करते हैं।

मन्दिर से सम्बद्ध कमालियो, कालडी के सोलंकी राजपूतो और पवैयों या हिजडो के बारे मे भी जान लेना चाहिये। कमालिया कहते हैं, भण्डासुर नामक प्रबल दैत्य इस जगल मे रहता था और सरस्वती नदी के किनारे बसे हुये ब्राह्मणों तथा सन्तो को दुःख देता था। उन्होने देवी से प्रार्थना की और उसने कमालियों को उत्पन्न किया। कालड़ी के सोलकी राजपूत अपने को अणहिलपुर पाटन के राजवंश से निकले बताते हैं। कहते हैं कि एक बार पाटण के चावड़ा और कालडी के सोलंकी राजाओ ने अपनी सन्तानों का वैवाहिक सम्बन्ध करने का निश्चय किया। दुर्भाग्य से दोनो ही राजाओं के कन्या उत्पन्न हुई। परन्तु, कालडी के राजा ने झूठमूठ अपनी लडकी को लडका बता कर चावडा की लड़की से विवाह करा लिया। अब, बडी कठिनाई पैदा हुई और लडका बनी हुई लड़की पाटन से भाग निकली। वह थोड़ी देर देवी के जगल मे रुकी। सयोग से उसकी कुतिया और घोडी बारी-बारी से तालाब के पानी मे कूद पडी और वे कुत्ता और घोड़ा बन गई। यह देख कर वह लड़की भी सरोवर मे उतरी और राजकुमार के रूप मे बदल गई। तब से ही कालड़ी के सोलंकी देवी के उपासक बन गए।

कुछ लोगों का कहना है कि कमालिया मुसलमान हैं। एक बार सुनी अल्लाउद्दीन का कोई सिपाही देवी के मन्दिर का मुर्गा पका कर खा गया परन्तु वह उसके पेट में से बेचर! बेचर! चिल्लाने लगा। अल्लाउद्दीन बहुत परेशान हुआ और उसने सोलंकी राजपूतों को बुलाकर देवी से प्रार्थना करने को कहा। उन्होंने इस शर्त पर प्रार्थना करना स्वीकार किया कि मुर्गा मारने वाले सिपाही ने मन्दिर में ही झाड़ू-बुहारी का काम करने को छोड़ दिया जाय। इस आदमी का नाम कमाल था। उसने अहमदाबाद की एक मुसलमान स्त्री से विवाह कर लिया और वही कमालियों का पूर्वज हुआ। ये लोग अब तक मुसलमानी रीति-रिवाजों को मानते हैं और मृतको को दफन करते हैं। कुछ भी हो, सोलंकी राजपूत और कमालिया दोनो ही देवी के पुरे चढ़ावे का दावा करने है और यह झगड़ा लगातार चलता ही रहा। और कोई उपाय न देख कर महाराजा सयाजीराव ने अग्नि परीक्षा करने विवाद निपटाने का

निश्चय किया। उन्होंने दोनों ही पक्षों को लोहे की गरम सलाख लेकर पांच कदम चलने को कहा। कमालिया इसमे खरे उतरे और राजपूत पीछे हट गए। यद्यपि परिणाम स्पष्ट था परन्तु संवत् 1907 (1851 ई.) मे राजपूतों ने कमालियों पर मन्दिर मे ही हमला करके उनमे से दस को मार दिया। इस पर महाराजा खंडेराव ने नया फैसला किया कि चढावे मे से दस आना हिस्सा राजपूत लें और छः आना कमालिया लें। इस निर्णय मे महाराजा मल्हारराव ने कुछ बाधा अवश्य डाली थी फिर भी यह इसी तरह चला आता है परन्तु कमालिया तो असन्तोष प्रकट करते हुए कुछ न कुछ आन्दोलन करते ही रहते है।

भेंट स्वरूप प्राप्त होने वाले नकदी, कपड़ा, गहने और मूल्यवान वस्तुओं के लिए यह नियम है कि पचास रुपये से अधिक मूल्य की चीजें तो देवी के लिए सुरक्षित रखी जाती है और बाकी गोलख मे जमा करा दी जाती है। इस गोलख (कोष) में से साधु-सन्तो और ब्राह्मणो को भोजन-सामग्री दी जाती है जिसकी चिट्ठी पर कमालिया, सोलंकी और गायकवाड़ के अधिकारियों की सही होती है। गोलख की वार्षिक आय लगभग पांच हजार रुपये होती है जिसमे से 3000 तो धर्मार्थ या सदाव्रत मे खर्च होते हैं और 2000 देवी के काम आते हैं।

पवैया या हिजड़े प्राकृतिक रूप से नपुंसक होने के कारण चुने जाते है परन्तु उनको बहुत थोड़ा हिस्सा मिलता है। विशेष अवसरो पर वे यात्रियो से हल्का-सा शुल्क वसूल करते हैं। पिछले दिनो गायकवाड़ सरकार ने इस कार्य में बड़ा व्यवधान उत्पन्न कर दिया था जिससे इन लोगों को तो दुःख हुआ परन्तु मानव समाज का बहुत उपकार हुआ।

प्रति मास की पूर्णिमा को माता का उत्सव होता है। उस दिन बेचराजी के भक्त आस-पास के गावों से यहां नियमित रूप से आते हैं। वे मानसरोवर मे स्नान करते हैं और देवी के प्रसाद चढाते है। आश्विन और चैत्र की पूर्णिमा को और दोनो नवरात्रों मे विशेष उत्सव होता है। इन अवसरो पर गरीब लोग कागज या भोडल की तथा राजपूत सरदार चांदी की आंगियां प्रसाद के साथ विशेष रूप से भेंट करते हैं। सस्ती आंगियां प्रसाद के साथ भक्तो मे वितरित कर दी जाती हैं। कभी-कभी लोग मनोतियां भी मानते हैं और अभीष्ट सिद्ध होने पर आंगी ले जा कर अपने बनवाये हुए मन्दिर में पधराते हैं।

आश्विन शुक्ला और चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन मन्दिर के सामने वेदी पर बलिदान होता है। वहा अग्नि प्रज्वलित करके भोजन-सामग्री और घृत से होम-हवन किया जाता है और शतचण्डी का पाठ होता है। समाप्ति पर आश्विन बदी
भैंसे की बलि दी जाती है। ब्राह्मणों एवं अन्य लोगों की भावनाओं ो े
इसलिए यह बलिकर्म रात्रि के समय चुपचाप सम्पन्न होता है। ि.५।
सामने एक पत्थर पर भैंसे को लाते हैं; इस स्थान को 'चाचर' कहते हैं।

खास तौर से अहमदनगर का तालुकेदार तो अपने ईडर वाले भाइयों का कट्टर दुश्मन था और बाद में तो उनकी यह शत्रुता बहुत बढ़ गई थी क्योंकि जब मोडासा का तालुकेदार निःस्संतान मर गया तो ईडर के महाराजा ने उस तालुके को वापस अपने राज्य में मिला लेने का हक जाहिर किया और अहमदनगरवाले ने कहा कि वही उसका असली हकदार था और उसका दूसरा कुअर ही वहा पर गोद बैठेगा।

ईडर के आठ पटायत (एक को छोडकर, जो चौहान है) राठौड़ हैं और उनके घराने जोधा, चांपावत, कूपावत या ऐसे ही अन्य नामो से प्रसिद्ध है, जो उन कुलों के मूलपुरुषों के नामों पर पड़े हैं—जैसे जोधपुर बसाने वाला जोधा, उसका भाई चांपा और भतीजा कूंपा तथा अन्य मारवाड के राजवंश के लोग। उनकी श्रेणियां बहुत सोच-समझकर पाबन्दी के साथ तय कर दी गई थीं और प्रत्येक को जो सम्मान प्राप्त था वह भी स्पष्ट रूप से नियमित कर दिया गया था। रूंडणी के कूंपावत का दर्जा सर्वोपरि था; चादी की छड़ी लेकर चोबदार उसके आगे चलता था और उसकी सवारी के आगे नौबत बजती थी; वह पालकी में बैठकर राजसी चंवर डुलवाने का भी अधिकारी था। उसकी जागीर महाराजा की ओर से वसूल होने वाले सभी करों से मुक्त थी और वह जब आता और जाता तो महाराजा गद्दी पर खड़े होकर उससे गले मिलते थे। दरबार में उसकी बैठक महाराजा के दाहिनी ओर पहले नम्बर पर थी। उसके सब से बड़े और महत्वपूर्ण दो विशेषाधिकार थे—जो यूरोपीय पाठकों को तो अजीब ही मालूम होंगे—कि वह अपने पैर में एक भारी सोने का कड़ा पहनता था और महाराजा के साथ बैठकर सुनहरी हुक्के से धूम्रपान करता था। मूहेटी का चौहान, बहुत बड़ी जागीर होने पर भी, सब से हल्की पदवी का पटायत था। उसको केवल इतनी ही प्रतिष्ठा प्राप्त थी कि महाराजा उसको ताजीम देते थे (उठ कर मिलते थे) और उसके आगे नौबत बजती थी।

प्रथम श्रेणी के उमरावों से दूसरे दर्जे का आदर बारहठजी को प्राप्त था जिनकी बैठक महाराजा की गद्दी के सामने थी और आते व जाते समय महाराजा उन्हें अभ्युत्थान का सम्मान देते थे।

अन्य भी बहुत से लश्करी जमींदार थे जिनको जिलों में बड़े पटायतों की ओर से जमीनें मिली हुई थीं; वे 'जिलायत' कहलाते थे। उनमें से कितनों ही को आते समय की ताजीम मिली हुई थी, परन्तु जाते समय की नहीं। उनमें से प्रत्येक के पास अधिक से अधिक दस घुड़सवार रहते थे, जो अपने जिले के पटायत के साथ सवारी में चलते थे।

रियासत के राजस्व-सम्बन्धी मामले सम्हालने वाला अधिकारी 'कारभारी' या दीवान कहलाता था। वह प्रायः वैश्य जाति का होता था। दूसरे कामकाज सरदारों में से किसी एक के अधीन होते थे, जो 'प्रधान' कहलाता था और उसको निरन्तर

महाराजा के हुजूर में हाजिर रहना पडता था। पटायतों सम्बन्धी कोई भी काम प्रधान की सम्मति के बिना महाराजा अकेले नहीं कर सकते थे। यदि किसी पटायत को बुलाने के परवाने पर महाराजा के ही हस्ताक्षर होते और नीचे प्रधान की सही न होती तो वह मान्य नहीं होता था और, इतना ही नहीं, उसे शंकास्पद भी माना जाता था।

पश्चिम की ओर खुला होने पर भी ईडरवाडा प्राय: सुरक्षित था। इस ओर बहुत से पहाड, नदियां और जगल हैं। जमीन उपजाऊ है और अनगिनती ग्रामों के वृक्ष यह प्रमाणित करते है कि कभी यहां पर काश्त होती थी; परन्तु अब अधिकांश भाग मे जगल छाया हुआ है।

महीकाठा परगने मे लूणावाडा की राजपूत रियासत थी परन्तु दुर्भाग्य से उसके कोई अभिलेख हमें उपलब्ध नहीं हुए। इसमे दांता के अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे ठाकुरों की जागीरें आ गई है (जिनमे से प्रत्येक के पास पन्द्रह सौ से तीन हजार तक योद्धा रहते थे और आस-पास के बड़े-बडे किलों में उनका सन्निवेश था)। इनमें से जो बडे-बड़े है वे चार या पाच जत्थों मे बांटे जा सकते हैं। आंवलियारा, लोहार और निरमाली के कोली ठाकुर तथा मांडुवा, पुनादरा और कराल के मकवाणा जमीदारों के पास वात्रक नदी के निकट कोई पन्द्रह वर्गमील क्षेत्रफल वाली भूमि थी। दूसरे जत्थे में कोलियों के नौ गांव आते है जो बीजापुर परगने मे साबरमती के किनारे पर स्थित है। इस जत्थे से लगती हुई ही दक्षिण में वरसोड़ा, माणसा और पेथापुर की राजपूत जागीरें थीं। बनास के पास ही काकरेज के आठ हजार और चुवाल के पांच हजार धनुषधारियों का प्रान्त सुदृढ़ और बलवान नहीं माना जाता था; बाद मे उन्होंने पड़ोस के लोगो को सताना भी बन्द कर दिया था।

मेवासियों अर्थात् उपद्रवी जातियों को दबा कर रखने के लिए मुसलमान बादशाहो द्वारा बनवाये हुए बहुत से बडे-बड़े किलो के खण्डहर अब तक भी प्रान्त के ऐसे भागो मे पडे देखे जाते हैं जहां बहुत कम लोगों का आना जाना होता है। जब मुस्लिम शक्ति पूरी बढ़ोतरी पर थी उस समय भी ये प्रयत्न बहुत प्रभावशील हुए हो, ऐसा नही लगता और मुगल साम्राज्य के पतन के समय मे तो यहां से लश्कर उठा ही लिए गये थे तथा यह भाग यहा के उपद्रवी निवासियो के हाथों मे खुला छोड़ दिया गया था। मरहठों के आगमन के बाद दशा बदल गई; उन्होंने न तो किले बनवाये और न सीधा शासन ही कायम करने का प्रयत्न किया वरन् वे तो अपने रिवाज के अनुसार कर वसूल करने के लिए तग करने वाले धावे करते रहे और जैसे-जैसे मौका मिला, कर की रकम बढ़ाते रहे।

मरहठो की मुलकगीरी करने वाली सेनाएँ वर्षा ऋतु मे तो जहां उपयुक्त

---

2. देखिए—बाम्बे गजेटियर, भा. 7 (बड़ोदा), प्रकरण 7.

जा चुका है, प्रशिक्षित सैनिकों का आदेशक था और इस प्रान्त का बन्दोबस्त करने के लिए तैनात किया गया था। फतहसिंह की मृत्यु के उपरान्त गायकवाड़ सरकार मे गड़बड़ी फैल गई और शिवराम की सफलताओं का प्रभाव बहुत कुछ नष्ट हो गया परन्तु 1804 ई० के लगभग रावजी आपाजी के चचेरे भाई रघुनाथ महीपतराव (काकाजी) ने पूर्ण व्यवस्था का पुनः संस्थापन किया और तब से, यद्यपि कहीं-कहीं गायकवाड़ सेना को पराभव का सामना करना पड़ा फिर भी उसके मार्ग मे सामान्यतया कहीं भी रोक पैदा नहीं हुई। ब्रिटिश सरकार ने पहले पहल 1813 ई० से महीकांठा के मामले मे दखलअन्दाजी शुरू की थी; उस समय मेजर बैलेन्टाइन ने कर्नल वॉकर द्वारा योग्यता पूर्वक निर्धारित रीति का ही अनुसरण किया और गायकवाड़ सरकार की तरफ से इस प्रान्त के सभी कर-दाता ठाकुरों के साथ ठहराव कायम किये। परन्तु, न जाने कोई भूल कैसे हो गई कि ये अनुबन्ध न तो बाद मे अमल में आये और न इन्हें कभी रद्द ही किया गया। इसके बाद ही, महीकांठा परगना गायकवाड़ सरकार के एक अफसर बच्चा जमादार के हवाले कर दिया गया। वह बड़ी भारी फौज रखता था और बड़ी लगन के साथ मरहठा सत्ता का निर्वाह करता था। उसने ठाकुरों से वसूल होने वाले खिराज की आमदनी को बहुत बढ़ा दिया था और खुला विद्रोह करने वालों को पूर्णतया दण्डित करता था; परन्तु, वह लूटपाट को रोकने मे असफल रहा। कोलियों द्वारा ब्रिटिश जिलों मे जो धावे किये जाते थे उनकी खुली शिकायतें निरन्तर गला फाड़-फाड़ कर की जाने लगी। 1818 ई० में जमादार की सेना का अधिकतम भाग अन्य प्रदेशों में सहायतार्थ भेजने के लिए बुला लिया गया और बाद मे सम्पूर्ण मरहठा सेना को वहां से हटा लेने के कारण महीकांठा प्रान्त अपनी पूर्व अव्यवस्थित स्थिति को प्राप्त हो गया। तीन वर्ष बाद, तत्कालीन बम्बई सरकार के कर्णधार (गवर्नर) मिस्टर एल्फिन्स्टन ने महीकांठा का दौरा किया और उसी के निर्देश से इस प्रान्त मे ब्रिटिश एजेन्सी कायम की गई जिससे बड़ोदा सरकार का खिराज शान्तिपूर्वक वसूल किया जा सके और प्रान्त मे व्यवस्था की स्थापना हो सके।[4]



4. बाम्बे गजेटियर, भा. 5, परिशिष्ट 'ए', पृ. 443 पर मिस्टर एल्फिन्स्टन की महीकांठा पर टिप्पणी पढ़िये।

प्रकरण दसवाँ

ईडर के महाराजा आनन्दसिंह-शिवसिंह-भवानीसिंह एवं गम्भीरसिंह

जोधपुर के राजा अजीतसिंह के विषय में ईडर के भाटों का कहना है कि वह बहुत विख्यात हो गया था। उसने (दिल्ली मे) सात शाहजादों को तख्त पर बैठाया और वापस उतार दिया। अन्त मे, उसने मोहम्मद शाह[1] को तख्तनशीन किया। सात दिन तक दिल्ली में अजीतसिंह की दुहाई फिरी और पांच बड़े-बड़े राजा उसकी शरण में आ गए- वे जयपुर, जैसलमेर, बहावलपुर, सिरोही और सीकर के राजा थे। बादशाह की तख्तनशीनी के बाद अजीतसिंह तीन वर्ष दिल्ली रहा और फिर कुंअर अभयसिंह को पांच हजार घुड़सवारों सहित शाही सेवा में छोड़ कर स्वयं जोधपुर चला गया।

एक दिन बादशाह अभयसिंह को यमुना मे नौकाविहार के लिए अपने साथ ले गया। नाव मझधार मे पहुंची तो बादशाह ने हुक्म दिया कि कुंअर को उठा कर नदी मे फेंक दिया जाय। अभयसिंह ने इसका कारण पूछा तो बादशाह ने कहा, 'अपने भाई बखतसिंह को लिखो कि वह अपने पिता का वध कर दे।" तब अभयसिंह ने भण्डारी रघुनाथ से बखतसिंह के नाम पत्र लिखवाया कि 'यदि तुम अजीतसिंह को तुरन्त मार डालोगे तो तुमको नागौर दे दिया जाएगा।' जब यह पत्र बखतसिंह के पास पहुंचा तो उसने आधीरात में अपने पिता का काम तमाम कर दिया।[2] रानियां सती

1. फर्रुखशियर के बाद मोहम्मद शाह सन् 1719 में गद्दी पर बैठा था। उससे पहले कई कठपुतली बादशाह तख्त पर बैठे जिनमे से कुछ ने तो कुछ सप्ताह ही राज्य किया।
2. इस कथा को विस्तार से पढ़ने के लिए टॉडकृत 'राजस्थान' (1920 ई० संस्करण) भा. 2; पृ० 1028; देखना चाहिए।
   महाराजा अजीतसिंह का स्वर्गवास आषाढ़ कृष्णा 13, संवत् 1780 को हुआ था। -टॉडकृत 'राजस्थान', पृ० 1029
   मिस्टर विलियम इरविन ने अपनी 'लेटर मुगल्स' नामक पुस्तक में मुसलमान इतिहासकार मुहम्मद हादी कामवर खां लिखित 'तज्किरात उस्सलातीन-ए-

→

होने को तैयार हुई ; वे अपने साथ अभयसिंह के छोटे भाइयों- आनन्दसिंह, रायसिंह और किशोरसिंह को भी ले गई कि जिससे, जोधपुर के रिवाज के अनुसार उनकी आंखें न निकाल ली जावें। जोधपुर के राजाओं का दाहस्थान मंडोवर में था। जब रानियां वहां पहुंची तो उन्होंने कुंअरों को सरदारों के हवाले कर दिया। रायसिंह और आनन्दसिंह तो चौहान रानी के पुत्र थे और किशोरसिंह भटियानी रानी का। चौहान सरदार मानसिंह और देवीदास तथा मानसिंह के कुंअर जोदावरसिंह ने इन राजकुमारों को सम्हाला। इन चौहानों के पास रोहीबा की जागीर का एक लाख का पट्टा था जिसको छोड़कर और राजकुमारों को साथ लेकर वे जोधपुर से पूर्व में पन्द्रह कोस पर चांदेला नामक गांव में चले गए। मारवाड़ में बडोद का ठाकुर मोहकमसिंह दस हजार रुपये का पटावत था। बखतसिंह ने उसको आज्ञा दी की वह राजकुमारों और चौहानों का पीछा करके उनका वध कर दे या उन्हें जिन्दा पकड़ लाए। इस आज्ञा का पालन करने के लिए वह आठ सौ घुड़सवार साथ लेकर चान्देला रवाना हुआ। उसका आगमन सुनकर वे तीनों सरदार कमर कस कर बैठ गए और मन्त्रणा करने लगे; बारह सौ सवार उनकी रक्षा के लिए चारों ओर खड़े थे। मोहकमसिंह उनके डेरे पर जाकर घोड़े पर से उतरा और उसने कुंअरों को मांगा। मानसिंह ने कहा "मुझे इन कुंअरों को सतियों ने सौंपा है, उसी तरह अब मैं मोहकमसिंह ! तुम्हें सौंपता हूं।" यह कहते हुए उसने एक कटार भी प्रस्तुत कर दी और फिर कहा "लो, यदि तुम इन्हें मारना ही चाहते हो तो अभी मार डालो।" यह सुनकर मोहकमसिंह ने कहा "ठाकुर, तुमने खूब किया, तुमने तो मुझे भी अपने साथ मिला लिया। अब तो, जो गति तुम्हारी होगी वही मेरी भी होगी, चलो।" इसके बाद ये चारों सरदार मारवाड़ में अड़ावला पर्वत में चले गए और बागी हो गए। उन्होंने अपने परिवारों को बीकानेर के देशनोक नामक चारणों के गांव में करणीमाता की शरण में छोड़ दिया- यह माता शरणागतों की रक्षा करने में बहुत समर्थ है।[3]

इस घटना से पहले ही गुणाला के पटायत चांपावत सवाई सिंह, मानसिंह और जीवणदास का महाराजा अजीतसिंह से झगड़ा हो गया था, इसलिए उनका सत्तर हजार का पट्टा जब्त कर लिया गया था। वे लोग भी वहां से निकल कर बागी हो कर अड़ावला में चले गये थे; उनके परिवार के लोग भी करणी माता की शरण में ही रहते थे। उन्हीं दिनों उन्होंने बादशाह के खजाने को लूट लिया जो अजमेर से

चगताई', के आधार पर लिखा है कि बखतसिंह द्वारा अजीतसिंह का वध इसलिए हुआ कि दिल्ली से लौटकर अजीतसिंह अपने अध्यम पुत्र बखतसिंह की स्त्री से प्रेम करने लगा था। - देखिए 'लेटरमुगल्स' - प्रकरण-7, भाग29; पृष्ठ 114-117-अनु॰

3 - कच्छ में माता की तूंबड़ी नामक गांव है; वहां कोई अपराधी जाता है तो अभय हो जाता है; ऐसी मान्यता अब तक चली आती है। गु॰ प॰

दिल्ली ले जाया जा रहा था। जब राजकुमार महावला पहुँचे तो चांपावतों ने वह खजाना अपनी सेवा सहित उनको समर्पित कर दिया। कुँअर आनन्दसिंह ने उनकी बात मान ली और मोहकमसिंह जोधा, मानसिंह चौहान और प्रतापसिंह चांपावत, इन तीनों से प्रतिज्ञा की कि उनकी स्वामिभक्ति के उपलक्ष मे राज्य प्राप्त होने पर पट्टा प्रदान किया जावेगा। तदनन्तर कुँअर और उनके साथी मारवाड़ पर छापे मारने लगे और यह कहावत तो अब तक प्रचलित है कि मानसिंह चौहान ने मरूभूमि को इस तरह मथ डाला जैसे देवताओं ने समुद्र-मन्थन किया था- 'मरू धरा मथी दधि जेम माने'।

जब अभयसिंह ने बादशाह के डर से बखतसिंह को अपने पिता का वध करने को पत्र लिख दिया तो बादशाह ने उसको नौ मोहरो वाला पट्टा करके ईडर का परगना बख्श दिया। अभयसिंह का कुलपुरोहित जग्गूजी वह पट्टा लेकर दिल्ली से जोधपुर जा रहा था, तभी बागियो ने उसे पकड़ लिया और महावला ले गए। तब उस ब्राह्मण ने उनको ईडर का पट्टा अभयसिंह के नाम बख्शीश हो जाने का हाल कहा और शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की कि यदि वे उसे दिल्ली चले जाने देंगे तो वह पट्टा वापस आकर उनको दे देगा। उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उसने अभयसिंह के पास जाकर कहा कि उसके भाइ मारवाड़ को लूटकर बरबाद कर रहे थे इसलिए जोधपुर के बाईस परगनों मे से एक की एवज ईडर का पट्टा उनको दे दिया जाए। अभयसिंह ने पट्टा उसको दे दिया और वह महावला लौट गया।

उस समय, संवत् 1785 (1729 ई.)[4] में ऊदावत लालसिंह, जो बोरसद के नवाब के यहां तीन सौ सवारों के साथ नौकरी देता था, छुट्टी मे मारवाड़ जा

4. मेजर माइल्स उस समय महीकांठा का राजनीतिक अधिकारी था। उसकी 21 सितम्बर, 1821 ई की टिप्पणी का कुछ अंश इस प्रकार है—

संवत् 1785 मे जोधपुर के राजा के भाई आनन्दसिंह और रायसिंह ने थाण और पालनपुर के कुछ घुड़सवारों और गड़वाड़ा के कोलियों को साथ लेकर ईडर पर अधिकार कर लिया। इसके लिए उन्हें अधिक कठिनाई भी नहीं भोगनी पड़ी। कहते हैं कि उनके पास दिल्ली मे प्राप्त आज्ञा पत्र था, परन्तु सच्ची बात तो यह लगती है कि इस प्रदेश की दशा देख कर ही वे इधर आए और यह भी सम्भव है कि मारवाड़ के राजाओं ने भी, जो उसी समय अहमदाबाद की सूबेदारी पर थे, उनकी इमदाद की हो। कुछ वर्षों बाद, ऊपर जिन देसाईयों का जिक्र आया है (और जिनको ईडर पर कब्जा करने के बाद मुरादबख्श ने वहां गुरुआर्थ नियुक्त किया था) उनको मारवाड़ियों ने निकाल दिया तब उन्हीं के द्वारा प्रेरित हो कर दामाजी गायकवाड़ के पास रहा हुआ वच्चाजी देवाजी नामक एक अधिकारी पेशवा की तरफ से ईडर पर अधिकार करने को भेजा

रहा था। ईडर पहुंच कर उसने रमणेश्वर सरोवर पर डेरा किया। उसी समय देसाई उससे मिलने आए और उन्होंने ईडर का स्वामी बन जाने का प्रस्ताव किया। लालसिंह ने कहा 'बादशाह ने ईडर अभयसिंह को बख्श दिया है इसलिए मैं तो इसे ले नहीं सकता, परन्तु आनन्दसिंह और महाराजा के अन्य भाईयों को ले आता हूं जो आजकल बाहरवाट हो रहे हैं।' देसाईयों ने यह बात मान ली और उसने अहमदनगर में जाकर सभी वृत्तान्त कह सुनाया। इस बीच में जेठावत उदेरामजी और कूंपावत अमरसिंह भी राजकुमारों की सेवा में आ गए थे इसलिए अब वे पांच हजार सवार साथ लेकर रोहीडा के घाटे की तरफ रवाना हुए जो सिरोही प्रान्त में हो कर ईडर का रास्ता है। पोसीना के बाघेला ठाकुर ने, जो राव[5] का पटावत था, मार्ग रोक लिया और कहा 'मैं राजकुमारों को आगे नहीं जाने दूंगा क्योंकि रावजी ने अभी तक ईडर पर अपने अधिकार का दावा छोड़ नहीं दिया है।' अन्त में, इस बात पर समझौता हुआ कि आनन्द सिंह उस ठाकुर की पुत्री से विवाह कर लें और पोल के राव से प्राप्त जागीर के अतिरिक्त बारह गांवों का पट्टा भी बाघेला को दें। इसके अनुसार घनाल के गांव उस ठाकुर के हवाले किये गये और आनन्दसिंह ने उसकी पुत्री से विवाह कर लिया तब सेना पोसीना पहुंची। राजकुमारों ने उसी स्थान पर देसाईयों को बुलाया और उनसे सभी बातें तय हो गईं तब सेना ईडर की ओर बढ़ी और फागुन सुदि 7, संवत् 1787 (1731 ई.) के दिन वहां प्रवेश किया। उसी

गया और वह भूतपूर्व राव का सेवक रह कर राजपूतों की सहायता से सफल भी हुआ। ईडर पुनः प्राप्त करने के झगड़े में आनन्दसिंह संवत् 1809 (1753ई.) के लगभग मारा गया और बख्ता जी अपनी सेना का कुछ भाग वहां छोड़ कर अहमदाबाद लौट गया। तब रायसिंह ने पुनः सेना एकत्रित की और ईडर पर अधिकार कर लिया। वह संवत् 1822 (1766 ई.) में मर गया। शिवसिंह अपने पिता की गद्दी पर बैठा और कहते हैं कि उसने चालीस वर्ष राज्य किया। शिवसिंह के पांच पुत्र थे—भवानीसिंह (या लाल जी) उसके बाद राजा हुआ; संग्रामसिंह को अहमदनगर का पट्टा मिला; जालिम सिंह को मोड़ासा प्राप्त हुआ; इन्दर सिंह को कोई जागीरी नहीं मिली; और अमर सिंह को गोरवाड़ का पट्टा मिला। अपने पिता की मृत्यु के बाद भवानीसिंह ने केवल एक मास ही राज्य किया और उसके बाद उसका पुत्र गम्भीर सिंह संवत् 1849 (1793ई.) में गद्दी पर बैठा, जो वर्तमान राजा है; गम्भीर सिंह के एक पुत्र है जिसका नाम उम्मेद सिंह (या लालजी) है और उसकी अवस्था 20 वर्ष के लगभग है।

5. यह ईडर का राव बख्ता पश्चित था, जिसके विषय में भाग 2, प्रकरण 10 में लिखा जा चुका है। कथासूत्र को पकड़ने के लिए पाठकों को उसे पढ़ना चाहिए।

वर्ष महाराजा अभयसिंह अहमदाबाद आए थे। बाद में, अभयसिंह और ईडर के महाराजाओं में मेल हो गया और उसने उनके लिए ईडर का पट्टा ही दिल्ली से प्राप्त नही किया वरन् बीजापुर और परांतीज के पट्टे भी उन्ही को दिला दिये। जब तक अभयसिंह रहा ईडरवालो को अहमदाबाद मे कोई रकम नहीं जमा करानी पडी।[6]

---

6. यहां मूल लेखक (फार्बस) ने टॉडकृत 'राजस्थान' भा. 3 पृ 1828 से महाराजा जयसिंह (जयपुर) का महाराणा संग्रामसिंह के नाम एक पत्र उद्धृत करके संदेह प्रकट किया है कि इस पत्र से वास्तविकता की सगति नही बैठती। गुजराती अनुवादक ने भी उस पत्र का अनुवाद ही दिया है।

'वीर विनोद' में इस प्रसग से सम्बद्ध चार पत्र मिलते हैं जो महाराजा जयसिंह और महाराजा अभयसिंह ने उदयपुर के महाराणा संग्राम सिंह को लिखे थे। इनसे वास्तविकता जानने मे सहायता मिलेगी इसलिए हम यहां उन्हें उद्धृत कर रहे हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि वीरविनोद के कर्ता कविराज श्यामल दास ने उदयपुर के पुरालेखों को प्रत्यक्ष देख कर इतिहास लिखा है अतः ये पत्र अधिक प्रामाणिक और मूल के परिचायक हैं—अनु.

महाराजा सवाई जयसिंह का खरीतह्

श्रीरामजी

सीतारांमजी

सिध श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामस्यंघ जी जोग्य, लिषतं राजा जयस्यघ केन मुजरो अवधारिज्यो, अठा का समांचार श्री जी की क्रिपा सौं भला छै, आपका सदा भला चाहजे, अप्रच. आप बड़ा छो, हिंदुस्थान में सरदार छो, अंठा-बैठाका व्योहार मे कही बात जुदायगी न छै, मैंठै घोड़ा रजपूतछै सो आपका कामनै छै, इं तरफ कामकाज होय सो लिषावता रहोला; अर ऊदैपुर मैं म्हे आपकी हजूरि छा तब आप म्हाने या बात फुरमाई छी, जो मेवाड तो घर छै अर ईडर मेवाड़ को आगण छै, इंका लेवा की तलास रषावोला; सो वैं ही दिन सौं म्हे तलास में छा; अर अब भी ई काम के वास्तै मयारांम ऊकील नै आपको लिष्यो आयो, सो दलपत राय म्हानै वजनसि बचायो; सौ परि म्हे महाराजा अभैस्यंघजी ने समझाय व्योरो कह्यो, सो यां भी कबुल करी, अर प्रगनो ईडर को आपकी नजरि कीयो, सो पत याको ईही मतलब को लिषाय भेज्यो छै, सो पहुंचैसो, अर महाराजा अभैस्यंघ जी या अरज करी छै, जो आप जतन असो करावोला, अणदस्यघ बैठासौं जीवतो नीकलै नहीं, मार्‌यो ही जाय, वैंने मार्‌यां बिना राजको बदवसत कठणि छैः सो यांका राजका बंदवसत को तो फिकर आपनै छै ही, तीस्यो म्हे भी या ही अरज करां छां, प्रथम तो ई काम के वास्तै श्री

सिंधुवा राग गवरीजता शोहला,
धीर रण धकावतो पाव धरता ।
यूरता कूरता वहे पोधा थका,
कमध मछरीक भ्रर भीक करता ॥ 3
गढपति सरग भाणेज मामो गया,
फरण गर्भवास रा टाल फेरा ।
मुह चढे लडेवा भ्रावेया मांडहा,
करां वाखाण चहुंवाण केरा ॥ 4

महाराजा भ्रानन्दसिंह की रानियां सोनिगरी भ्रौर वाघेली दोनो सिरोही राज्य मे रोहीड़ा नामक गाव को लौट गईं भ्रौर वहा सती हो गईं । उनके साथ ही एक दासी भी जल मरी । उनकी छतरियां भ्राज भी रोहीड़ा मे मौजूद है ।

जब यह खबर महाराजा रायसिंह के पास बोरसद पहुंची तो उसने ईडर पर चढाई करने की तैयारी की । पहले तो उसने मूनिया नामक गांव मे भ्रपना जमाव जमाया भ्रौर वहा चार महीने रह कर ईडरवाडा में लूटपाट करता रहा परन्तु ईडरगढ पर भ्राक्रमण करने का उसका दाव नही लगा । भ्रन्त मे, उसने बीजापुर के केसरीसिंह, दावड के भ्रनोपसिंह भ्रौर दो बारहठों को भेज कर साबरकांठा के ठाकुरो को, जो राव के पक्ष मे थे, फोड़ने का मेल रचा । इसके भ्रनुसार बारहठों ने जा कर उन ठाकुरों को इस बात पर राजी कर लिया कि जब लड़ाई हो तो वे भ्रपनी बन्दूकों के थोथे वार करें । भ्रब, रायसिंह मूनिया से वाडोली गया भ्रौर वहा पर उसने दस हजार (मारवाड़ी) फौज जमा कर ली । नामक भ्रौर भाटी कसवातियो को भी उसने जागीर भ्रौर पट्टा देने का लोभ देकर राव का साथ छोड़ देने के लिए राजी कर लिया यद्यपि वे फिर भी यही कहते रहे कि वे नगर की रक्षा करेंगे । इसके बाद रायसिंह ईडर पर चढ़ा भ्रौर नगर के चारों भ्रोर सेना का घेरा डाल दिया । वह स्वयं, मानसिंह चौहान, कुंभर जोरावरसिंह, जोधा मोहकमसिंह, चापावत प्रतापसिंह, सवाईसिंह, मानसिंह भ्रौर जीवनदास के साथ 'मदारशाह की टूंक' नामक पहाड़ी पर चढ़ गया,[9] जहा से ईडर नगर दिखाई देता है । फिर, वहा से वे लोग शहर मे उतर गये

सिन्धु राग (युद्ध का राग) मे सोहेला गवाते हुए वे धीर युद्ध को भ्रागे बढ़ाते हुए पैर धरते थे, शत्रुभ्रो को कुचलते हुए मदमस्त ... के समान (बने हुए) कमध (राठोड़) भ्रौर मछरीक ...) धम(...
मुंह चढे (गर्भों के द्वारा(... वे मे ... (गवरी) पर भ्राये थे परन्तु गर्भवास (... दि... की रीति को टालकर वे ....

9. उनके साथ 1300 ...

जहां कसबातियो ने बिना सामना किये उनको अन्दर आ जाने दिया। इसके बाद सरदारो ने महाराजा से पूछा 'अब क्या किया जाय ?' तो उसने कहा 'मामा मानसिंह से पूछो, सेना का सरदार तो वही है।" मानसिंह ने सलाह दी कि कसबातियों को मार देना चाहिए जिससे निष्कण्टक राज्य का उपभोग किया जा सके। अतः मारवाड़ियों ने हमला कर के लगभग एक हजार कसबातियों को मार डाला। बाद में उन्होंने किले पर आक्रमण किया और कुछ रहवरों को मार कर उस पर अधिकार कर लिया। रावजी प्राण बचाकर पोल भाग गया और रहवर भी अपने अपने ठिकाने चले गए। उसने कुल आठ महीने तक ईडर का राज भोगा।

आनन्दसिंह महाराजा का शिवसिंह नामक छः वर्षीय पुत्र था। रायसिंह ने उसी को गद्दी पर बिठाया और स्वयं मुसाहब की तरह काम करने लगा।

इसके बाद महाराजा रायसिंह ने रणासन के ठाकुर उदैसिंह पर हमला किया; ज्यों ही वह रवाना हुआ तो एक भील फौज के सामने आकर उससे मिला। उसने कहा, 'ठाकुर तो मर गया है और उसका पुत्र गद्दी पर बैठ गया है।' जब महाराजा ने यह सुना कि उसका शत्रु उसके हाथ से न मारा जाकर अपनी मौत ही मर गया है तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने खबर लाने वाले को ही तीर से मार डाला। फिर उसने रणासन की तरफ बढ़ कर नगर को घेर लिया। नवयुवक ठाकुर अपने सोलंकी बहनोई के पास लूणावाडा भाग गया। महाराजा डेढ़ महीने तक रणासन रहकर लौट आया; उसने जागीर के चौबीसों गांव खालसा कर लिये और वहां पर कुम्भा भाटी के अधीन अपना थाना बैठा दिया। रणासन पांच वर्ष तक ईडर के अधिकार में रहा परन्तु रहवर निरन्तर कुछ न कुछ उपद्रव करते रहते थे इसलिए दशोतर आदि बारह गांव खालसे में रखकर बाकी बारह उनको लौटा दिये गये।

उस समय रहवरों और राठौड़ों में जो युद्ध हुआ उसका गीत इस प्रकार है—

गीत×

निश दिह नगारा ध्रोह मटे नह, धड ओवारा नके घटे;
नत फौजा गजबंध मटे नह, मारूरे ना धंध मटे। 1
आफलते वढते दन आखो, चडते पडते खेत चडे;
पडिया पाखे सांझ न पडसी, पडे घणा तद सांझ पडे। 2

X रात दिन नगाड़ों का धमकारा (बजना) नहीं मिटता है (बन्द नहीं होता है) परन्तु योद्धाओं के धड़ (समूह, संख्या) कम नहीं हैं। नित्य ही गजपंक्ति वाली सेना में कोई कमी नहीं आती और न मारवाड़ियों का युद्धव्यापार ही मिटता है (अथवा, मारू बाजों की धूमधाम बन्द नहीं होती)॥ 1 ॥
आफलते (उत्साहित होते) और लड़ते हुए ही पूरा दिन बीतता है, वे चढ़ते हैं, पड़ते हैं और रणक्षेत्र में ही बने रहते हैं; किसी के मरे बिना सांझ (सन्ध्या) नहीं पड़ती, जब बहुत से मर जाते हैं तभी संध्या होती है॥ 2 ॥ →

सिंधुवा राग गवरीजतां शोहला,
धीर रण धकावतो पाव धरता ।
थूरता कूरता वहे पीधा थका,
कमध मछरीक ग्रर भीक करता ।। 3
गढपति सरग भाणेज मामो गया,
फरण गर्भवास रा टाल फेरा ।
मुह चढे लडेवा ग्राचेया माडहा,
करो वाखाण चहुंवाण केरा ।। 4

महाराजा ग्रानन्दसिंह की रानिया सोनिगरी ग्रौर बाघेली दोनो सिरोही राज्य मे रोहीड़ा नामक गाव को लौट गई ग्रौर वहा सती हो गई । उनके साथ ही एक दासी भी जल मरी । उनकी छतरिया ग्राज भी रोहीड़ा मे मौजूद है ।

जब यह खबर महाराजा रायसिंह के पास बोरसद पहुंची तो उसने ईडर पर चढ़ाई करने की तैयारी की । पहले तो उसने मूनिया नामक गांव मे 'ग्रपना जमाव जमाया ग्रौर वहा चार महीने रह कर ईडरवाडा मे लूटपाट करता रहा परन्तु ईडरगढ पर ग्राक्रमण करने का उसका दाव नही लगा । ग्रन्त मे, उसने बीजापुर के केसरीसिंह, दावड के ग्रनोपसिंह ग्रौर दो बारहठों को भेज कर साबरकांठा के ठाकुरों को, जो राव के पक्ष मे थे, फोडने का मेल रचा । इसके ग्रनुसार बारहठों ने जा कर उन ठाकुरों को इस बात पर राजी कर लिया कि जब लडाई हो तो वे ग्रपनी बन्दूकों के घोथे वार करें । ग्रब, रायसिंह मूनिया से वाडोली गया ग्रौर वहा पर उसने दस हजार (मारवाड़ी) फौज जमा कर ली । नायक ग्रौर भाटी कसबातियो को भी उसने जागीर ग्रौर पट्टा देने का लोभ देकर राव का साथ छोड़ देने के लिए राजी कर लिया यद्यपि वे फिर भी यही कहते रहे कि वे नगर की रक्षा करेंगे । इसके बाद रायसिंह ईडर पर चढा ग्रौर नगर के चारों ग्रोर सेना का घेरा डाल दिया । वह स्वयं, मानसिंह चौहान, कुंग्रर जोरावरसिंह, जोधा मोहकमसिंह, चांपावत प्रतापसिंह, सवाईसिंह, मानसिंह ग्रौर जीवनदास के साथ 'मदारशाह की टूंक' नामक पहाडी पर चढ़ गया,[9] जहा से ईडर नगर दिखाई देता है । फिर, वहा से वे लोग शहर में उतर गये

सिन्धु राग (युद्ध का राग) मे सोहेला गवाते हुए ये धीर युद्ध को ग्रागे बढाते हुए पैर धरते थे, शत्रुग्रों को कुचलते हुए मदमस्त हाथी के समान (बने हुए) कमध (राठौड) ग्रौर मछरीक (चौहान) चल रहे थे ।। 3 ।।

मुंह चढे (सभी के द्वारा प्रशंसित) लाडले वे मामा ग्रौर भांजा मारे (जबरी) पर ग्राये थे परन्तु गर्भवास (जन्म मरण, संसार में ग्रावागमन) के फेरे फिरने की रीति को टालकर वे गढपति (सीधे) स्वर्ग मे चले गए ।। 4 ।।

9. इनके साथ 1300 ग्रादमी चढ़े थे । गु. प्र.

जहां कसवातियो ने बिना सामना किये उनको अन्दर आ जाने दिया। इसके बाद सरदारों ने महाराजा से पूछा 'अब क्या किया जाय ?' तो उसने कहा 'मामा मानसिंह से पूछो, सेना का सरदार तो वही है।" मानसिंह ने सलाह दी कि कसवातियो को मार देना चाहिए जिससे निष्कण्टक राज का उपभोग किया जा सके। अतः मारवाड़ियो ने हमला कर के लगभग एक हजार कसवातियो को मार डाला। बाद मे उन्होने किले पर आक्रमण किया और कुछ रहवरो को मार कर उस पर अधिकार कर लिया। रावजी प्राण बचाकर पोल भाग गया और रहवर भी अपने अपने ठिकाने चले गए। उसने कुल आठ महीने तक ईडर का राज भोगा।

आनन्दसिंह महाराजा का शिवसिंह नामक छः वर्षीय पुत्र था। रायसिंह ने उसी को गद्दी पर बिठाया और स्वय मुसाहब की तरह काम करने लगा।

इसके बाद महाराजा रायसिंह ने रणासन के ठाकुर उदेसिंह पर हमला किया; ज्यो ही वह रवाना हुआ तो एक भील फौज के सामने आकर उससे मिला। उसने कहा, 'ठाकुर तो मर गया है और उसका पुत्र गद्दी पर बैठ गया है।' जब महाराजा ने यह सुना कि उसका शत्रु उसके हाथ से न मारा जाकर अपनी मौत ही मर गया है तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने खबर लाने वाले को ही तीर से मार डाला। फिर उसने रणासन की तरफ बढ कर नगर को घेर लिया। नवयुवक ठाकुर अपने सोलकी बहनोई के पास लूणावाडा भाग गया। महाराजा डेढ महीने तक रणासन रहकर लौट आया; उसने जागीर के चौबीसों गाव खालसा कर लिये और वहां पर कुम्भा भाटी के अधीन अपना थाना बैठा दिया। रणासन पांच वर्ष तक ईडर के अधिकार मे रहा परन्तु रहवर निरन्तर कुछ न कुछ उपद्रव करते रहते थे इसलिए दशोतर आदि बारह गाव खालसे मे रखकर बाकी बारह उनको लौटा दिये गये।

उस समय रहवरो और राठौडों मे जो युद्ध हुआ उसका गीत इस प्रकार है—

गीत[×]

निश दिह नगारा धोह मटे नह, धड जोधारा नके घटे;
नत फोजां गजबंध घटे नह, मारूरे ना धंध मटे। 1
आफलते वडते दन आखो, चडते पडते खेत चडे,
पडिया पाखे सांझ न पडसे, पडे घणा तद सांझ पडे। 2

× रात दिन नगाडो का धमकारा (बजना) नही मिटता है (बन्द नहीं होता है) परन्तु योद्धाओ के धड़ (समूह, सख्या) कम नहीं हैं। नित्य ही गजपति वाली सेना मे कोई कमी नही आती और न मारवाडियो का युद्धव्यापार ही मिटता है (अथवा, मारू बाजों की धूमधाम बन्द नही होती) ॥ 1 ॥

आफलते (उत्साहित होते) और लड़ते हुए ही पूरा दिन बीतता है, वे चढ़ते हैं, पड़ते हैं और रणक्षेत्र मे ही बने रहते हैं; किसी के मरे बिना सांझ (सन्ध्या) नहीं पड़ती, जब बहुत से मर जाते हैं तभी संध्या होती है ॥ 2 ॥ →

दल जूटे जल वोल दहू दश, भाभा तीर पाखर रमझोल;
वेदि करे मटशे कालो ? घर ईंडर घाल्यो धमरोल । 3
ग्रावध भलां के भला ग्रभाभल, सोहए भला के भला सथ;
रेहेवर भला के भला राठवड, हेमर भला के भला हय । 4
धाहां पडे उपडे धमसां, राहां खडे न कांम रडे;
मोह पडे भडे दल सामा, धरती होय न कडे धडे । 5

शिवसिह को ईडर मे छोड कर रायसिह मोडासा मे रहने लगा। वही उसने अपने रहने के व जनाने के लिए महल बनवाये। पाच वर्ष बाद, जनकोजी की स्त्री की अध्यक्षता मे एक मरहठा सेना पूना से ग्राई ग्रौर कर मागने लगी। उस फौज मे पन्द्रह हजार सिपाही थे परन्तु रायसिह ने कर देने से साफ इन्कार कर दिया। फौज की ग्रध्यक्षा ने महाराजा को कहलाया, "सुना है ग्राप बहुत सुन्दर हैं, यदि ग्राप मुझ से ग्रा कर मिलें तो मैं ग्रापको कर माफ कर दूगी।" रायसिह ने कहा, "मैं रूपवान तो नहीं हूं परन्तु एक ग्रच्छा तीरन्दाज जरूर हूं।" फिर उसने, विनोद मे, उस दूत से कहा, "बोलो, यह जो किले की दीवार के नीचे मरहठा भिश्ती भैंसे पर पखाल ले जा रहा है उसकी पखाल ग्रौर भैंसा एक ही तीर से बीधा जा सकता है या नहीं ?" यह कह कर उसने तीर चलाया ग्रौर वह भरी हुई पखाल ग्रौर पशु दोनों के पार निकल गया। भिश्ती ने दौडकर लश्कर में बुरी तरह से पीटकर फरियाद की तो मरहठों ने पूरी ताकत से हमला बोल दिया। किले में केवल एक सौ पचास मारवाडी दिनेदार ही थे; वे मरते दम तक लडते रहे परन्तु रायसिह ने ग्रपनी स्त्री को ग्रपने पीछे घोडे पर बिठा कर साफे से ग्रपने शरीर के साथ बांध लिया और वह रायगढ के किले मे चला गया। ग्रणापट नामक खालसा गाव के पास उसने ही यह दुर्ग बनवाया था। वहां दो या तीन दिन रहकर वह ईडर चला गया।

दोनों ग्रोर से जल की तरगों के समान ग्रा ग्रा कर दल (सेनाए) जुटते हैं, बहुत से तीरों ग्रौर पाखरों के टूटने से कोलाहल (रमझोल) मच रहा है; हे काले (कृष्ण) ! ईडर की धरा पर व्याप्त यह धमरोल (उत्पात या बवण्डर) कब मिटेगा ? । 3 ॥

(मैं किसकी प्रशंसा करूं ?) ग्रायुध (शस्त्रास्त्र) भले (ग्रच्छे) हैं या (उनको धारण करने वाले) योद्धा ?, सरदार ग्रच्छे हैं या उनके साथी ?, रेहेवर भले हैं या राठौड ? हयवर (घोडे) ग्रच्छे हैं या हाथी ? (सभी एक से एक बढ़कर हैं) ॥ 4 ॥

जब घमासान मचता है तो ग्रास फंस जाता है, रास्ते रुक गए हैं, काम काज बन्द हो गए हैं; सरदार पड़ जाता है तो उसका दल सामने लड़ता है परन्तु यह [illegible] ॥ 5 ॥

जब मरहठो ने मोडासा लिया तब जीवणदास चापावत तो झगड़े मे काम आ गया परन्तु उसका भाई प्रतापसिंह घायल होकर खेत में गिर गया। मरहठों ने समझा कि वही महाराजा है इसलिए उसे एक पालकी मे डालकर अहमदाबाद ले गए। वहां पर उसे कैद मे रखा गया। कुछ समय बाद उसकी फिरौती के लिए उन्होंने अस्सी हजार रुपये मागे। यह रकम ईडर के खजाने से ऊंटों पर लाद कर अहमदाबाद के लिए रवाना की गई। परन्तु, जब यह लदान पेथापुर पहुंचा तो रास्ते मे ही किसी तरह बच कर कैद से निकला हुआ ठाकुर सामने मिल गया और वह उस धन को वापस ईडर ले आया। रायसिंह ने कहा कि यह रकम प्रतापसिंह के निमित्त खजाने मे निकाली गई है इसलिये वही इसको रखे। प्रतापसिंह ने कहा, 'जब महाराजा मेरे लिए सब कुछ प्रबन्ध करते हैं तो मुझे धन की क्या आवश्यकता है?' यह कहकर उसने धन लेने से इन्कार कर दिया। अन्त मे, सरदारो ने कह सुन कर निपटारा किया कि आधा धन तो प्रतापसिंह को दे दिया जाय और आधा वापस खजाने में जमा कर दिया जाय।

कवि कहता है कि संवत् 1797 (1741 ई.) मे महाराजा ने अपने साथियों को पट्टे दिये। मूडेटी का पट्टा मानसिंह चौहान को, चादणी का चापावत सवाईसिंह को, महू का चापावत प्रतापसिंह को, घाटियाल का जैतावत उदैरामजी को, टीटोई का कूपावत अमरसिंह को, वडियावी का कूंपावत बहादुरसिंह को, मेरामण (वेरणा) का जोधा इन्दरसिंह को और भाणपुर का ऊदावत लालसिंह को प्रदान किया गया। उस समय रायसिंह और शिवसिंह दोनो ही ईडर की गद्दी पर बैठते थे। सरदारो ने विचार किया कि एक म्यान मे दो तलवारें नही समा सकतीं इसलिए कभी न कभी दगा हो सकता है। इस विषय पर विचार करने को वे सब चौहान की हवेली में एकत्रित हुए कि इन महाराजाओं को अलग-अलग किस तरह किया जाय क्योंकि शिवसिंह भी अब ग्यारह वर्ष का हो चुका था। अन्त में, सब ने एकमत होकर कूपावत अमरसिंह को ही महाराजा रायसिंह के पास भेजा। उसने कहा, "महाराज ! गुनाह माफ हो, मैं कुछ कहना चाहता हूं।" रायसिंह ने कहा, "कहो, क्या कहते हो?" तब ठाकुर बोला, "सब लोग कहते है कि एक म्यान में दो तलवार नहीं समा सकती, और न एक गद्दी पर दो राजा ही एक साथ बैठ सकते हैं। इसलिए हुजूर को किसी दूसरी जगह पधार जाना चाहिए।" रायसिंह ने कहा, "तुम्हारे सिवाय और किसी ने तो मुझे ऐसा नहीं कहा; खैर, हम दोनों ही को ईडर राज्य छोड़ देना चाहिए।" इसके बाद रायसिंह तो रायगढ लौट गया और अमरसिंह मारवाड चला गया; उसका टीटोई का पट्टा चापावत मानसिंह के नाम कर दिया गया।

महाराजा रायसिंह के कोई पुत्र नही था, एक पुत्री बाई ऐजनकुंवरी थी जो जयपुर के महाराजा माधवसिंह को ब्याही थी।

अमरसिंह का मारवाड मे पट्टा प्राप्त करने का प्रयत्न सफल नहीं हुआ इसलिए वह छ वर्ष बाद ईडर लौट आया तब उसको मणीयाल का पट्टा भेंट कर

दिया गया। उसके दो पुत्र थे, शेरसिंह और धीरतसिंह। इन दोनों ही ने महाराजा शिवसिंह की इतनी अच्छी चाकरी की कि उसने प्रसन्न हो कर इनको बूकडिया और ऊडणी के पट्टे प्रदान किए। महाराजा शिवसिंह ने और दूसरे लोगो को भी पट्टे इनायत किए। चापावत प्रतापसिंह के पौत्र फतेहसिंह और खुमाणसिंह को मुहू और वाकानेर की जागीरें दी तथा दूसरे राजपूतों को भी जमीनें दी, जो अन्य सरदारो के जिलायत बन गए।[10]

जब संवत् 1844–45 (1788–89 ई०) में आपा साहब की अध्यक्षता में गायकवाड की सेना, रावजी और रहबरो के साथ आकर ईडरवाडा में लूटमार करने लगी तो ये सभी सरदार अपने-अपने परिवारो को लेकर पहाड़ियो मे चले गए। अन्त मे, वे सब दांता और पोसीना के बीच मे घूंवा नामक पहाड़ी पर एकत्रित हुए; वहा जाने के लिए एकमात्र बहुत सकरा रास्ता है। उसी रास्ते होकर वे रात को आक्रमण करके गायकवाड की सेना मे लूटमार किया करते थे। जब सेनाने घूंवा पर चढाई की तो सरदार लोग ईडर के उत्तरपूर्व मे मेवाड़ के पानोरा नामक स्थान पर भाग गए। मरहठो ने मूंडेटी पर हमला करके उस क्षेत्र के सभी गावो को लूट कर उनमे आग लगा दी, साथ ही पोसीना, मुहू, चादणी और अन्य परगनों के गावों का भी यही हाल किया। अन्त मे, उन्होंने ईडर की ओर भी कदम बढ़ाये और महाराजा शिवसिंह पर चढाई करने के लिए रमलसर तालाब पर पड़ाव डाला। उन्होंने महाराजा के पास सन्देश भेजा कि अगर यह तुरन्त ही बातचीत के लिये नही आया तो ईडर को नष्ट कर दिया जायेगा। इस पर महाराजा पाच कुंअरो के साथ मरहठो की छावनी मे गया। मरहठा सेनापति ने कहा, "आधा मुल्क हमारे हवाले करने के इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर करो वरना हम सारी रियासत को बरबाद कर देंगे।" अपने इस दावे के लिए उन्होंने दलील दी कि शिवसिंह आनन्दसिंह का वारिस था और रायसिंह निःसन्तान मर गया इसलिये उसका आधा हिस्सा मरहठो को वापस चला जायेगा क्योकि उस पूरी रियासत पर दोनो महाराजाओं ने मिल कर अधिकार किया था। यह सुनकर महाराजा ने बहुत अनुनय विनय की परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। उलटी यह धमकी और दी गई "अगर तुम हमारा कहना नही मानोगे तो तुमको पकड़ ले जाएंगे और ईडर पर मरहठा थाना कायम कर दिया जायेगा।" इस पर महाराजा ने डर कर कहा, "रियासत के बारे मे किसी दस्तावेज

10. भाटी जैतसिंह को टाटका ग्राम दिया गया, वह मापावत जिले में मिल गया। चांपावत गुमानसिंह को धीबोडा गांव प्राप्त हुआ, वह मुहू जिले में शामिल हुआ। चांपावत अभयसिंह भेटाना गांव लेकर स्वतन्त्र रहा। मुनई गांव भाटी को दिया, वह कूपावतों का जिलायत हुआ। सीसोदिया मानसिंह को पूनासरा गांव मिला, वह पहले चांपावतों के जिले मे था, फिर कूपावतो के में रहा। सेथ नामक गांव भी जैतावत को दिया गया। इत्यादि

पर हस्ताक्षर करना मेरे वश की बात नहीं है, यह तो सरदारों के हाथ की बात है। उन्हीं लोगों के माध्यम से प्राप्त की हुई यह रियासत है, मैं तो केवल इसका राजा हूं।" तब पण्डित ने सरदारों को बुलाने के लिए कहा। शिवसिंह ने उत्तर दिया, 'मेरे बुलाने से वे लोग नहीं आवेंगे, तुमने उनके गांवों को बरबाद किया है और उन्होंने भी तुम्हारी सेना को हानि पहुंचाई है—इसलिए वे कैसे आएँगे ?' तब मरहठा अधिकारी ने उनको आश्वासन दिया और महाराजा ने भी निजी पत्र लिखे 'यदि आप लोग नहीं आवेंगे तो ये लोग मुझे कैद कर लेंगे।" इस पर और सब सरदार तो आ गए परन्तु चांदणी का ठाकुर सूरजमल नहीं आया और वह एक सौ सवार व दो सौ पैदल साथ लेकर अपने गांव चला गया। जब सरदार आए तो पण्डित ने उनको बहुत डराया धमकाया और रायसिंह के हिस्से के दस्तावेज पर दस्तखत करने को मजबूर किया। महाराजा ने सब से पहले हस्ताक्षर किये और फिर सात सरदारों ने उस पर साक्षी कर दी।

जब इतना काम हो गया तब सरदारों ने कहा, 'जब सूरजमल के दस्तखत हो जवेंगे तभी यह लेख सही होगा अन्यथा नहीं।' पण्डित ने कहा, 'उसे भी बुलाओ।' तब जान मोहम्मद नामक एक अरब जमादार की जमानत के साथ एक महाराजा का सवार और एक मरहठा अफसर उसके पास गए। सूरजमल एक सौ बीस सवारों के साथ वहां आया। पण्डित ने अपने ही डेरे में उसका आदर सत्कार किया, उसे अपने पास बैठाया और फिर वह दस्तावेज देकर कहा कि दूसरे सरदारों की तरह वह भी उस पर हस्ताक्षर कर दे। सूरजमल ने उस लेख को पहले ही यह कह कर फाड़ दिया 'महाराजा पाट का (गद्दी का) धनी है तो मैं ठाठ (स्थान) का मालिक हूं।' फिर जमादार से कहा, 'मुझे चांदणी पहुंचाओ।' यह कह कर वह तुरन्त खड़ा हो गया और अपने घर चला गया। इस पर आपा साहिब बहुत लाल-पीला हुआ और महाराजा तथा सरदारों को डराने धमकाने लगा। उन्होंने कहा, 'हमारा क्या कुसूर है? हमने तो हस्ताक्षर कर दिये थे।' तब पण्डित ने कहा, 'अच्छा, हमारे साथ चांदणी पर हमले में साथ चलो।'[11] यह बात सब ने मंजूर कर ली। चांदणी पर तोपों के मोरचे लगाए गए और पूरे दिन भर आक्रमण होता रहा; महाराजा और सरदार ऊपर से तो मरहठों के साथ थे परन्तु मन से सूरजमल के पक्ष में थे। रात को सूरजमल पहाड़ियों में भाग गया और दूसरे दिन मरहठों ने गांव को लूटकर उसमें आग लगा दी। वे लोग वहां पर चार दिन रहे; इस बीच में जब-

---

11. इस विषय में बारहठ ने दूहा कहा है—

निहचे नींदरहीह, अरियानें आवे नहीं;
चकवे चादरणीह, तें कीधी सूजा कमध।

यह निश्चित है कि शत्रुओं को नींद नहीं आती है, हे सूरजमल कमधज! तूने उनको चांदणी में चकवा बना दिया है।

जब भी अवसर मिला सूरजमल ने उन पर धावा किया, दस बारह आदमियों को मार डाला और चौदह घोड़े छीन ले गया। तब मरहठों ने चांदणी से उठा कर साबलिये में डेरा लगाया; वहां भी सूरजमल ने रात को हमले किये और बहुत से अन्य लोगों के साथ एक अरब जमादार को भी मार डाला जो रोटी बनाने के साथ 'ताना री री' करके गा भी रहा था। तब महाराजा ने मरहठों के सेनानायक से कहा, 'यह राजपूत बहुत बंडा है, पता नहीं, कब किसको मार डाले; अगर यहां से फौज उठा ली जाय तो मैं रकम भेजने का बन्दोबस्त कर दूंगा।' तब बीस हजार की हुण्डी लिखाकर मरहठों की सेना चली गई और महाराजा भी ईडर लौट गया। वहां पहुंचकर उसने तुरन्त ही सूरजमल को बुला कर अपना गांव फिर बसाने को कहा और टूटे हुए महल की मरम्मत कराने को चार हजार रुपये भी दिए। सूरजमल ने ऐसा ही किया परन्तु इसके बाद उसको अपने पराक्रम का बहुत घमण्ड हो गया, वह प्रायः कहा करता था, 'महाराजा और सरदारों में कोई दम नहीं है, मैंने ही ईडर की गादी बचाई है।'

जब मरहठों का लश्कर लौटा तो अहमदनगर, मोडासा व अन्य स्थानों में वे अपने थाने छोड़ गए। कुछ ठिकानों से तो सरदारों ने उनको निकाल दिया परन्तु कहीं-कहीं पर वे जमे रहे और ऐसे स्थानों से पेशवा को आमदनी का आधा भाग मिलता रहा।

अब, सूरजमल चापावत जब भी ईडर आता तो लोगों को उसके लिए रास्ता साफ रखना पड़ता वरना वह सब को डराता धमकाता था। ऐसे ही एक अवसर पर दरबार के नक्कारची ने रास्ते में कुछ गन्दगी करके उसको नाराज कर दिया तो उसने उस ढोली के पैरों में रस्सा डाल कर तालाब में बार-बार इतना डुबाया और बाहर झरोला (झौंका) कि अन्त में वह बेचारा मर ही गया। उस समय महाराजा शिवसिंह तो वृद्ध और निर्बल हो गया था और महाराजकुमार भवानीसिंह व सूरजमल में गहरी मित्रता थी।

एक बार सूरजमल ने चांदणी में गोठ दी और महाराजकुमार को भी उसमें निमन्त्रित किया। वे दोनों दरबार में बैठे थे; संयोग से महाराजकुमार के सहचरों में से एक भोजक ब्राह्मण ने फर्श पर थूक दिया। इस पर सूरजमल आग-बबूला हो गया और उस ब्राह्मण को अपनी जीभ से वापस थूक चाटने के लिए कहा। भोजक ने कहा, 'मेरी भूल हुई, अब मैं इसे अपने कपड़े से साफ कर दूंगा।' इस पर भी सूरजमल नहीं माना और अपनी आज्ञा का पालन कराने पर हठ करता रहा। तब महाराजकुमार ने कहा, 'इस ब्राह्मण से गलती हो गई है, तुम्हारी खुशी हो तो मैं खुद अपने दुशाले से इसे साफ कर दूं।' परन्तु सूरजमल ने जिद नहीं छोड़ी और कहता रहा 'यह उसी जबान से अपने थूक को चाटेगा।' इस पर [illegible] को [illegible] गुस्सा आ गया और वह उठ कर वहां से चला [illegible] गो[illegible]

राजा को पूरा किस्सा सुनाया और कहा, इस सरदार को तो इतना अभिमान है कि किसी को भी कुछ नहीं समझता।' महाराजा ने यह सब सुन कर भी कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु, राजकुमार ने अपने मन में इस बात की गाठ बाध ली।

समय बीता, बात आई-गई हुई। तब एक बार महाराजकुमार ने सूरजमल को गोठ मे न्योता दिया। वह उसको ईडर का गढ़ दिखाने ले गया और अन्त मे रूठी रानी के महलो[12] मे ले आया; वही अपनी तलवार से उसने सूरजमल का काम तमाम कर दिया। इस ठाकुर की मृत्यु से ईडर रियासत की बहुत हानि हुई, जैसा की कवि ने कहा है—

चांपा चूक करेह, नरेन्द जो मारत नही,

गुज्जर धरा धरेह, कर देतो मूजो कमध ॥

मृत्यु के बाद सूरजमल भूत हो गया और बहुत समय तक गड़बड़ी करता रहा।

सूरजमल का पुत्र सबलसिंह इस समाचार से डर कर भाग गया और बाहरवाट हो गया। किसी तरह समझा बुझा कर वापस बुलाया गया परन्तु हरमोल के बारह गांव उससे ले लिए गए। मूंडेटी के मानसिंह के बाद उसका कुंअर जोरावरसिंह ठाकुर हुआ। उसके रघुनाथ नाम का एक छोटा कुंअर था जिसको गोटा की जागीर दी गई। रघुनाथ के बाद उसका पुत्र सूरतसिंह ठाकुर हुआ।

पटावतों के पास बहुत से गाव चले गए थे और खालसा में बहुत थोड़े रह गये थे इसलिए महाराजकुमार भवानीसिंह ने सूरतसिंह से गोटा की जागीर छीनने का प्रयत्न किया। उसने सूरतसिंह को कहलाया कि वह अपनी जागीर में से एक या दो गांव छोड़ दे। महाराजा शिवसिंह इस बात से प्रसन्न नहीं था परन्तु वह महाराजकुमार के डर से कुछ बोल न सका। उधर सूरतसिंह संदेश के उत्तर में बाहरवाट हो गया। वह पाल के उत्तर-पूर्व में मेवाड के जोवास व पहाडए नामक गावों में अपने परिवार को ले गया और वहां से ही ईडर के इलाके मे धावे मारने लगा; कभी किसानों को तो कभी गांवो के महाजनो को पकड़ ले जाता, कभी मवेशी उठा ले जाता और फिरौती की अच्छी रकमें वसूल करता। एक बार उसने ब्रह्मखेड पर आक्रमण किया जहां एक सौ सवार और पैदलों सहित ईडर का थाना रहता था। उस स्थान पर बहुत भारी लड़ाई हुई। बाद मे, ईडर के कुछ बनियो का संघ सादड़ी की घाटी मे हो कर ऋषभदेव की यात्रा के लिए जा रहा था; उनके साथ रक्षा के लिए पचीस कोली भी थे। ये लोग थाना नामक गांव में ठहरे। सूरतसिंह जाकर उनसे मिला और पूछा कि इतने सारे रखवाले साथ लेने की क्या जरूरत थी? उन्होंने

12. राव नारायणजी की रानी का महल; देखिए भा. 2 पृ. 167-68

उत्तर दिया 'यह सब इस कारण है कि तुम बाहरवाट हो।' सूरतसिंह ने कहा, 'ऐसी आशंका कभी नहीं रखनी चाहिए, ईडर तो मेरी माता है, मैं उसकी पगड़ी कभी नहीं उतारूंगा।' तब वह पूरी यात्रा में उनके साथ रहा और उनको सुरक्षित वापस घर पहुंचा दिया। महाजनों ने ईडर लौट कर महाराजा और महाराजकुमार से कहा कि सूरतसिंह तो ईडर के प्रजाजनों की रक्षा करता है, उसे वापस बुला लेना चाहिए। परन्तु, यह बात महाराजकुमार के गले नहीं उतरी इसलिए उसने इस सलाह पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब महाराजा ने अपने पुत्र को बिना बताए ही सूरतसिंह को लिख भेजा, 'चूरीवाड़ मेरी रसोई का गांव है, तुम उस पर धावा करो, तब मैं अनशन शुरू कर दूंगा और इस तरह तुम्हें वापस बुलाने को महाराजकुमार विवश हो जाएगा।' इस पर ठाकुर ने अपने आदमियों को एकत्रित करके चूरीवाड पर धावा कर दिया, गांव को जला दिया, और आदमी व मवेशी पकड़ ले गया। जब यह खबर ईडर पहुंची तो महाराजा ने अनशन शुरू कर दिया। तब ईडर में एक प्रवीण साधु को मध्यस्थ बनाकर महाराजकुमार ने तुरन्त ही सूरतसिंह को बुलवाया। जब ठाकुर पहुंचा तो महाराजकुमार उस पर बहुत नाराज हुआ और इतनी भारी गड़बड़ी और दुस्साहस करने का कारण पूछा। सूरतसिंह ने उसे महाराजा का पत्र दिखा दिया। जब कुंअर ने शिवसिंह से इस बारे में कहा सुना तो महाराजा लज्जित हो गया और पिता पुत्र के बीच जो मनमुटाव था वह और भी बढ़ गया। महाराजा ने सूरतसिंह को केवल इतना कहा, 'तुम्हारे लाभ के लिए जो पत्र मैंने लिखा था वह तुमने क्यों बताया? मुझे लगता है, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और तुम्हारी मौत नजदीक आ गई है।' इस प्रकार सूरतसिंह को उसकी जागीर वापस मिल गई, परन्तु वह इसके छः मास बाद ही संवत् 1841 (1785 ई.) में मर गया। उसका पुत्र उदेसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ।

जोरावरसिंह के पौत्र दौलतसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर उदेसिंह ही मूडेटी के बड़े पट्टे का भी उत्तराधिकारी हो गया।

संवत् 1848 (1792 ई.)[13] में महाराजा शिवसिंह देवलोक हो गये[14] और उसके बारह दिन बाद उनका पुत्र भवानीसिंह भी छत्तीस वर्ष की अवस्था में

13. प्रकरण के अन्त में दिए हुए परिशिष्ट में और वंशवृक्ष में 1791 लिखा है।

14. नीचे दिए हुए लेखों से ईडर के महाराजा के विषय में सप्रमाण तिथियां मिल जाती हैं :—

(1) ईडर के पास ही एक जैन की छत्री पर लिखा है—'संवत 1840 (1784 ई.) श्री महाराज अधिराज महाराज श्री शिवसिंह जी' इत्यादि –

(2) ईडर के गढ़ में बजर माता की बावड़ी है, उसके लेख में :—
'श्री गणेशाय नमः, श्री रामजी, संवत् 1847 (1791 ई.) के फाल्गुन सुदि

मर गया। महाराजा भवानीसिंह की गद्दी पर उसका पुत्र गम्भीरसिंह बैठा जिसका जन्म संवत् 1835 (1779 ई) में हुआ था। भवानीसिंह के छोटे भाई जालिम सिंह, संग्राम सिंह, अमरसिंह और इन्द्रसिंह थे। गम्भीरसिंह की अवयस्कता में रियासत का कारोबार जालिमसिंह के हाथ में रहा। कुछ समय बाद सरदार लोग चापावतों की हवेली में एकत्रित हुए; उस समय बीजापुर का बारहठ मोहब्बत भी मौजूद था जो दीवान था; उन लोगों ने मन्त्रणा की कि दो तलवारें एक म्यान में नहीं रह सकती इसलिए यही उचित है कि जालिमसिंह गद्दी पर न बैठा करे बल्कि बगल में बैठा करे। जालिमसिंह ने सरदारों से पूछा, 'तो फिर, अब मुझे क्या करना चाहिए, मेरे लिए आप लोग कौन सा रास्ता तजवीज करते है?' तब सरदारों ने कहा, 'आप भी राजवी हो, हम क्या सलाह दें? आप खुद रीति-नीति जानते हो।' यह सुन कर जालिमसिंह, उसके भाई संग्रामसिंह और अमरसिंह अपने साथियों को लेकर निकल पड़े और महाराजा से कोई पट्टा ग्रहण न करके उन्होने मोडासा, अहमदनगर तथा बायड़ पर अधिकार कर लिया। इन्द्रसिंह अन्धा था इसलिए घर पर ही रहा; उसे सूर की जागीर प्रदान की गई।

संग्रामसिंह के बाद कर्णसिंह हुआ और उसके बाद तख्तसिंह, जो जोधपुर का महाराजा हुआ।

इन्द्रसिंह के चार कुंअर हुए तथा जालिमसिंह और अमरसिंह निस्सन्तान ही मर गए।

जब महाराजा गम्भीरसिंह अठारह वर्ष का हुआ तो उसने कहा कि इन तीनों भाइयों को दो ही परगने रखने चाहिएं और अपने इस विचार को क्रियान्वित करने को वह फौज तैयार करके अहमदनगर की तरफ चढ़ा और मार्ग में हिंगलाज के आगे पड़ाव डाल दिया। जालिमसिंह और संग्रामसिंह मिल कर महाराजा का सामना करने को तैयार हुए। डट कर लड़ाई हुई; दोनों ही तरफ तोपें थी इसलिए दोनों ही पक्षों के बहुत से आदमी मारे गये। सांझ पड़ने पर युद्ध बन्द हुआ। दूसरे दिन चांपावत, जोधा और चौहान सरदार महाराजा के पास उपस्थित हो गए और शत्रुपक्ष को सन्देश भेजा गया कि 'अहमदनगर हमारे हवाले कर दो।' उसी समय टीटोई के ठाकुर भवानसिंह का, बहुत दिनों से भरे हुए और अधिक बारूद भरे बिना न चलने वाले, एक तमंचे के चल जाने से, हाथ उड़ गया। महाराजा ने इसको एक प्रकार का अपशकुन समझा और वह युद्ध का विचार त्याग कर ईडर लौट गया।

5, बुदवार श्री श्री श्री 108 श्री महाराज अधिराज श्री श्री श्री सिवसिंह जी, श्री महाराजकुंवर श्री भवानीसिंह जी ने यह बावड़ी बनवाई है। इत्यादि

(3) ईडर के पास ही एक जैन लेख है—'संवत् 1859 (1803 ई) महाराजाधिराज महराज श्री गम्भीरसिंहजी' इत्यादि।

भवानसिंह को टींटोई की तरफ ले जाया गया परन्तु मार्ग में ही मूडू के पास भवनाथ महादेव के स्थान पर उसका देहान्त हो गया।

इसके बाद मोडासा का ठाकुर जालिमसिंह अपने आस-पास में आम्बलियारा के ठाकुर, मालपुर के राठौड़ों और मोनपुर व सरदोही के रहवरों की जमीनें दबाने लग गया। उसकी सेना मे मारवाडी एव अन्य सिपाही थे। 1799 ई के लगभग जालिमसिंह महाराजा ने पाच हजार फौज साथ लेकर मालपुर पर हमला किया; उधर राठौड के पास केवल आठ सौ ही सैनिक थे। तीन दिन तक युद्ध चलता रहा परन्तु अन्त मे मालपुर ले लिया गया और रावल मारा गया। महाराजा ने मालपुर मे अपना थाना कायम कर दिया परन्तु नया रावल तख्तसिंह बाहरबाट हो गया और मोडासा के गांवों मे लूट-पाट करके व आग लगाकर बहुत नुकसान करने लगा। तब अन्त मे यह तय हुआ कि मालपुर महाराजा को छ सौ रुपये सालाना सलामी के दे और मगोड़ी के पाच सौ रुपये प्रतिवर्ष जमा करावे। इस पर रावल तख्तसिंह का उसके गांवों पर पुनः अधिकार हो गया।

सवत 1864 (1808 ई) मे पालनपुर दीवान के साथ उसके भाई शमशेर खां का झगडा हो गया इसलिए वह नाराज हो कर ईडर चला आया। महाराजा ने पोसीना परगने मे अपना चांपलपुर नामक गाव उसको रहने के लिए बता दिया तदनुसार शमशेर खा वहा जाकर रहने लगा। इस पर पालनपुर के पीरखान ने महाराजा को लिखा, 'आपके लिए मेरे भाई को शरण देना उचित नही है।' जब महाराजा ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया तो पालनपुर की फौज ने गढवाडा पर चढाई करके उस परगने पर कब्जा कर लिया और वहां अपना थाना रख दिया। तब महाराजा ने भी अपनी सेना एकत्रित की और वहा से पालनपुर की फौज को निकाल कर दीवान के मोजराणा गांव मे जा बैठा। वहा से उसने पीरखान के पास सन्देश भेजा, 'तुम्हारी इच्छा युद्ध करने की हो तो आ जाओ, हम इन्तजार कर रहे हैं।' परन्तु, पीरखान ने लडाई का कोई इरादा जाहिर नही किया। महाराजा ने पालनपुर के दो-एक गांव मार लेने की इच्छा की क्योंकि वे गढवाडा मे घुस आए थे; परन्तु, तत्कालीन प्रधान नाहरसिंह कूंपावत ने कहा, 'महाराज ! हम पालनपुर की सीमा लांघ कर आगे आ गए हैं इसलिए विजय हमारी हो हुई है; अब आपकी इच्छानुसार दो-एक गांव दबा लेने से झगडा बढने की ही सूरत पैदा होगी।' महाराजा ने उसकी सलाह मान ली और लौटते समय दांता पर चढाई कर दी जहां से राणा जगतसिंह भाग कर पहाडियों मे चला गया। ईडर की सेना ने नवावास और भीमाल गांवों का लूट लिया (जहां के निवासी गांव छोड़ कर भाग गए थे)। वहां उनको अन्न की बहुत संभार मिली, उन्हीं को काट-काट कर उन्होंने झोंपडे बना लिए और महीने भर वहीं जमे रहे; खाने पीने का सामान आस-पास के गांवों से वसूल किया। अन्त मे, यह तय हुआ कि दांता का राणा महाराजा को प्रतिवर्ष ... सौ रुपये कर के रूप में दिया करे। इसके बाद महाराजा ईडर लौट गया।

प्रकरण 10 का परिशिष्ट

1–ईडर

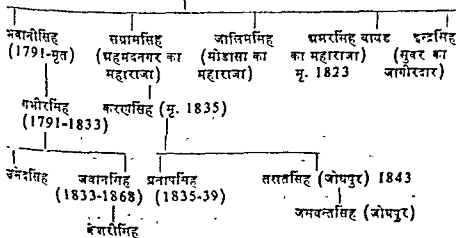
सन् 800 से 970 तक ईडर मे गहलोतों का राज्य रहा; फिर, थोड़े समय तक भील स्वतंत्र रहे परन्तु बाद मे यह परमार राजपूतो के अधिकार में चला गया (1000–1200)। अन्तिम परमार अमरसिंह इसे अपने सेवक हाथी सोड को दे गया जो कोली था। उसके पुत्र सामलिया सोड को सनेलिया के राव सोनग ने अपदस्थ किया; वही पोल के रावो का पूर्वज था। इन रावो ने बारह पीढी तक राज्य किया परन्तु बाद मे 1656 ई. मे मुरादबख्श ने उनको निकाल दिया। 1728 ई. मे जोधपुर के राजा के भाई आनन्दसिंह और रायसिंह ने मुसलमानो को निकाल बाहर किया। उस समय इस रियासत मे ईडर, अहमदनगर, मोडासा, बायड, हरसोल परांतीज और बीजापुर शामिल थे। दामाजी गायकवाड के अधिकारी बच्चाजी ने पेशवा की तरफ से हमला करके आनन्दसिंह को निकाल दिया। इसी युद्ध मे 1753 ई. मे आनन्दसिंह मारा गया। परन्तु, रायसिंह ने मरहठों को पराजित करके आनन्दसिंह के पुत्र शिवसिंह को फिर गद्दी पर बिठा दिया। उस समय रियासत का बहुत सा भाग पेशवा के कब्जे मे चला गया और बहुत सा गायकवाड के अधिकार में। 1791 ई. में शिवसिंह की मृत्यु के बाद पारिवारिक कलह उत्पन्न हो गए और इसके परिणाम-स्वरूप रियासत के टुकड़े-टुकड़े हो गये। (इण्डिया गजेटियर, 13, पृ 325; भाग. 1, टि. 290)

इस रियासत की कहानी 14 वें प्रकरण मे समाप्त होती है।

2–ईडर के महाराजा आनन्दसिंह का वंशवृक्ष

आनन्दसिंह (1728-1753 ई)

शिवसिंह (1753-1791 ई.)



●●

प्रकरण ग्यारहवां

दांता

दांता के राणा जैतमाल के दो पुत्र थे; बड़े का नाम जयसिंह था और छोटे का पूजा। पूजा की माता दांता के ही एक बाघेला सरदार की पुत्री थी, जो धनाली का ठाकुर था। इन दोनों भाइयों में अनबन रहती थी इसलिये पूंजा कुछ समय तक अपने ननसाल में रहा। परन्तु, जब उसके नाना की मृत्यु हो गई तब वहां भी चिर-स्थायी सुरक्षा के अभाव की आशंका से उसके मामा ने उसको सिरोही के चित्रासणी गांव में पहुँचा दिया। जब जैतमाल की मृत्यु हुई तो सभी सरदार और सगे-सम्बन्धी गढ़ में बारह रात्रियों तक जमीन पर साथरी बिछा कर सोये, परन्तु कुंअर जयसिंह ढोलिये पर शयन करता। जब सेवक पलंग बिछाने आया तो उसने सधुजी बडुवा के पुत्र अमराजी की रजाई को उठा कर फेंक दिया और उस स्थान पर ढोलिया बिछाने लगा। तब सभी ने पूछा "क्यों भाई, यह किसका पलंग बिछा रहे हो ?" सेवक ने कहा "दरबार का।" सरदारों ने कहा, "दरबार को मरे तो अभी दो ही दिन हुये हैं, इतने जल्दी ही दूसरे दरबार हो गये क्या ?" नौकर ने उत्तर दिया, "परमात्मा की यही मर्जी है, अब आप इसे टाल नहीं सकते।" सरदारों ने यह बात सुनकर बहुत बुरा माना और विचारा कि यह दरबार तो अपने मतलब का नहीं है। तब उन सबने मिलकर सलाह की और बडुवा अमराजी से कहा, "तुम्हें सूझे सो ही उपाय करो।" उसने कहा, "मैं तो अभी जाकर दूसरे धणी (स्वामी) को ले आऊंगा, परन्तु आप सब हिम्मत रख कर मेरा साथ देना।" यह कह कर, अमराजी दो सवारों[1] के साथ

---

1. इनमें एक तो दांता की मातहती में पेथापुर का गूजर राव भाणजी था और दूसरा कोठिया मामलदास जी था। (गु० ध०)

दांता की वंशावली इस प्रकार दी गई है—

उज्जैन के प्रख्यात विक्रमराज के बाद चालीसवां राजा रयपालजी परमार हुआ। उसने ईसवी सन् 809 में सिन्ध में अपना राज्य कायम किया। उसके बाद चौदहवां पुरुष दामोजी हुआ जो मुसलमानों के साथ युद्ध में मारा गया। दामोजी के बाद जगराज ने मुसलमानों से पराजित होकर उस का राज्य छोड़ दिया और आरासुर के पास जरगढ़ में गद्दी कायम की। बाद में

→

रवाना हुआ। जब वे तीनों बाहर निकले तो जयसिंह ने पूछा, "कहां जा रहे हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "हम दरबार के काम से जा रहे है।" कुंअर ने समझा ऐसा ही होगा, कारभारी ने इन्हें किसी काम से भेजा होगा।

वे तीनों धनाली पहुंचे और वहा के बाघेला ठाकुर मोहकमसिंह से उन्होंने पूछा, "पूंजोजी कहां है?" ठाकुर ने कहा, "वह तो चित्रासणी मे है।" तब वे वहा

केदारसिंह ने 1069 ई. में तरसगमा मे राजधानी स्थापित की। उसके बाद जसपाल हुआ। फिर कुछ पीढियो बाद जगतपाल से अलाउद्दीन खिलजी (1295–1316 ई.) ने तरसगमा छीन लिया, परन्तु बाद मे उसने बादशाह से तरसंगमा वापस ले लिया। उसकी छठी पीढ़ी मे कानडदेव हुआ। उसके बाद मेघजी के समय मे ईडर के राव भाणजी ने 1445 ई. मे उस पर चढाई की और तरसंगमा को जीत लिया परन्तु अहमदाबाद के सुलतान महमूद (दूसरे) की सहायता से मेघजी ने पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लिया। तदनन्तर, आमकरणजी के आश्रय मे अकबर बादशाह का शाहजादा वहां आ कर रहा और वह दिल्ली गया तब बादशाह ने उसको वंशपरम्परागत राणा की उपाधि प्रदान की। राणा वाघ को ईडर के राव कल्याणमल ने जीत कर कैद कर लिया था और वह वही आत्मघात करके मर गया।

राणा बाघ के बाद उसका भाई जयमल हुआ। उसको भी ईडर के राव ने जीत लिया तब 1544 ई. में दांता में आकर उसने अपनी राजधानी कायम की। आगे वंशावली इस प्रकार है —

जयमल
|
पूंजोजी
|
मानसिंह (1682 ई. में मरा)
|
गजसिंह (1682–1687 ई.)
|
पृथ्वीराज (1687–1743 ई.); फिर उसके भाई वीरमदेव का कुंअर कर्णजी—(इसको मेघराज नामक सरदार ने गद्दी से उतार कर मुदासणा के अमरसिंह को बैठा दिया था परन्तु पालनपुर के दीवान बहादुर खां की मदद मे कर्णजी ने अपना राज्य वापस ले लिया।
|
रतनजी (5 वर्ष राज्य किया परन्तु पुत्र न होने के

गये और रात भर ठहरे। प्रातःकाल गांव के स्वामी सिंधी से मिल कर उन्होंने कहा, "पूजोजी तुम्हारे पास रहे हैं, इसलिए उनकी मदद करोगे ?" उसने कहा, "मेरे पास तीन-चार सौ सिपाही है, आप जो चाकरी बतावें उसी के लिए तैयार हूँ।" यह कह कर उसने अपने आदमियों को तैयार किया। अब गढ़वी अमराजी ने पूजोजी से कहा, "हमारे साथ दाता पधारो।" उसने कहा, "मैं तो नही चलूंगा, वह मुझे मार डालेगा।" गढ़वी (चारण) ने कहा, "मैं वचन देता हूँ, कोई नही मारेगा।" इस प्रकार वे पूजोजी को साथ लेकर आये और सढ़ा में ठहरे। दूसरे ही दिन जयसिंहदेव के गद्दी पर बैठने का शुभ मुहूर्त था और बहुत शानदार तैयारियाँ की गई थी; जयसिंह तो दरबार मे बैठने के लिए पोशाक पहन रहा था, उसी बीच मे पूजोजी प्रकट हुए और कारभारियो तथा सरदारो ने उनको गद्दी पर बिठा दिया। सबने मिलकर दाता के नगरसेठ नानाभाई को कहा, "दरबार को तिलक[2] करो।" तब नगरसेठ ने तिलक किया और पचपन[3] रुपये नजर किये; बाद मे, और सब लोगो ने भी नियमानुसार नजरें कीं। उसी समय विजासणी से सिपाही आ पहुंचे और उन्होंने कहा, "हमारे लिए क्या हुक्म है ?" उनसे कहा गया कि दरबार के चारो तरफ पहरा कायम कर दें और कोई भी भीतर न जा सके। यह इन्तजाम पूरी तरह से पक्का किया गया।

कारण भाई अभयसिंह राणा हुआ जिसकी मृत्यु 1795 ई. में हुई।

|
मानसिंह (1795–1800 ई.)
|
जगतसिंह (भाई) 1800–1823 ई.
|
नाहरसिंह (भाई) 1823–1847 ई.
|
जालिमसिंह 1847–1860 ई.
|
हरिसिंह 1860–1876 ई.
|
जसवन्तसिंह 1876–ई में गद्दी पर बैठा।

दाता मे 70 वर्गमील जमीन, 78 गांव, लगभग 12,000 मनुष्यों की आबादी और वार्षिक आय लगभग पचास हजार रुपयों की थी। इस आमदनी मे से गायकवाड़ को रु. 2371–1–11, ईडर को सीपड़ी हक के रु. 513–15–3 और पालनपुर को 500 रु. वार्षिक कर देना पड़ता था। यह राज्य महीकांठा मे दूसरी श्रेणी का गिना जाता था।

2 [illegible]।

3. [illegible] के पचपन रुपये भेंट किए।

बाद में राजकीय नौबत बजाई गई और तोपें चलाई गईं। यह सुन कर जयसिंह ने कहा, "नौबत किसने बजाई?" तब किसी ने कहा, "पूंजा गद्दी पर बैठ गया है।" उसी समय उसके पास यह आज्ञा भी पहुंचाई गई, "दरबार के जो कुछ जवाहरात तुम्हारे पास हैं, यहा भेज दो और तुम यहा से चले जाओ।" जयसिंहदेव ने पूछा, "मैं कहां जाऊँ?" उत्तर मिला, "गगवा गांव तुम्हारी माता को खानगी में मिला हुआ है, तुम वही जा कर रहो।" तब जयसिंहदेव ने कहा, "गगवा तो अकेला गांव है उससे मेरा गुजारा नही होगा।" तब मांकडी गाव उसको और दे दिया गया और वह अपने परिवार को लेकर गगवा चला गया।

सयोग से, पूजाजी गद्दी पर बैठा उस दिन उसे बहुत उलटिया हुई। सरदारो ने सोचा कि इस वमन का कोई शकुन होना चाहिये। तब एक शकुन विचारने वाले ने कहा "राजा को मतली आती है और वमन होता है—इसका अर्थ यह होता है कि यह बहुत से परगनों पर अधिकार कर लेगा।"

जब पूंजाजी वयस्क हुआ तो उसने घाधार मे अपना 'वोल'[4] का अधिकार पुनः प्राप्त किया, जो पहले छिन गया था। इसी तरह खेराला पटा[5] मे जो 'वांटा'[6] दबा हुआ था वह भी उसने पुनः प्राप्त कर लिया। उसने फिर तरसगमा को पुनः बसाने का भी विचार किया परन्तु इसके लिए उसे अवसर नही मिला। उसी समय उसने रोड़ा गाव अमराजो बढ्वा को दिया; वह गांव पिछले दिनो उजड़ गया था। इसके अतिरिक्त उसको कुण्डल गांव मे पचीस ग्रामो का 'केरिया वांटा'[7] भी दिया। कुछ समय बाद राणा ने उस गडवी को थाना गाव में भी कुछ खेत इनायत किए, जो उसने अपने सौतेले भाई सामाजी और मुखोजी को दे दिए।

बाद में, राणा पूंजाजी ने सिरोही की भायप मे नींवज (नींवाज) के ठाकुर के यहां विवाह किया। नींवज का ठाकुर चांदोजी अपने भाई सिरोही के राजा अखेराज के विरुद्ध बाहरवाट हो गया था। इसलिए वह दांता आया और वहां उसने राणा पूंजाजी से अम्बाजी माता के मार्ग में बमाई गांव गुजारे के लिए प्राप्त किया। चांदोजी ने वहां रह कर सिरोही के साथ अपना झगडा चालू रखा, जो पांच वर्ष बीत जाने पर तय हुआ। तब चांदोजी ने अपनी बहन का विवाह पूंजाजी के साथ

---

4. खानगी के लिए कर वसूल करने का अधिकार।
5. पटावत की भूमि या इलाका; इसको जिला भी कह सकते हैं।
6. हिस्सा; गुजरात में भूस्वामियों को जो भाग या बट मिला होता है वह वांटा कहलाता है।
7. आम के कच्चे फल को 'केरी' कहते हैं। केरियों की आमद मे जो ।ऽ जावे वह 'केरिया वांटा'।

कर दिया और वसाई गाव दहेज में दे दिया। इस प्रकार राणा पूंजाजी ने अच्छी तरह से राज्य किया। उसके तीन कुमर थे[8]—मानसिह, अमरसिह और धीगाजी। अन्तिम कुमर को गणछेरू गाव जागीर मे मिला।

राणा पूजा के वाद मानसिह गद्दी पर बैठा। अमरसिह को सुदासणा मिला। एक बार ऐसी घटना हुई कि अमरसिह चित्रामणी के ठाकुर से मित्रता के नाते मिलने गया था, वहा से लौटते समय राधनपुर के बाबी की फौज, जो कही चढाई करने जा रही थी, अचानक आ मिली। सैनिको ने धाधार परगने मे पलसड़ी नामक गाव के पास जगल मे अमरसिह को मार डाला। उसके दो कुमर थे—हठियजी और जगतोजी। इन दोनो को मानसिह के कुमर गजसिह ने गद्दी पर बैठने के बाद मार डाला। कथा इस प्रकार है—

एक बार गजसिह दांता के महलो मे बैठा था तब उसने आसपास बैठे हुए लोगों से कहा; 'क्या कोई इस सामने वाले नीम के पेड से चौक में कूद सकता है?' हठियाजी तुरन्त ही पेड़ पर चढ कर कूद गया। राणा गजसिह ने अपने मन में विचार किया कि यह आदमी कभी न कभी मुझे धोखा देगा। कुछ समय बाद उसने एक धायड़ा राजपूत को, जो उसकी चाकरी में था, कहा, यदि तुम इन दोनों भाइयो को मार दो तो तुम्हें एक खेत माफी मे दे दूंगा।' तब उस राजपूत ने बड़े भाई को तो दांता की कचहरी मे ही तलवार के वार से खत्म कर दिया और दूसरे को दरबार की खिड़की के सामने पहाड़ी पर कत्ल कर दिया। उसी स्थान पर छोटा भाई जगतोजी आज तक पूजा जाता है। कभी-कभी वह किसी को दिखाई भी पड़ जाता है और कभी-कभी किसी के शरीर मे प्रविष्ट हो जाता है; ऐसी दशा में वहां पर बलि चढ़ाना आवश्यक हो जाता है। हठियाजी का पुत्र सुमाणसिह था जिसको खालसा किये हुए गांव सुदासणा की एवज उदेरण ग्राम मिला। हठियाजी की हत्या के बाद बालक सुमाण को उसकी माता ने राणा गजसिह की गोद मे ला कर रख दिया और कहा, "जैसा तुम चाहो वही हाल इस बच्चे का भी कर डालो।" राणा ने अपने मन मे कहा, "मैंने इसके पिता की हत्या की है इसलिए यदि इसको कुछ दे दू तो बलात्कार के पाप से मुक्त हो जाऊंगा।" यह सोच कर उसने उदेरण गाव दे दिया। जगतोजी के कोई पुत्र नहीं था।

अब मानसिह की बात फिर शुरू करते हैं। उसने चार या पांच वर्ष तक राज्य किया। बाद मे, दो कुमरो, गजसिह और जगतोजी को छोड़ कर दिवगत

---

8. एक भाट की पुस्तक मे लिखा है कि पूजाजी के चार कुमर थे, मानसिह, अमरसिह, गजमसिह और सूरसिह। गजम अथवा मोटे नगाड़े को ग्रामीण भाषा मे धीगा कहते है इसलिए गजमसिह ही धीगाजी कहलाता होगा।

(गु. स)

हुआ। जसवोजी को पहले राणपुर मिला परन्तु हठियाजी और जगतोजी की मृत्यु के बाद मुदासणा की जागीर भी उसी को मिल गई; राणपुर तो पहले से था ही। बाद में, दाता पटा मे वसाई और जसपुर-चेलनू भी जसवोजी[9] को ही प्राप्त हो गये।

गजसिंह ने भली-भांति राज्य किया[10], उसके दो पुत्र थे, बड़ा पृथ्वीसिंह और छोटा वीरमदेव, जिसको नागेल गाव मिला। पृथ्वीसिंह के समय में दामाजी गायकवाड की सेना दांता आई। पृथ्वीसिंह ने शस्त्र ग्रहण करके कुछ समय तक उसका सामना किया परन्तु अन्त मे पहाड़ियो मे भाग गया। बाद मे, जमानत देने पर वह मरहठों की छावनी मे गया और कर के रूपमे कुछ रकम देना स्वीकार कर लिया; रकम मिल जाने पर मरहठे लौट गए।

कुछ समय बाद दिल्ली की तरफ से नवाब हैदरकुली फौज लेकर आया। राणा ने उसका भो मुकाबला किया और उनके तीस सिपाही मार दिये। अन्त मे, फौज पीछे हट गई और जीत का सेहरा राणा के ही सिर पर बधा।

इसके बाद पालनपुर के नवाब ने राणा द्वारा घाडियाला गांव पर कायम किया हुआ हक (कर) देना बन्द कर दिया। राणाजी ने सोचा कि गांव किस तरह दबाया जाय। जब पालनपुर के दीवान को मालूम हुआ तो उसने अपने गाव मेहमदपुर से भाटो को बुला कर कहा, "तुम लोग घोडियाल गाव की निगाह रखो।" उन्होंने ऐसा ही किया। तब यह खबर दाता पहुची। उस समय, रहियो नामक बनिया दांता का कामदार था। उसने भाटों को दाता मे बुलाकर उन्हें घनाली और भीणराणा की रखवाली करने को कहा। उसने कहा, 'तुम पालनपुर के गाव की रखवाली करते हो, हमारे गाव की भी करो, जो कुछ पालनपुर वाले देते हैं, वही हम भी देंगे।' भाटो ने कहा, 'हम दो घाडों पर सवारी नही कर सकते।' तब रहियो ने कहा, "अच्छा, जाओ, अच्छी तरह जाब्ता रखना, हम चढ कर आते है।" भाटो ने सोचा कि पहले मेहमदपुर जाकर अपने आदमी ले आवें और फिर पालनपुर मे अधिक आदमी

---

9. जसवोजी की सन्तान के विषय में प्रकरण के अन्त मे मुदासणा पर टिप्पणी पढ़िये।

10. राणा गजसिंह की छतरी एक बाग मे गांव के बाहर पिछवाड़े में बनी हुई है, उस पर यह प्रशस्ति अंकित है —

"संवत् 1743 वर्षे मागशर सुद 9 रवौ राण श्री गजसघ जी वइकुठ पधारा वां से सती 3 थती ते सतीप्रांनु नाम बहोजी श्री राठिम बारेचणी प्रणद कुंवर। वहोजी श्री वाघेली रूपाली प्रणंद कुंवरि. वहोजी श्री भटियाणी जेसलमेरी प्रनोपकुवर ए सती थ्रण थई। तारे पा ने राणा श्री दजसघजोनी छत्री करावी सं. 1748 ना महा वद7 वार गुरुर छत्री करावी।"

कर दिया और वसाई गाव दहेज मे दे दिया। इस प्रकार राणा पूंजाजी ने अच्छी तरह से राज्य किया। उसके तीन कुंअर थे[8]—मानसिंह, अमरसिंह और धींगाजी। अन्तिम कुंअर को गणछेरू गाव जागीर मे मिला।

राणा पूजा के बाद मानसिंह गद्दी पर बैठा। अमरसिंह को सुदासणा मिला। एक बार ऐसी घटना हुई कि अमरसिंह चित्रासणी के ठाकुर से मित्रता के नाते मिलने गया था, वहा से लौटते समय राधनपुर के बांबी की फौज, जो कही चढाई करने जा रही थी, अचानक आ मिली। सैनिको ने धांधार परगने मे पलखड़ी नामक गाव के पास जगल मे अमरसिंह को मार डाला। उसके दो कुंअर थे—हठियाजी और जगतोजी। इन दोनो को मानसिंह के कुंअर गजसिंह ने गद्दी पर बैठने के बाद मार डाला। कथा इस प्रकार है—

एक बार गजसिंह दाता के महलों मे बैठा था तब उसने आसपास बैठे हुए लोगों से कहा; 'क्या कोई इस सामने वाले नीम के पेड़ से चौक में कूद सकता है?' हठियाजी तुरन्त ही पेड़ पर चढ कर कूद गया। राणा गजसिंह ने अपने मन में विचार किया कि यह आदमी कभी न कभी मुझे धोखा देगा। कुछ समय बाद उसने एक चावडा राजपूत को, जो उसकी चाकरी मे था, कहा, यदि तुम इन दोनों भाइयों को मार दो तो तुम्हें एक खेत माफी में दे दूंगा।' तब उस राजपूत ने बड़े भाई को तो दाता की कचहरी मे ही तलवार के वार से खतम कर दिया और दूसरे को दरवार की खिडकी के सामने पहाडी पर कत्ल कर दिया। उसी स्थान पर छोटा भाई जगतोजी आज तक पूजा जाता है। कभी-कभी वह किसी को दिखाई भी पड़ जाता है और कभी-कभी किसी के शरीर मे आविष्ट हो जाता है; ऐसी दशा मे वहां पर बलि चढाना आवश्यक हो जाता है। हठियाजी का पुत्र खुमाणसिंह था जिसको खालसा किये हुए गांव सुदासणा की एवज उदेरण ग्राम मिला। हठियाजी की हत्या के बाद बालक खुमाण को उसकी माता ने राणा गजसिंह की गोद मे ला कर रख दिया और कहा, "जैसा तुम चाहो वही हाल इस बच्चे का भी कर डालो।" राणा ने अपने मन मे कहा, "मैंने इसके पिता की हत्या की है इसलिए यदि इसको कुछ दे दू तो विश्वासघात के पाप से मुक्त हो जाऊँगा।" यह सोच कर उसने उदेरण गाव दे दिया। जगतोजी के कोई पुत्र नही था।

अब मानसिंह की बात फिर शुरू करते हैं। उसने चार या पाच वर्ष तक राज्य किया। बाद में, दो कुंअरो, गजसिंह और जसवोजी को छोड कर दिवंगत

8. एक भाट की पुस्तक में लिखा है कि पूंजाजी के चार कुंअर थे, मानसिंह, अमरसिंह, सबलसिंह और सूरसिंह। सबल अथवा मोटे तगड़े को ग्रामीण भाषा मे धींगा कहते हैं इसलिए सबलसिंह ही धींगाजी कहलाता होगा।"

(गु म)

हुआ। जसवोजी को पहले राणपुर मिला परन्तु हठियाजी और जगतोजी की मृत्यु के बाद मुदासणा की जागीर भी उसी को मिल गई; राणपुर तो पहले से था ही। बाद में, दांता पटा मे वसाई और जसपुर-चेलनूं भी जसवोजी[9] को ही प्राप्त हो गये।

गजसिंह ने भली-भाति राज्य किया[10], उसके दो पुत्र थे, बड़ा पृथ्वीसिंह और छोटा वीरमदेव, जिसको नागेल गाव मिला। पृथ्वीसिंह के समय मे दामाजी गायकवाड की सेना दाता आई। पृथ्वीसिंह ने शस्त्र ग्रहण करके कुछ समय तक उसका सामना किया परन्तु अन्त मे पहाड़ियो में भाग गया। बाद मे, जमानत देने पर वह मरहठों की छावनी मे गया और कर के रूपमे कुछ रकम देना स्वीकार कर लिया; रकम मिल जाने पर मरहठे लौट गए।

कुछ समय बाद दिल्ली की तरफ से नवाव हैदरकुली फौज लेकर आया। राणा ने उसका भी मुकाबला किया और उसके तीस सिपाही मार दिये। अन्त मे, फौज पीछे हट गई और जीत का सेहरा राणा के ही सिर पर बधा।

इसके बाद पालनपुर के नवाब ने राणा द्वारा घाडियाना गांव पर कायम किया हुआ हक (कर) देना बन्द कर दिया। राणाजी ने सोचा कि गांव किस तरह दवाया जाय। जब पालनपुर के दीवान को मालूम हुआ तो उसने अपने गाव मेहमदपुर मे भाटो को बुला कर कहा, "तुम लोग घोडियाल गाव की निगाह रखो।" उन्होंने ऐसा ही किया। तब यह खबर दाता पहुची। उस समय, रहियों नामक बनिया दाता का कामदार था। उसने भाटों को दाता मे बुलाकर उन्हे धनाली और शीशराणा की रखवाली करने को कहा। उसने कहा, 'तुम पालनपुर के गाव की रखवाली करते हो, हमारे गाव की भी करो, जो कुछ पालनपुर वाले देते हैं, वही हम भी देंगे।' भाटो ने कहा, 'हम दो घाडो पर सवारी नहीं कर सकते।' तब रहियो ने कहा, "अच्छा, जाओ, अच्छी तरह जाब्ता रखना, हम पढ कर आते है।" भाटो ने सोचा कि पहले मेहमदपुर जाकर अपने आदमी से आवें और फिर पालनपुर से अधिक आदमी

---

9. जसवोजी की सन्तान के विषय में प्रकरण के अन्त में मुदासणा पर टिप्पणी पढ़िये।

10. राणा गजसिंह की छतरी एक बाग मे गांव के बाहर पिछवाड़े में बनी हुई है, उस पर यह प्रशस्ति अंकित है—

"संवत् 1743 वर्षे मागशर सुद 9 रवौ राण श्री गजसघ जी वइकुठ पधारा वां से सती 3 वनी ते सतीमानु नाम वहोजी श्री राठिम बारेवनी अणद कुंवर। वहोजी श्री वाघेली रूपाली अणद कुंवरि, वहोजी श्री भटियाणी जैसलमेरी मनोहकुवर ए सती भए भई। तारे पां के राणा श्री दलसंघजीनी छत्री करावी सं. 1748 ना महा वद7 वार गुरुर छत्री करावी।"

लेकर घोडियाला में रक्षक जमा कर लेंगे। परन्तु, इसी बीच मे राणाजी ने चढाई कर दी, घोडियाला को जा दबाया और वहा लूटपाट करके कुछ आदमी व मवेशी पकड़ कर दांता ले गये। जब पालनपुर के नवाब ने ये समाचार सुने तो उसने भाटो को बुलाकर बुरा भला कहा, "तुम्हारी चौकसी मे यह सब कुछ हुआ है; अब जाओ, [illegible] जोर लगाकर मेरे आदमी व मवेशी वापस लाओ, जो राणाजी पकडकर ले गये हैं।" तब एक सौ भाट इकट्ठे हुए और उन्होने 'धरना' शुरू कर दिया। वे [illegible] से रवाना हुए और एक-एक कोस पर एक-एक आदमी जलकर मरने लगा; [illegible] ढूंढपुर पहुंचते-पहुचते सात या आठ आदमी खत्म हो गए। तब दांता से [illegible] ढूंढपुर पहुंच गए और उन्होंने भाटो को समझा-बुझा कर लौटा दिया। परन्तु, जब राणाजी ने उनके लिए कुछ भेंट पूजा भेजी तो भाटो ने कहा, "यदि हम कुछ ग्रहण कर लेंगे तो राणाजी इस पाप से मुक्त हो जावेंगे, इसलिए हम कुछ नही लेंगे।" यह कह कर वे अपने घर चले गये। इसी पाप के फल से, यद्यपि पृथ्वीसिंह के सात पुत्र हुये थे परन्तु, वह निःस्संतान मरा। उसकी मृत्यु पर तीन रानियां सती हुईं, जिनमे से एक नीमाज के ठाकुर सकतसिंह देवडा की पुत्री थी, दूसरी पेथापुर के वाघेला ठाकुर की लड़की।[11]

पृथ्वीसिंह का वश नही चला इसलिए कामदारों और सरदारो ने मिलकर वीरमदेव के पुत्र करणजी को गद्दी पर बिठाया। [illegible] जी की [illegible] सरदार मेघराज (बारोवत बारहठ) के साथ, जिसके प[illegible] र भट्[illegible] थे, [illegible] हो गई। उस समय दांता में कोठियो [illegible] ियो क[illegible] अफीम खाते समय नित्य ही [illegible] राजपत्र को भी गुस्सा चट [illegible]

बाद में, वह बच कर मेघराज की शरण में चला गया। तब राणा ने मेघराज को कहलाया, 'इस अपराधी को मुझे सौंप दो।' मेघराज ने उत्तर दिया शरण में आए हुए को लौटाना राजपूत का धर्म नहीं है, इसलिए मैं अपने सिर के बदले इसकी रक्षा करूंगा।" बाद में, जब राणा ने बहुत तंग किया तो मेघराज ने उस राजपूत को पहाड़ियों में भेज दिया और स्वयं भी नाराज होकर गणछेरा चला गया जहां वह छः मास तक रहा। परन्तु, राणा ने उसको मनाने के लिए कुछ नहीं किया। तब मेघराज ने सोचा, 'अब यहां रहकर क्या करूं ?" इसलिए वह सुदासणा चला गया। वहां के ठाकुर अमरसिंह ने उसका स्वागत किया और वहां वह एक वर्ष तक रहा, परन्तु फिर भी राणा ने उसके संतोष के लिए कुछ नहीं किया। अन्त में मेघराज ने अमरसिंह को कहा, "चलो, मैं दांता की गद्दी तुमको दिलाता हूं।" उन्होंने मिलकर एक हजार आदमी और गोला-बारूद आदि युद्ध का सामान जुटाया, फिर चढ़ाई करके दांता में घुस गए और करणजी को बाहर निकाल दिया। वह घोड़े पर सवार हो कर दांता से पांच कोस पेपलोदर गाव को भाग गया। यह गाव परम्परा से दांता के पाटवी कुंअर को हाथखर्च में मिला करता था।

अब, अमरसिंह दांता की गद्दी पर बैठा और उसने सम्पूर्ण परगने को अपने अधिकार में कर लिया। दो तीन वर्ष तक ऐसा ही चलता रहा। अन्त में, पानीयाली के बड़वा गोरखदास और उसके भाइयों ने मिलकर सलाह की 'हम लोगों के होते हुए हमारा मालिक राज्यभ्रष्ट हो कर रहे, यह उचित नहीं है।" तब वे राणा करणजी के पास गए[12] और उन्होंने कहा, "यों ठंडे होकर कैसे बैठे हो ? कुछ हाथ-पैर हिलाओ तो दांता का राज्य वापस मिले।" राणा ने कहा, "मुझे तो कोई उपाय नहीं सूझता, तुम्हें दिखाई देता हो तो बताओ।" गड़वी ने कहा, "अपने सरदारों को बुलाओ।" राणा ने उनको बुला भेजा। तब घोराड का ठाकुर साहेबसिंह भाटी, हराड का ठाकुर अनोपसिंह राठौड़ और गोधणी का ठाकुर देवीदास वाघेला आए। इन तीनों सरदारों ने बैठ कर सलाह की, "पालनपुर के दीवान बहादुरखां की मदद लिए बिना काम नहीं बन सकता।" उन्होंने फिर विचार किया कि दीवानजी की सहायता प्राप्त करने के लिए बहुत बड़ी रकम की जरूरत है, वह इस समय कहां से आवे ? तब करणसिंह ने नागेल से अपने भाई उम्मेदसिंह को बुलाकर कहा, "तुम्हारे एक कुंआरी लड़की है; यदि तुम उसका विवाह बहादुर खां से कर दो तो हम लोगों को अपना राज्य वापस मिल जाय।" उम्मेदसिंह ने कहा, 'अगर राज्य मिल भी जाय तो गद्दी पर तो तुम बैठोगे; मुझे क्या मिलेगा जो मैं अपनी कन्या उस तुर्क को दूं ?" तब करण जी ने उसको लिख कर दिया कि दांता वापस मिलने पर पांच गांव उम्मेदसिंह के अधिकार में दे दिए जावेंगे। इस पट्टे में आधा नागेल (नागण), थांणा, कुण्डल, पाणोदरा और वडूसणा तथा वर्तमान गढ़ जो बाद में कुंडल की सीमा

12. गड़वी मयानायजी और भागचंद जी राणा के पास गए थे। (गु. अ.)

लेकर घोडियाला मे रक्षक जमा कर लेंगे। परन्तु, इसी बीच मे राणाजी ने चढाई कर दी, घोडियाला को जा दबाया और वहा लूटपाट करके कुछ आदमी व मवेशी पकड़ कर दाता ले गये। जब पालनपुर के नवाब ने ये समाचार सुने तो उसने भाटो को बुलाकर बुरा भला कहा, "तुम्हारी चौकसी मे यह सब कुछ हुआ है; अब जाओ, तुम अपना जोर लगाकर मेरे आदमी व मवेशी वापस लाओ, जो राणाजी पकड़कर ले गये हैं।" अब, एक सौ भाट इकट्ठे हुए और उन्होने 'धरना' शुरू कर दिया। वे अपने गाव से रवाना हुए और एक-एक कोस पर एक-एक आदमी जलकर मरने लगा; इस तरह पुजपुर पहुचते-पहुचते सात या आठ आदमी खत्म हो गए। तब दाता से भी आदमी पुजपुर पहुच गए और उन्होने भाटो को समझा-बुझा कर लौटा दिया। परन्तु, जब राणाजी ने उनके लिए कुछ भेट पूजा भेजी तो भाटो ने कहा, "यदि हम कुछ ग्रहण कर लेंगे तो राणाजी इस पाप से मुक्त हो जावेंगे, इसलिए हम कुछ नही लेंगे।" यह कह कर वे अपने घर चले गये। इसी पाप के फल से, यद्यपि पृथ्वीसिंह के सात पुत्र हुये थे परन्तु, वह निःस्संतान मरा। उसकी मृत्यु पर तीन रानियां सती हुईं, जिनमें से एक नीमाज के ठाकुर सकतसिंह देवडा की पुत्री थी, दूसरी पेथापुर के वाघेला ठाकुर की लड़की।[11]

पृथ्वीसिंह का वश नही चला इसलिए कामदारों और सरदारो ने मिलकर वीरमदेव के पुत्र करणजी को गद्दी पर बिठाया। इस करणजी की उसके सरदार मेघराज (बाछावत बारहठ) के साथ, जिसके पट्टे मे देवड़ी और भद्रमाला गाव थे, खटपट हो गई। उस समय दाता मे कोठियो बखतो नामक एक राजपूत था, जो अफीम खाते समय नित्य ही राणा की गालियो का पात्र बनता था। एक दिन उस राजपूत को भी गुस्सा चढ़ गया और उसने राणाजी पर तलवार का वार कर दिया;

---

11. दाता मे एक छतरी है, जो चारो ओर से खुली है परन्तु अन्दर की तरफ ईंटों की दीवार चुनी हुई है; उसमे आरस पत्थर का एक पालिया बना हुआ है, जिसमे एक अश्वारोही के आगे दो स्त्रियो की मूर्तिया बनी हुई है। ऊपर सामान्य रूप से सूर्य और चन्द्रमा के चिह्न उत्कीर्ण हैं। उस छतरी के ऊपर की भीत पर ये अक्षर खुदे हुए हैं—

"राणा पृथीसिंघ की छत्री राणा श्री करण जी बनवाई।"

दूसरी प्रशस्ति इस प्रकार है—

"श्री गणेशाय नमः राणा श्री पृथीसंघजी श्री वइकुंठ पधारा ताहारे सती बेय थली, सेहनां नाम बहुजी श्री देवडी फूल कुंवर, बहूजी श्री बघेली पेथापुरी सरदार कुंवर, संवत् 1799 (ई० स० 1473) वरषे श्रावण सुदी 2 वार गुरो"

न की शरण में चला गया। तब राणा ने मेघराज को
बाद मे, वह बच कर मेघरा मुझे सौंप दो।' मेघराज ने उत्तर दिया शरण मे आए
कहलाया, 'इस अपराधी को धर्म नहीं है, इसलिए मैं अपने सिर के बदले इसकी रक्षा
हुए को लौटाना राजपूत कर ग ने बहुत तंग किया तो मेघराज ने उस राजपूत को
करूंगा।" बाद मे, जब रा स्वयं भी नाराज होकर गणछेरा चला गया जहा वह छः
पहाड़ियों मे भेज दिया औ ा ने उसको मनाने के लिए कुछ नहीं किया। तब मेघ-
मास तक रहा। परन्तु, रा इकर क्या करूं ?" इसलिए वह सुदासणा चला गया।
राज ने सोचा, 'अब, यहा र उसका स्वागत किया और वहां वह एक वर्ष तक रहा,
वहा के ठाकुर अमरसिंह ने र ृ सतोष के लिए कुछ नही किया। अन्त मे मेघराज ने
परन्तु फिर भी राणा ने उसवं दाता की गद्दी तुमको दिलाता हू।" उन्होंने मिलकर
अमरसिंह को कहा, 'चलो, मं ा-बारूद आदि युद्ध का सामान जुटाया, फिर चढाई करके
एक हजार आदमी और गोल जी को बाहर निकाल दिया। वह घोड़े पर सवार हो
दांता मे घुस गए और करण दिर गाव को भाग गया। यह गाव परम्परा से दाता के
कर दांता से पाच कोस पेपल मिला करता था।
पाटवी कुंअर को हाथखर्च मे की गद्दी पर बैठा और उसने सम्पूर्ण परगने को अपने
अब, अमरसिंह दाता तीन वर्ष तक ऐसा ही चलता रहा। अन्त मे, पानी-
अधिकार मे कर लिया। दो र उसके भाइयो ने मिलकर सलाह की 'हम लोगो के
वाली के बड़वा गोरखदास औ भ्रष्ट हो कर रहे, यह उचित नही है।" तब वे राणा
होते हुए हमारा मालिक राज्य न्होंने कहा, "यों ठंडे होकर कैसे बैठे हो ? कुछ हाथ-
करणजी के पास गए[12] और उ प वापस मिले।" राणा ने कहा, "मुझे तो कोई उपाय
पैर हिलाओ तो दाता का राज हो तो बताओ।" गढ़वी ने कहा, "अपने सरदारों को
नहीं सूझता, तुम्हे दिखाई देता ा भेजा। तब घोराड का ठाकुर साहेबसिंह भाटी,
बुलाओ।" राणा ने उनको बुल ोड़ और गोधणी का ठाकुर देवीदास वाघेला आए।
हराड़ का ठाकुर अनोपसिंह रा सलाह की, "पालनपुर के दीवान बहादुरखां की मदद
इन तीनों सरदारो ने बैठ कर ा।" उन्होंने फिर विचार किया कि दीवानजी की
लिए बिना काम नही बन सकत हुत बड़ी रकम की जरूरत है, वह इस समय वहां से
सहायता प्राप्त करने के लिए ब से अपने भाई उम्मेदसिंह को बुलाकर कहा, "तुम्हारे
आवे ? तब करणसिंह ने नागेल म उसका विवाह बहादुर खां से कर दो तो हम लोगों
एक कुंमारी लड़की है; यदि तु य।" उम्मेदसिंह ने कहा, "अगर राज्य मिल भी जाय
को अपना राज्य वापस मिल जा ो क्या मिलेगा जो मैं अपनी कन्या उस तुर्क को दूं ?"
तो गद्दी पर तो तुम बैठोगे; मु ् कर दिया कि दाता वापस मिलने पर पांच गाव
तब करण जी ने उसको लिख ए आवेंगे। इस पट्टे में आधा नागेल (नांगर),
उम्मेदसिंह के अधिकार मे दे दि ड़गए तथा वर्तमान गढ़ जो बाद में कुंडल की सीमा
दांता, कुण्डल, पाणोदरा और वागचंद जी राणा के पास गए थे। (मु. प.)

12. गढ़वी मयानाथजी और र-

मे बसा है, ये सब गाव लिखे गए। तब उम्मेदसिंह ने उन सब की इच्छानुसार कार्य करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद तीनों गडवी पालनपुर जाकर बहादुर खां से मिले और उससे तय किया कि वह पुनः राज्यप्राप्ति मे सहायता करेगा तो उम्मेदसिंह की लडकी की सगाई उसके साथ कर दी जायगी। दीवान बहुत खुश हुआ और उसने कहा, "पहले मै तुम्हारा राज्य तुमको दिला दूंगा, बाद में शादी होगी।" तब उसको एक रुपया और नारियल देकर सगाई का दस्तूर कर दिया गया। इसके बाद दीवान जी की सेना साथ लेकर उन्होंने दाता पर चढाई की और पुंजपुर के पास महुडा के पेडो मे पडाव डाला; वहा से अमरसिंह के पास सन्देश भेजा गया, 'दांता खाली करो।' अमरसिंह ने सोचा 'दाता मे अब मेरा टिकना मुश्किल है क्योकि पालनपुर की फौज भी आ गई है।' इसलिए उसने उत्तर भेजा "तुम्हारा दाता तुमको लौटा दूगा, परन्तु मुझे गुजारे के लिए क्या देते हो?" तब तय हुआ कि उसके पास उस समय जो पन्द्रह गांव थे उनके अतिरिक्त पाच गाव और दिए जावेंगे जिनके नाम जेतपुर, न्हानासड़ा, टोडा, खारी और बामणिया थे; इसके अलावा माताजी के चढावे मे से भी चौथा हिस्सा देना स्वीकार किया गया। उस समय प्रत्येक यात्री माता के एक रुपया चढाता था। कुछ समय तक तो सुदासणा के ठाकुर को चार आना के हिसाब से रकम दी गई, परन्तु बाद में कुछ हिसाब मे गडबडी होने लगी तब राणा ने तय कर दिया कि प्रत्येक यात्री से बारह आने तो ले लिए जावें और सुदासणा के हिस्से के चार आने छोड़ दिए जावे। ठाकुर से कहा, "तुम्हारे गाव के दरवाजे से जो यात्री निकले उससे चार आने तुम ले लिया करो।" तब से सुदासणा का चौअन्नी वाला कर शुरू हुआ।

अब, राणा करणजी दाता आकर गद्दी पर बैठा। जब पालनपुर की सेना लौटने को तैयार हुई तो थाणा गाव की भूमि मे पहाडियों के बीच चार आमों के पेड उगे हुए थे, वहा नागल से उम्मेदसिंह की लडकी को बुलाकर उसका विवाह दीवान जी के साथ कर दिया गया। फिर, सब लोग उसे पालनपुर पहुचा आए।

करणसिंह के रत्नसिंह और अभयसिंह नामक दो पुत्र थे। रत्नसिंह गद्दी पर बैठा। उसने पहले धनाली के ठाकुर लाडखान और पहाडखान नामक बाघेला बन्धुओ को मरवा दिया था, जिसका किस्सा इस तरह है—

लाडखान भी दाता का एक सरदार था इसलिए एक बार राणा करणजी से मुजरा करने आया। उस समय कुंअर रत्नसिंह तीस वर्ष का हो गया था परन्तु फिर भी बच्चों की तरह खेल रहा था। लाडखान जी ने कहा, "आप इस तरह कब तक कुंअर जी बने रहोगे?," यह कह कर उसकी हसी की। कुंअर ने जाकर राणा से वह सब बात कही जो ठाकुर ने कही थी। करणजी ने कहा, "ठीक तो है, मुझे ... और राणा कहलाओ।" कुंअर ने कहा, "बापजी! आप तो विराजमान रहो,

परन्तु उसको मैं अवश्य मारूंगा।" तब राणा ने कहा, "पहले इतना पराक्रम प्राप्त करो।" जब लाडखान जी के कानों में यह बात पडी तो वह तुरन्त घर लौट गया।

दो वर्ष बाद राणा करणजी सयोगवश नागल गया; वहा पर उक्त बाघेला-बन्धु भी उससे मिलने आए। तब कुंअर ने सोचा, "आज मैं इन्हे मारूंगा।" उसने अपने साथियों से कहा, "मैं लाडखान जी को सरस्वती नदी मे स्नान करने अपने साथ ले जाऊंगा और पहाड़खान जी को राणाजी के पास ही छोड जाऊगा। वहा लाडखान जी को मार कर सकेत के लिए बन्दूक का भडाका कर दूंगा ताकि उसी समय दूसरे भाई का भी काम तमाम कर दिया जाय।" इस अभिसन्धि के अनुसार कुंअर स्नान करने गया और अपने साथ एक साग भी ले गया। वहा उसने लाडखान पर सांग से वार किया और उसके साथियों ने उसका वध कर दिया। फिर, बन्दूक चला दी गई और यह सूचना मिलते ही जो लोग राणा के पास थे उन्होंने पहाड़खान को मार दिया। जब पालनपुर के दीवान बहादुर खां ने यह बात सुनी तो उसने कहा, "ये दोनों ठाकुर मेरी रक्षा में थे, इसलिए कुछ इन्तजाम करना चाहिए वरना राणा उनके परिवारवालों की आबरू खराब करेगा।" यह विचार करके उसने घनाली और शीशराणा मे दो सौ घुड़सवार रख दिए। इस प्रकार लिया हुआ कब्जा अब तक चला आता है और ये गाव पालनपुर के ही अधिकार मे चले गए। मृतक ठाकुरों के एक-एक पुत्र था, जिनमें से एक, अपने गाव गोयाणी मे जाकर रहने लगा, जहां उसके वंशज अब तक मौजूद हैं। दूसरा लड़का अपनी बुआ के घर मुदासणा चला गया, जिसको वहां के ठाकुर से 'वांटा' प्राप्त हुआ।

रतनसिंह ने, अपने पिता की मृत्यु के बाद, लगभग पांच वर्ष राज्य किया और फिर निस्सन्तान मर गया। उसके बाद उसका भाई अभयसिंह गद्दी पर बैठा। यह राणा एक अर्जुनराव चोपड़ा नामक मरहठा को दांता लाया और रियासत की आमदनी मे से उसको चौथ देना स्वीकार किया। इसका कारण यह था कि उसके सरदार, पटावत, भाई-बन्धु और, यहां तक कि, उसके पड़ोसी-पड़ोसी राजा भी उसको परेशान करने लग गए थे। अर्जुनराव गायकवाड़ सेना के एक सौ घुड़सवार अपने साथ लाया; वह दांता में रहने लगा और आरम्भ मे तो नाममात्र के अधिकार से ही सन्तुष्ट रहा, परन्तु दो-तीन वर्ष बाद इस प्रकार शासन करने लगा जैसे उसी का अधिकार हो। वह अपने रहने के लिए एक गढ़ी भी बनवाने लगा और साथ ही, वहां के निवासियो को भी तंग करने लगा। तब राणा को भय हुआ कि कहीं उसकी गद्दी ही न छिन जाय। इसी बीच मे सूबेदार ने अपना मकान बनवाते समय कुछ राजपूतों के घरों के आगे पड़े हुए बांस के लट्ठे जबरदस्ती मंगवा लिए। अब, राजपूतों की आंखें खुली और जब मरहठे सिपाही 'इकडम तिकडम' कह कर हुक्म जताने लगे तब पूरा झगड़ा ही छिड़ जाता परन्तु, राजपूतों ने सोचा कि ऐसा करने से राणाजी मुसीबत में फंस जावेंगे। अतः उन्होंने दरबार मे जाकर शिकायत की कि परदेशी उनको बहुत तंग करने लग गए हैं। तब राणा ने कहा, 'जो तुम्हारे लिए

दुःख है वह मेरे लिए पहले दुःखदायक है।" यह कर उसने अपने सभी सरदारों को बुलाया। कुअर श्री मानसिंह उस समय पैंतीस वर्ष का हो गया था। उसने कहा, "अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं इन लोगों को बाहर निकाल दू।" राणाजी ने कहा, 'तुम सपूत हो, ऐसा ही करो।' तब कुअर ने चोपड़ा को कहलाया, "अब तुम यहां से खिसको।" जब मरहठों ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया तो कुअर ने उनको घेर लिया, उनका अन्न, पानी और घास बन्द कर दिया और धमकी दी कि 'यहां से निकलो वरना मार दिये जाओगे।' अन्त मे, वे निकलने को तैयार हुए परन्तु दाता के लोग भी कुछ दूरी तक उनको घेरे हुए साथ गए और जब वे गढवाड़ा पहुंच गए तो वापस अपने घर लौट आए। भालूसणा के ठाकुर सूजाजी ने मरहठो का स्वागत किया और सुदासणा के लोगो से यह कहकर झगड़ा करने लगा कि "तुम्हारी हद मे से मेरे 'बांटे' की जमीन मुझे दो।" तब सुदासणा के ठाकुर फतेहसिंह ने दाता जा कर कुअर मानसिंह से मदद मागी। कुअर अपनी फौज लेकर सुदासणा गया और वहां से उसने शत्रुओं को निकाल बाहर किया। अब, भालूसणा का ठाकुर भयभीत हुआ कि कही दांता से झगडा छिड़ गया तो बरबाद हो जायेगा; इसलिए उसने गायकवाड़ की फौज को विदा कर दिया और वे लोग अहमदाबाद की तरफ चले गये। वहा का सब बन्दोबस्त करके कुअर दांता लौट आयो जिसके थोड़े दिन बाद ही सवत् 1851 (1795 ई.) मे राणा अभयसिंह की मृत्यु हो गई।

अभयसिंह के तीन पुत्र थे; मानसिंह उसके बाद गद्दी पर बैठा; उसकी माता बसाई की चावड़ी थी। जगतसिंह और नाहरसिंह की माता तरसंगमा के पास घोराड़ के ठाकुर साहबसिंह की पुत्री भटियाणी थी।

मानसिंह ने गद्दी पर बैठते ही पहला पराक्रम यह किया कि पोसीना के धनाल नामक गाव पर एक मामूली-सा फेरा देकर वहां के कुछ मवेशी उठा लिए, परन्तु उनके पीछे ही गांव वालों की 'वार'[13] आई और अपने ढोर छुडा ले गई। इसके छः मास बाद उसने पोसीना के ही छांगोद नामक गांव पर धावा मारा और उसे लूट लिया। उसी समय वह गांव ऊजड़ हो गया और तब से वैसा ही पडा है। जब ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह मेवासियों पर चढाई करने गया तो उसने मानसिंह को भी बुलाया और वह चालीस सवारों सहित उस अभियान में शामिल हुआ। इस मुल्कगीरी के बाद जब राणा घर लौटने लगा तो महाराजा ने उसे एक घोडा भेंट दिया, जो एक हजार रुपयों के मूल्य का था। पांच वर्ष राज्य करने के बाद संवत् 1856 (1800 ई०) में मानसिंह मर गया। उस समय भाइयों मे अनबन थी इसलिए कुछ लोग कहते हैं कि उसे विष दे दिया गया था।

---

13 गांव वालों का जत्था। किसी गांव में लूट होने पर सब गांव के लोग मिलकर पीछा करते थे। यह 'वार' कहलाता था।

उसके भाई जगतसिंह ने गढ़वाड़ा के गाव नेंदरड़ी पर 'टीका-धाड़'[14] करके वहां के कुछ आदमी पकड़ लिए और गांव को जला दिया; ऐसा करने का कारण यह था कि उस गाव के भील नवावास गांव से कुछ भैंसें उठा ले गये थे तब वहा का पटेल इस तरह फरियाद करता हुआ दांता आया 'मुझे एक फावडा दो, मेरे स्वामी मानसिंह की कहीं कोई हड्डी भी बच रही होगी तो खोद कर निकालूगा क्योकि यदि वह जीवित होता तो नेंदरड़ी के भील मेरी भैंसों को पकड़ कर ले जाने की हिम्मत न करते।'. फिर एक बार उसने सेना एकत्रित करके पोसीना पर चढाई की तब वहां के ठाकुर केसरीसिंह ने हुडाद और अपने गाव के बीच मे ही आकर उससे भेंट की, एक घोड़ा नजर किया और जमानत दी। लौटते समय, सेना गढवाडा गई और महावड़ पर चढी तब ठाकुर बखतोजी ने आकर एक घोड़ा नज़र किया और कौल-करार करके खातरी जमानत दी।. फिर, नाना कोठारए के गढिया हाथीजी से, जिस पर एक चोरी का मुकदमा था, राणाजी ने घोड़ा नजराने मे लिया और इसके बाद सेना घर लौट आई।

संवत् 1870 (1814 ई.) मे फिर फौज इकट्ठी करके राणाजी धनाल गाव से सब भैंसें घेर लाया। इसके बाद देरोल के राजा के गाव बावल कोठिया को लूट लिया। दूसरे वर्ष, उसने पोसीना के ठाकुर के भाई के गाव खेरोज को लूटा; वहां पर उसके दो आदमी मारे गये। उसके भाई नाहरसिंह की उस गाव की लड़की ब्याही थी इसलिए उसने आ कर कहा, 'इस समय, मेरे सिर पर दूषण पड़ेगा, लोग कहेंगे कि नाहरसिंह ने अपने ससुर का गांव लुटवा दिया।' इस कारण वे लौट गए और धरोई गाव पर जा चढे। इस स्थान पर शत्रु ने कीरताजी नामक बारहठ को मिला लिया, जो राणा की फौज मे था; उसने गांव के दरवाजे के पास जाकर कहा, 'शकुन अच्छा नहीं है' इसलिए वहा से लौट कर उन लोगों ने थाणा पहुच कर डेरा लगाया। इस मुकाम पर राणा ने अपने सरदारों और कामदारों को बुलाकर पूछा, 'इन इमदादी सिपाहियों की तनखाह कैसे दी जायेगी?' उन्होंने उत्तर दिया, 'पावडी के ठाकुर रतनसिंह और पंधारिया के ठाकुर प्रगदोजी ने मेवासियों को बहका कर दांता की सीमा में बुलाया और उनको लूटमार करने को बढ़ावा दिया इसलिए इनके दोनों गांवों को लूट कर सेना (शिरबंधियों[15]) का वेतन चुका देना चाहिए।' तब राणा ने पंधारिया पर चढ़ाई करने की तैयारी की; यह सुनकर उस गाव का ठाकुर

14. राजा या ठाकुर के राजतिलक या टीका होते ही उसको किसी पड़ोसी इलाके में 'धाड़', 'दौड़' या हमला करना पड़ता था, यह 'टीका-धाड़' या 'टीका-दौड़' कहलाती थी।

15. नियमित सेना के अतिरिक्त भाड़े के सिपाही, जिनको किसी भी समय सेवा-मुक्त किया जा सकता था और जिनको निश्चित पगार दी जाती थी।

पावड़ी भाग गया और वहां दूसरे लोगों के साथ मिलकर, जिनको धमकी दी गई थी, लडने को तैयार हुआ। रात के अन्तिम पहर मे राणा की सेना पाणा से उठ कर अंधारिया पहुची तो वह गांव सूना मिला। वहां से वे मोमनवास गए तो मोरचे में से बन्दूकें चलने लगी। इस पर राणा की सेना के अग्रगामी सिपाहियों ने भी बन्दूकें चलाना शुरू कर दिया। अधारिया के ठाकुर अणदोजी के एक गोली लगी और वह मर गया; बाकी लोग, जो मोमनवास मे इकट्ठे हुए थे, भाग गए; गाव पर धावा बोल कर लूट लिया गया। तुरन्त ही, राणा वहा से चलकर पावड़ी जा उतरा और उस गांव से भी लूट का माल लेकर लौट गया और उसने मोटासड़ा आकर पड़ाव डाला। उस स्थान पर पावडी का ठाकुर जमानत लेकर राणाजी के पास आया। यह तय हुआ कि अधारिया गाव में तीसरा हिस्सा राणाजी का होगा और इस बारे म आपस मे लिखा-पढी भी हो गई। इसके बाद आस-पास के मेवासियों से भी जमानतें ली गईं और सवत् 1872 (1816 ई) मे सेना का विघटन करके राणा दांता वापस लौट गया।

ठाकुर बखताजी जीताजी ने एक बार राणा जगतसिंह को कहा, "खाभीवास और कणबीवास से मेरा खर्चा पूरा नही पड़ता इसलिए मुझे कुछ और मिलना चाहिए।' राणा ने कहा, "तुम्हारे पिता के नाम जो कुछ मिला हुआ था उससे अधिक तुमको कुछ नहीं मिल सकता।" इस पर बखताजी ने रुष्ट होकर डीसा के दीवान शमशेर खान के पास जा कर कहा, "मुझे थोडी सी फौज दो तो मैं जाकर दांता रियासत को नुकसान पहुंचाऊं और अपनी माग पूरी कराऊं।" उन दिनों राणा में और दीवान में मित्रता थी इसलिए दीवान ने राणाजी को लिखा, "बखताजी को मना लो वरना यह कोई न कोई उपद्रव करेगा।" तब राणा ने बखता जी को बुला लिया और कहा, "ऊटडी और भूतावास, ये दोनो गाव एक अतीत* के गिरवी रखे हुए हैं, इन्हें छुड़ा लो तो इनका पट्टा तुम्हारे नाम लिख दूं।" बखताजी ने यह बात मजूर कर ली और दोनों गाव छुडा लिए, जो उस समय उजाड़ पडे थे। बाद में, उसने दोनों गावों की धरती को मिलाकर अमापुरा नामक एक ही गांव बसा लिया और अपने परिवार को वहा रख कर वह स्वयं दाता में ही प्रधान के रूप में राणाजी की सेवा में रहने लगा। दो वर्ष बाद वह मर गया और अमापुरा उसके पुत्रों एवं भाई भवजी को मिला।

उन्हीं दिनो कण्डोल का ठाकुर सरदारसिंह निस्सन्तान मर गया तो राणा जगतसिंह और उसके भाई नाहरसिंह ने कण्डोल जागीर के पाचों गावों को खालसा कर लिया और वे स्वर्गवासी ठाकुर की सम्पूर्ण चल सम्पत्ति भी दांता ले आए। ठाकुर का अन्तिम संस्कार कण्डोल मे ही किया गया और ठकुरानी को गुजारे के लिए

* साधु।

तीन कुंए दे दिए गए। तब भवजी जीताजी ने उस जागीर पर अपना हक जाहिर करते हुए कहा, "कण्डोल में से मुझे भी कुछ न कुछ अवश्य मिलना चाहिए।" राणा जगतसिंह ने कहा, "तुम्हारे पिता जीताजी को खाभीवास और करणवीवास मिले हुए थे–वही खाओ, इस जायदाद में से तुम्हें कुछ नहीं मिलने वाला है।" तब भवजी नाराज होकर पालनपुर चला गया और अपने साथ मेहरू सिन्धी को भी ले गया, जो राणा का पुराना जमादार था परन्तु उन दिनों उसकी राणा से खटपट हो गई थी। पालनपुर पहुंच कर भवजी ने माइल्स साहब को एक दरख्वास्त दी जिसमें कण्डोल पर उत्तराधिकार का अपना और राणा जी का हक बराबर होना प्रकट किया तथा शिकायत की कि राणाजी ने पूरे ही ठिकाने पर अधिकार कर लिया। उसने यह भी लिखा, "मैं यह पूरा गांव अंग्रेज सरकार को लिख कर देता हू, उसमें से सरकार की नजर में जितना वाजिब हो, वही मुझे दे दे, मैं वही स्वीकार कर लू गा।" राणा जी के किसी हितचिन्तक को जब यह बात मालूम हुई तो उसने यह समाचार अपने स्वामी को लिख भेजा। तब राणाजी ने अपने भाई नाहरसिंह और एक कामदार जीवा कलाल को पालनपुर भेज कर कहलाया "मैं सम्पूर्ण दांता रियासत का रुपये में सात आना हिस्सा अंग्रेज सरकार को देने को तैयार हूं और सरकार को रियासत पर कब्जा करने की इजाजत देता हूं।" इसके बाद भवजी के हाथ पैर ढीले पड़ गए और उसने पालनपुर के दीवान फतहखान की नौकरी स्वीकार कर ली, जिसके बदले में उसे लागत में चार आना हिस्सा मिला। बाद में, राणा ने भवजी को करणपुर गांव दे दिया और उन दोनों ने साथ बैठकर कसूंभा पिया। अंग्रेजी सरकार ने दांता रियासत में सवत् 1876 (1820 ई०) में अपना थाना कायम कर दिया था।

जगतसिंह के समय में काकरेज के मेवासी कोलियों ने दो सौ घुड़सवार और पांच सौ पैदल लेकर दांता के रतनपुर और पुंजपुर गांवों पर धावा किया और वहां से भैंसें उठा ले गए। जगतसिंह ने पचास सवार और दो सौ पैदल ले कर 'वार' किया। मोटामड़ा के मैदान में मुठभेड़ हुई जिसमें लुटेरों के पचीस आदमी मारे गए, राणा की तरफ भाटी राजपूत भीवा जमादार घायल हुआ और उसका घोड़ा मारा गया। मवेशी लौटा लिए गए और दांता लौट कर राणा ने भीवा जमादार को सोने के कड़े, एक घोड़ा व अन्य पुरस्कार प्रदान किये।

राणा जगतसिंह के कोई पुत्र नहीं था इसलिए उसने अपने भाई नाहरसिंह को कहा कि उसके जालिमसिंह और हरिसिंह नामक दोनों पुत्रों में से एक को गोद दे दे। नाहरसिंह ने सोचा कि यदि पुत्र गद्दी पर बैठेगा तो पिता को उसके चरणों में बैठना और मुजरा करना पड़ेगा इसलिए उसने मना कर दिया। कुछ लोगों ने जगतसिंह के कान भरे कि नाहरसिंह उसको विष देकर अथवा तलवार का वार करके मारना चाहता था। यह बात उसके दिल में जम गई और वह अपने महलों की किलेबन्दी सी करके अन्दर ही रहने लगा; उसने कचहरी में भी आना बन्द कर

नौकर उसको जगाने गया तो उसने पूरी घटना कह सुनाई ।[16] राणा को इससे बड़ा दुःख हुआ और उसने आज्ञा दी कि जीवा के घातक को मार दिया जाय। चारों तरफ सवार दौड़े, परन्तु मन ही मन में तो जीवा के मारे जाने से प्रसन्न हो थे, इसलिए यों ही ऊपर-नीचे इधर-उधर दौड़ भाग कर कुछ समय बाद लौट कर उन्होंने कह दिया कि हत्यारा तो हाथ नही आया। इस पर जगतसिंह के मन मे यह बात जम गई कि नाहरसिंह ने ही उसके कारभारी को मरवाया था और उसको भी मारने का मनसूबा करता था। वह ऐसी बातें लोगों के सामने खुल्लमखुल्ला कहने लगा। तब नाहरसिंह ने राणाजी को कहलाया, 'तुम इस तरह मेरे माथे कलक क्यो लगाते हो? मैं तुम्हारा गाव छोड़ कर चला जाऊगा।' उसने अहमदनगर जाने की तैयारी की। तब लोगों ने राणा को कहा, 'नाहरसिंह नाराज हो कर जा रहा है; आपको उसे समझा बुझा कर रोकना चाहिए; यदि वह चला जायेगा तो आपकी शोभा नही होगी।' इस पर राणा ने कुछ आदमियों को भेज कर नाहरसिंह को ठहरने के लिए राजी कर लिया और सब ने उन दोनों को साथ-साथ कसूंभा पिलाया। एक महीने बाद फिर किसी ने राणा को बहका दिया कि नाहरसिंह उसका वध करने की तलाश मे है इसलिए वह मुदासणा चला गया और वहां दो महीनो तक ठाकुर मोहबतसिंह के पास रहा। नाहरसिंह और सब कारभारी मिलकर उसके पास गए और उसे विश्वास दिला कर दांता लौटा लाने मे सफल हुए। कोई दस बारह दिन ही दांता मे रहा होगा कि वह फिर भाग कर पेयापुर मे एक अतीत के मठ में चला गया और उसको कहा, 'नाहरसिंह मुझे मार देने की कोशिश मे है।' वह वहा पर एक महीने रहा परन्तु, अन्त मे, फिर समझा बुझा कर लोग उसे घर ले आए। इसके कुछ ही समय बाद बुखार और अन्य रोग उसके पीछे पड गए और एक महीने की बीमारीके बाद फागुन वदि 7. सवत् 1879 (1823 ई.) के दिन वह परलोक चला गया।

राणा जगतसिंह की मृत्यु के बाद नाहरसिंह गद्दी पर बैठा। संवत् 1892 (1836 ई) मे उदयपुर का महाराणा जवानसिंह अम्बाजी की यात्रा के लिए आया तब उसने नाहरसिंह को मुलाकात के लिए बुलाया। इसके अनुसार नाहरसिंह ने जा कर माताजी के स्थान पर डेरा किया। उदयपुर के राणा ने पुछवाया, 'आपसे मुलाकात किस कायदे मे होगी? आपके दरबार में इस विषय का कोई लेख है क्या?' तब नाहरसिंह ने अपने सभी सरदारो और कारभारियो को पूछा परन्तु कोई लेख नहीं मिला। इसके बाद, सभी बड़े-बूढ़े आदमियों को पूछा गया और उनमें मेरी (इस वृत्तान्त के लेखक, भाट) की भी गणना थी। मैंने कहा कि राणा कान्हड़ देव का विवाह उदयपुर हुआ था और सीसोदणी रानी कोटड़ा दरवाजे पर सती हुई

16. गुजराती अनुवादक ने लिखा है कि यह बात राणाजी को रामचंद गांधी ने जाकर सुनाई थी।

दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि आसपास के गांवो के भीलों और कोलियो ने लूटपाट का सिलसिला जारी कर दिया। अन्त में, लोगों ने उसके पास जाकर फर्याद की, "यदि इस तरह आप राज्य प्रबन्ध को छोड़ कर महलो मे ही रहने लगेंगे तो राजकाज कैसे चलेगा?" राणा जगतसिंह का किसी भी कारभारी पर विश्वास नही रहा, केवल जीवा कलाल ही ऐसा था जिसकी सलाह से वह काम करता था। लोगो मे इस बात की चर्चा भी होती थी कि उसने एक दारू बेचने वाले को मुसाहब बना रखा था। उन्हीं दिनो दांता मे गुमान नामक एक सीसोदिया राजपूत भी रहता था जिसकी एक दरोगन को जीवा जबरदस्ती उडा ले गया था। उधर जीवा की दो पत्नियो में से एक के साथ राजपूत गुमान की साठगांठ थी। इन्हीं कारणों से उन दोनो मे कट्टर दुश्मनी ठन गई थी, परन्तु राणा जी के डर से गुमान जीवा को कुछ नही कह सकता था; साथ ही दूसरे कारभारियो और सामान्य लोगो मे भी जीवा के प्रति काफी रोष था।

एक बार वह कलाल फसल का 'कूंत'* करने निकला तब उसने गुमान के बाग की माफी की जमीन पर भी 'हासिल'४ कायम कर दिया। राजपूत ने इसके विरोध मे बहुत कुछ कहा परन्तु उसने कोई ध्यान नही दिया और गाली गलौज करने लगा। इस पर गुमान को बहुत गुस्सा आया और वह सोचने लगा कि कलाल को किस तरह मारे। उसने पहले तो अपनी माता और भाई को पोसीना के गाव हडाद मे पहुंचा दिया और दूसरे दिन तडके ही उस कलाल के घर के सामने जा बैठा। थोड़ी ही देर बाद कलाल बाहर आया और उसने राजपूत को बैठा देख कर पूछा, "कहां जा रहा है?" गुमान ने कहा, "किसी गांव जा रहा था, परन्तु पहले शकुन देख रहा हूं।" वास्तव में, कलाल घबरा गया था परन्तु वह चला गया और निपट कर जल्दी-जल्दी घर लौटने लगा। राजपूत ने उसका पीछा किया और वार कर दिया। अब, उनमे लड़ाई होने लगी; कलाल के हाथ में पीतल का लोटा था जिससे उसने गुमान के सिर मे चोट मारी परन्तु बदले में उसको कटारी के दो घाव खाने पडे। किसी तरह गुमान की पकड से बचकर वह भागा और एक ढेड़$ के घर मे शरण लेने को घुस ही रहा था कि राजपूत ने, जल्दी से लपक कर, उसको पकड लिया और अपनी ढाल व तलवार उठाकर खतम कर दिया। तब मृतक के शरीर पर जो कुछ गहने थे उनको उतार कर गुमान भागा; कुछ लोगो ने हो-हल्ला मचाना चाहा तो उसने कहा, "चुप रहो वरना तुमको भी मार डालूंगा।" वे चुप हो गए और राजपूत साफ बच कर मगरे मे चला गया। राणाजी अभी तक सो रहा था, एक

X खड़ी फसल या कटे हुए अनाज की राशि को देख कर उपज का आकलन करना 'कूंत' कहलाता है।

४ लगान। $ अन्त्यज; अछूत।

नौकर उसको जगाने गया तो उसने पूरी घटना कह सुनाई ।[16] राणा को इससे बड़ा दुःख हुआ और उसने आज्ञा दी कि जीवा के घातक को मार दिया जाय। चारो तरफ सवार दौड़े, परन्तु मन ही मन मे तो जीवा के मारे जाने से प्रसन्न हो थे, इसलिए यो ही ऊपर-नीचे इधर-उधर दौड़ भाग कर कुछ समय बाद लौट कर उन्होने कह दिया कि हत्यारा तो हाथ नही आया। इस पर जगतसिंह के मन मे यह बात जम गई कि नाहरसिंह ने ही उसके कारभारी को मरवाया था और उसको भी मारने का मनसूबा करता था। वह ऐसी बातें लोगो के सामने खुल्लमखुल्ला कहने लगा। तब नाहरसिंह ने राणाजी को कहलाया, 'तुम इस तरह मेरे माथे कलंक क्यो लगाते हो? मैं तुम्हारा गाव छोड़ कर चला जाऊगा।' उसने अहमदनगर जाने की तैयारी की। तब लोगो ने राणा को कहा, 'नाहरसिंह नाराज हो कर जा रहा है; आपको उसे समझा बुझा कर रोकना चाहिए; यदि वह चला जायेगा तो आपकी शोभा नही होगी।' इस पर राणा ने कुछ आदमियो को भेज कर नाहरसिंह को ठहरने के लिए राजी कर लिया और सब ने उन दोनो को साथ-साथ कसूंभा पिलाया। एक महीने बाद फिर किसी ने राणा को बहका दिया कि नाहरसिंह उसका वध करने की तलाश मे है इसलिए वह सुदासणा चला गया और वहां दो महीनो तक ठाकुर मोहबतसिंह के पास रहा। नाहरसिंह और सब कारभारी मिलकर उसके पास गए और उसे विश्वास दिला कर दाता लौटा लाने मे सफल हुए। कोई दस बारह दिन ही दाता मे रहा होगा कि वह फिर भाग कर पेथापुर मे एक अतीत के मठ में चला गया और उसको कहा, 'नाहरसिंह मुझे मार देने की कोशिश मे है।' वह वहा पर एक महीने रहा परन्तु, अन्त मे, फिर समझा बुझा कर लोग उसे घर ले आए। इसके कुछ ही समय बाद बुखार और अन्य रोग उसके पीछे पड गए और एक महीने की बीमारी के बाद फागुन वदि 7 सवत् 1879 (1823 ई.) के दिन वह परलोक चला गया।

राणा जगतसिंह की मृत्यु के बाद नाहरसिंह गद्दी पर बैठा। सवत् 1892 (1836 ई) में उदयपुर का महाराणा जवानसिंह अम्बाजी की यात्रा के लिए आया तब उसने नाहरसिंह को मुलाकात के लिए बुलाया। इसके अनुसार नाहरसिंह ने जा कर मानाजी के स्थान पर डेरा किया। उदयपुर के राणा ने पुछवाया, 'आपसे मुलाकात किस कायदे मे होगी? आपके दरबार में इस विषय का कोई लेख है क्या?' तब नाहरसिंह ने अपने सभी सरदारो और कारभारियों को पूछा परन्तु कोई लेख नहीं मिला। इसके बाद, सभी बड़े-बूढे आदमियों को पूछा गया और उनमें मेरी (इस वृत्तान्त के लेखक, भाट) की भी गणना थी। मैंने कहा कि राणा कान्हड देव का विवाह उदयपुर हुआ था और सीसोदणी रानी कोटड़ा दरवाजे पर सती हुई

16. गुजराती अनुवादक ने लिखा है कि यह बात राणाजी को शामचंद गांधी ने जाकर सुनाई थी।

थी; उसका पालिया आज तक मौजूद है। इसके बाद राणा जवानसिंह ने नाहरसिंह को भेंट के लिए बुलाया और ताजीम देकर उसका सम्मान किया। नाहरसिंह ने एक सौ रुपये मूल्य की एक बन्दूक नजर की और वापसी मे जवानसिंह ने भी एक घोड़ा और मोतियो की कण्ठी प्रदान की; साथ ही, राजपुरोहित को भी सोने के कड़े इनायत किए। दो दिन वहा ठहर कर जवानसिंह घर को रवाना हुआ तब कुंअर जालिमसिंह अपने सवारो के साथ सिरोही तक उसे पहुंचाने गया।

सवत् 189– में नाहरसिंह और जालिमसिंह चन्द्रग्रहण के अवसर पर आबू की यात्रा करने गए। उस समय आबू मे गुजरात, मारवाड़ और मेवाड़ से बड़े-बड़े सघ यात्रा पर आए हुए थे। ग्रहण के समय जब बहुत से लोग नखी तालाब में स्नान करने लगे तो एक साधु ने आकर कहा, 'इस वेला मे, इस सरोवर मे कोई स्नान न करे, जो करेगा वह मृत्यु को प्राप्त होगा।' कुछ यात्रियो ने इस बात को मान कर स्नान नही किया, परन्तु बहुत से लोगो ने विश्वास नही किया और स्नान कर लिया। उस समय चौसठ योगिनियों के रथ आकाश से उतरे और उन्होंने स्नान करना आरम्भ कर दिया। सुबह, हैजा चालू हो गया और जितने लोगो ने स्नान किया था उनमें से कुछेक को छोड़कर सब मर गए। राणा और कुंअर ने ग्रहण समाप्त होने के बाद स्नान किया था इसलिए उन्हें कोई कष्ट नही हुआ और न उनके सघ का कोई आदमी ही मरा। वे चार दिन तक वहां रह कर अम्बाजी के स्थान पर चले गए।

इसके बाद बम्बई से गवर्नर साहब सादड़ा आए और उन्होंने महीकाठा के सभी भोमियो को मिलने के लिए बुलाया। राणा नाहरसिंह और कुंअर जालिमसिंह भी और लोगो के साथ सादडा गए और उन्होने साहब को एक घोडा व कीमखाब का एक थान भेंट किया; बदले मे, गवर्नर ने दोनो पिता और पुत्र को एक-एक सिरोपाव, दुशाले और पाग भेंट मे दिये। दूसरे भोमियों को भी सिरोपाव दिये गए। तदनन्तर, साहब बम्बई लौट गया और भोमियें अपने-अपने घर गए। उस समय, हिन्दू राजा ईडर के महाराजा गम्भीरसिंह, अहमदनगर के महाराजा करणसिंह और राणा नाहरसिंह थे; मुसलमानो मे खास-खास सरदार पालनपुर का दीवान फतेह खान, राधनपुर का नवाब और वरगांव का दीवान शमशेर खान थे।

इसके बाद राणा नाहरसिंह मेजर माइल्स से मिलने पालनपुर गया और उसने जाहिर किया कि 'हमने हमारे राज्य मे बन्दोबस्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार को हिस्सा दे रखा है, परन्तु हम देखते हैं कि अग्रेज सरकार अपने प्रतिनिधि भेजने के बजाय पालनपुर के कर्मचारियो को भेज देती है जिनसे हमारा कोई अहदनामा नही है। मेजर ने नाहरसिंह को कोई संतोषप्रद उत्तर नही दिया और नवरात्र का समय समीप आ गया था इसलिए उसको माताजी के यहां उपस्थित होना आव-

श्यक था ग्रतः वह सीख ले कर चला गया। अन्त में, जब लैंग साहब[17] सादड़ा आया तो दीवान की जब्ती, जो सत्ताईस वर्ष से चली आ रही थी, उठा ली गई।

नाहरसिंह संवत् 1902 में परलोकवासी हुआ। जालिमसिंह ने उसका दाह-संस्कार गंगवा मे किया। बाद मे, नए राणा ने उसी स्थान पर एक छतरी भी बनवा दी थी।[18]

दांता के राजवंश की सुदासरणा शाखा विषयक टिप्पणी

जब राणा मानसिंह का पुत्र गजसिंह दांता की गद्दी पर विराजमान था और उसका भाई जसवोजी राणपुर की जागीर भोगता था तब पूंजा राणा का पुत्र और मानसिंह का भाई अमरसिंह सुदासणा में था। उस समय सुदासणा की जागीर मे केवल वही एक गांव था। अमरसिंह एक वीर और पराक्रमी योद्धा था इसलिए वह जसवोजी की जागीर को भी अपनी अधीनता में लेना चाहता था और इसी कारण वह राणपुर पर निरन्तर धावे मारता रहता तथा वहां से मवेशी आदि उठा ले जाता था। एक बार जब वह इसी तरह की धाड़ मार कर भैंसें ले जा रहा था तो जसवोजी ने उसे कहलाया, 'काकाजी! यह बात आपके योग्य नहीं है कि आप मेरे दूध पीने की गाएं भैंसे भी ले जा रहे हैं।' तब अमरसिंह ने उत्तर दिया, 'राणपुर की भूमि मे नर-भैंसे बहुत हैं, तुम्हें दूध की आवश्यकता पड़े तो उन्हीं में से किसी का पी लेना।' इस पर जसवोजी ने दांता जा कर मानसिंह को बड़े दुःख के साथ पूरी कहानी सुनाई। तब मानसिंह ने कहा, 'इस समय तो हम अमरसिंह को नहीं समझा सकते, परन्तु कभी न कभी मैं उसको देख लूंगा।'

इसके बाद मानसिंह ने अपने मन में शत्रुता की गांठ बांध कर मेवासियों और लुटेरों को, इनाम का लालच देकर, अमरसिंह का वध करने को उकसाया और इसी कारण वे लोग सुदासणा मे गड़बड़ी करने लगे। एक बार गढ़िया सुदासणा के मवेशी घेर ले गए तब अमरसिंह ने 'वार' किया और उनको भालूसणा में जा पकड़ा तथा लूट का माल वापस ले लिया। तब एक किसान ने आकर उसको कहा, 'आप सब ढोर वापस ले आए परन्तु मेरा एक सौ रुपये के मोल का बैल था वह इनमे नहीं है, इसलिए मेरी तरफ से तो आपने 'वार' किया न किया बराबर है। इस पर अमरसिंह लुटेरों के पीछे फिर पलटा और उनसे बैल छीन कर उसे घेर कर लाने लगा। परन्तु

17. कर्नल लैंग कई वर्षों तक महीकांठा के पोलिटिकल एजेण्ट (राजनीतिक प्रतिनिधि) के रूप में अधिकारी रहा और उसका नाम सभी जगह सम्मान के साथ लिया जाता है।

18. जेठ सुदी 10 सोमवार के दिन संवत् 1902 में राणा नाहरसिंह का देहान्त गंगवा में हुआ और उसका दाहसंस्कार सरस्वती के किनारे हुआ, यह तो सही है परन्तु उसकी छतरी गंगवा मे नहीं, दांता के पास बनी हुई है। (गु. अ.)

वह जानवर बड़ा अड़ियल था, हाकने पर बार-बार वापस भागता था। अन्त में, अमरसिंह ने सोचा अगर बैल लुटेरों के पास चला गया और वे इसे ले गए तो मेरी इज्जत ही चली जायेगी' इसलिए उसने बैल को अपने भाले से मार डाला और लौट आया। इसी हत्या के कारण वह चार मास के अन्दर-अन्दर मृत्यु को प्राप्त हो गया इसका किस्सा इस तरह है—

वह चित्रासणी के ठाकुर से मित्राचार के कारण मिलने गया था। लौटते समय एक मीर (गवैया) उसके साथ हो गया। अमरसिंह ने कहा, इस समय लुटेरे और बाहरवाट बहुत हैं तुम हमारे साथ नहीं निभ सकोगे इसलिए अभी मत चलो।' मीर ने कहा बापजी! मैं तो आपके साथ ही चलूंगा।' यह कह कर-वह पहले की तरह ही साथ चलता रहा। इतने ही में राधनपुर के बांवी के सवार फेरा देने निकले थे, पलखड़ी गाव के आगे अमरसिंह की उनसे मुठभेड़ हो गई। जब राजपूत सवार उनसे बच कर भागने लगे तो मीर की घोड़ी थक कर लाचार हो गई; तब अमरसिंह ने मीर को कहा 'जल्दी से कूद कर घोडी को मार दे और मेरे घोडे पर पीछे आ कर बैठा जा।' परन्तु मीर घोडी पर से उतरा-उतरा तब तक तो पीछा करने वाले आ पहुचे। मीर चिल्लाया 'बापजी! मुझे छोड़ कर मत जाओ।' अमरसिंह उसकी मदद करने को लौटा और उसी समय एक गोली उसकी छाती में लगी जिससे वह वह धराशायी हो गया।

अमरसिंह के पुत्र हठियाजी के मरने के बाद उसका कुंअर खुमाणसिंह केवल अठारह महीने का रह गया था इसलिए जसवोजी ने सुदासणा जा कर अपना अधिकार जमा लिया। तब हठियाजी की ठकुरानी ने राणाजी को कहा, 'अब, मेरा गुजारा कैसे चलेगा?' तब राणाजी ने उसको अडेरण गाव दिया जहां उसके वशज आज तक रह रहे हैं।

जसवोजी सुदासणा ही रहा; उसके पांच कुंअर थे। सबसे बड़ा सरदारसिंह उसके बाद ठाकुर हुआ; अजबोजी और धनराज जी को राणा जी से सोलाणु गाव मिला; नाथजी और जोरजी को जसपुर मिला, जिसको जसवोजी ने बसाया था। जसवोजी के समय मे विठोवा सूबादार की अध्यक्षता में गायकवाड़ की सेना सुदासणा आई और गड़बड़ी करने लगी तब भोजराज रावल, टोगो वनोल और पानियाली का गढ़वी घेलोजी बड़वा काम आये। सेना ने गाव का विध्वंस किया और लौट गई तब लोग मगरो मे से लौटे और गाव का पुनर्निर्माण किया।

उन दिनो गायकवाड़ की सेना प्रति तीसरे या चौथे वर्ष आया करती थी; जब गांव के लोगों को उनकी आमद की खबर होती, जो प्रायः दस कोस की दूरी पर ही हो जाया करती थी, तो वे त्रघाया[19] से ढोल पिटवा कर चिल्लाते "भाग

19. त्रघाया = ढोल बजाने वाला

इस वृत्तान्त से मुझे अगस्त-सितम्बर, 1965 ई. मे भारत पर पाकिस्तान

जाम्रो, भाग जाम्रो, फौज म्रा रही है।" तब लोग पहाड़ियों मे भाग कर शरण लेते म्रौर वहीं छुप जाते। जब सेना म्रा जाती तो वह गाव को लूटती म्रौर फिर म्राग लगा देती; इसके बाद, म्रगर मरहठे कुछ समय के लिए वही जम जाते तो कर या जमाबन्दी के नाम पर गांव वाले कोई रकम तय करते म्रौर उस रकम का भुगतान कर देने पर फैसला हो जाता; लोग वापस म्रा जाते म्रौर फिर से म्रपने घरबार बसाने लगते।

जसवोजी की मृत्यु के बाद सरदारसिंह गद्दी पर बैठा। म्रब राणा गजसिंह वृद्धावस्था को प्राप्त हो गया था, परन्तु उसके कोई पुत्र नही था इसलिए उसने सरदारसिंह को गोद ले लिया। परन्तु, इसके बाद ही गजसिंह के पृथीराज नामक पुत्र उत्पन्न हुम्रा इसलिए उसकी मृत्यु के बाद सरदारसिंह ने दांता की गद्दी पर म्रपना हक ज़ाहिर किया म्रौर उसको छोड़ने की एवज़ में वसाई, डाबोल, डालेसणा म्रौर म्रन्य कुछ गांव प्राप्त किये। उसके जो भाई, बटवारे के झगड़े में, बाहर निकल गए थे, उनको भी उसने कुछ भूमि म्रौर खेत म्रादि दिये गये।

सरदारसिंह का ज्येष्ठ पुत्र उम्मेदसिंह था। उसके छोटे चार पुत्र चन्द्रसिंह, वखतसिंह, सुरतानसिंह म्रौर प्रतापसिंह थे, जिनको गामलात में बसाई गांव मिला। सरदारसिंह ने तेम्वा नामक गाव पर धावा किया था म्रौर वहां से ढोर व मनुष्य पकड लाया था; तब तेम्वा से 'वार' हुई म्रौर झगड़े मे कुमर उम्मेदसिंह मारा गया। उसके तीन पुत्र थे; म्रमरसिंह तो पाटवी कुंमर था म्रौर छोटे जगूजी व म्रगरसिंह थे, जिनको खानगी के लिए सयुक्त रूप से पाच गाव मिले।

सरदारसिंह की मृत्यु के बाद उसका पौत्र म्रमरसिंह उत्तराधिकारी हुम्रा। खिलोड जिला मुदासणा म्रौर तारंगा के बीच मे है; वह दांता के पटावत हडियल राजपूतों को मिला हुम्रा था; परन्तु, मेवासियों के उपद्रवों से तंग म्राकर वे लोग

के म्राक्रमण के समय जोधपुर नगर की जनता की हालत याद म्रा जाती है। सायरन बजता, जीपों म्रौर लाउडस्पीकरों से ऐलान होना 'सावधान, दुश्मन के हवाई जहाज म्रा रहे हैं' म्रौर लोग, पहाड़ियों मे नहीं, दौड़-दौड़ कर घरों के सामने या मैदानों में खुदी हुई खाइयों में छुप जाते। हवाई जहाज गोले या बॉम्ब डालकर चले जाते; 'खतरा खतम' का सायरन म्रौर ऐलान होना म्रौर लोग वापस म्रपने-म्रपने घरों में म्रा जाते। मूल वृत्तान्त लेखक ने लिखा है कि गायकवाड़ सेना की धाड़ के समय स्वयं उसको कई बार पहाड़ियों में जा कर छुपना पड़ा था। विचित्र संयोग है कि जोधपुर पर पाकिस्तान के म्राक्रमण के समय इन पंक्तियों के लेखक को भी कई बार हवाई हमले के समय खाइयों में शरण लेनी पड़ी थी। (हि. म.)

वडनगर तालुके मे करवटी गांव मे चले गए। तव राणाजी की रजामन्दी से सुदासणा के ठाकुर ने उस जिले पर अधिकार कर लिया। अमरसिंह के समय में गायकवाड़ की सेना को बहुत-सा नुकसान पहुचा कर पीछे हटा दिया गया था परन्तु सुदासणा का एक भी आदमी नही मरा। यह वही अमरसिंह था जिसने दाता पर भी अधिकार कर लिया था।

अमरसिंह का पुत्र फतेहसिंह हुआ, जिसके मोहबतसिंह और पनजी नामक दो कुअर थे। मोहबतसिंह के समय मे सवत् 1860 (1804 ई.) मे काकाजी की अध्यक्षता मे गायकवाड की सेना आई और खूब लडाई हुई। मरहठों के साठ आदमी मारे गये परन्तु माणिकनाथ बाबा[20] की आत्मा ठाकुर की सहायता कर रही थी इसलिए उसी की विजय हुई और उसका एक भी मनुष्य नही मरा। यह माणिकनाथ वही बाबा है जिसने अहमदाबाद बसाने की आज्ञा दी थी और जिसके बनवाये हुए तरसगमा व सुदासणा की पहाड़ियों पर दो देवल हैं। वह इन्ही में रहा करता था।

मोहबतसिंह ने रणशीपुर पर 'दौड' की और वहां से मवेशी व आदमी पकड़ लाया क्योंकि वहा के भील उसके गांव डाबोल से भैंसें उठा ले गये थे।

मोहबतसिंह के चार पुत्र थे, हरिसिंह, रतनसिंह, परबतसिह और मोहकमसिंह। हरिसिंह ने चार वर्ष राज्य किया और उसके वाद रतनसिंह गद्दी पर बैठा जो दो वर्ष रह कर मर गया। फिर, उसका पुत्र भूपतसिंह पाट बैठा परन्तु एक वर्ष बाद वह भी मर गया। इसके बाद ठाकुर पर्वतसिंह मालिक हुआ। मोहकमसिंह बचपन में ही मर गया था।

●●

20. यह वही सन्त है जिसने अहमदाबाद बसाने की आज्ञा दी थी और जिसके नाम पर 'माणिक चौक' व 'माणिक बुर्ज' प्रसिद्ध हैं।—देखिए, बम्बई गजेटियर, भा. 4, (अहमदाबाद) पृ. 276 और 'जर्नल ऑफ दी बाम्बे ब्राच ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी 1917–18, पृ. 91 (टिप्पणी)।

प्रकरण बारहवां

ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह (1)

खुमाणसिंह चाम्पावत ने महाराजा की अच्छी चाकरी की थी इसलिए उसने प्रसन्न होकर कहा "तुमको उच्च पद पर पहुंचाने की तो मेरी बहुत इच्छा है परन्तु मुझे यह आशका भी है कि ऊँचे बढकर शायद तुम मेरे ही विरुद्ध हो जाओ।" तब खुमाण ने सौगन्द खाई "मैं अपने राजा के विरुद्ध कभी तलवार नही उठाऊंगा।" इस पर महाराजा ने उसको वांकानेर[1] की जागीर और दरबार मे ताजीम का कुर्ब (सम्मान) प्रदान किया।

पानोल गाव एक चारण को मिला हुआ था, वह निःसन्तान मर गया। दिवगत चारण की माता और पत्नी किसी सम्बन्धी और उसके दो पुत्रो को अपने घर मे रखती थी और उन दोनो युवकों का विवाह भी उन्होंने करा दिया था। उन स्त्रियो ने उनके नाम पानोल का छठा भाग भी लिख दिया और उनका अलग घर बसा दिया। फिर भी, पूरा गांव प्राप्त करने के लालच मे दोनो भाइयो ने उन महिलाओ को मार देने का मनसूबा किया। वृद्धा को तो उन्होंने मार दिया परन्तु चारण की विधवा किसी तरह बच निकली और कष्ट सहती हुई ईडर जा पहुची। वहां उसने अपनी कष्ट-कथा राजा के आगे निवेदन की। इस पर गम्भीरसिंह ने आस-पास के चारणों के मुखियाओ को बुलाकर कहा, "तुम पानोल जाओ और दोनों हत्यारो को कहो कि वहा से निकल जावें, यह मेरी आज्ञा है।" परन्तु, इस आज्ञा का पालन नही हुआ। तब राजा ने एक-एक करके अपने सरदारो को बुला कर कहा, "तुम जाओ, उन दोनो चारणों को कत्ल करो और पानोल को खालसा कर लो।" प्रत्येक सरदार ने यही उत्तर दिया, "गुनाह माफ हो, मर्जी हो तो मेरा एक गांव खालसे कर लिया जाय परन्तु चारण का वध करना तो उचित नही है।" इस पर महाराजा ने हैदराबाद सिन्ध मे पैसा भेज कर पचास हब्शियों को किराये पर बुलवा लिया। जब वे लोग आये तो सभी सरदार और अन्य लोग समझ गये कि उनके आने का क्या कारण था इसलिए उन सबने मिल कर महाराजा का इरादा पलट देने के प्रयत्न किये, परन्तु उनकी कोई भी बात नही सुनी गई। तब सब लोगो ने खुमाणसिंह के पास जाकर कहा, 'महाराजा की आप पर पूर्ण कृपा है इसलिए यदि

---

1. ईडरवाड़ा का यह वांकानेर सोरठ के वांकानेर से भिन्न है।

आप कोई प्रयत्न करें तो बेचारे चारणों की जान अवश्य बच जायेगी।" इस पर खुमाणसिंह ने राजा के पास जाकर कहा, "इन चारणों का अपराध क्षमा कर दीजिये।" राजा ने साफ इनकार कर दिया। तब वांकानेर के ठाकुर ने कहा, "भविष्य में मैं आपको और कोई प्रार्थना नहीं करूँगा।" राजा ने कहा, "जैसी तुम्हारी इच्छा।" खुमाणसिंह को इस उत्तर से बड़ा दुःख हुआ और वह तुरन्त उठ कर अपने घर चला गया।

अब, महाराजा ने चारणों को मारने के लिए हब्शियों को भेजा। जब यह खबर उनको मिली तो युवकों में से एक ने तो अपने दो बच्चों के सिर काट दिये और स्वयं भी इतने भयंकर रूप में घायल हो गया कि अन्त में मर ही गया। उसके पिता ने भी अपघात कर लिया, परन्तु उसका भाई, जो उस समय अन्यत्र था, बच गया। हब्शी ईडर लौट गये। इस घटना के बाद, जो चारण युवक बच गया था उसने जगह-जगह से पांच सौ जाति-बन्धुओं को एकत्रित किया और उनको लेकर 'धरना' देने व कुछ देने के लिए गम्भीरसिंह को मजबूर करने को ईडर आया; परन्तु, महाराजा ने अन्य चारणों की सहायता से उनसे पिण्ड छुड़ाया।

खुमाणसिंह को चारणों की मृत्यु से ऐसा सदमा पहुंचा कि उसने हिमालय पर्वत पर जाकर मरण प्राप्त करने का निश्चय किया। राजा अपनी रियासत के अन्य सरदारों को लेकर खुमाणसिंह का इरादा बदलवाने को वांकानेर गया। उसने कहा, "यदि तुम इस चारण के कारण ही जा रहे हो तो पानोल में भी बड़ा कोई गांव ले लो।" इस पर ठाकुर ने उत्तर दिया, "मैं जब आपसे प्रार्थना करने आया था उस समय यदि आप सुन लेते तो मैं ठहर जाता, परन्तु अब आप कोटि उपाय करें तो भी मैं नहीं रुकूंगा।" ग्यारह नौकर, अपने भाई-बन्धु और रिश्तेदारों को साथ लेकर खुमाणसिंह ने घर छोड़ दिया। उसके संघ में एक पहाड़ी भी था जो अपने गांव के भीलों से इतना तंग आ गया था कि उसने हिमालय की बर्फ में गल कर प्राण देने का निश्चय किया ताकि वह दूसरे भव में उस परगने का ठाकुर होकर जन्म ले और भीलों से बदला ले सके।[2] अन्य लोगों की इच्छा विष्णुलोक में जाने की थी। उन्होंने भगवां वस्त्र धारण किये, सब शस्त्र एक ओर रख दिये और उनके स्थान पर केवल चांदी के तारों से लिपटी हुई छड़ियां हाथों में ले लीं; जिन घोड़ों पर वे सवार हुए उन पर से सभी युद्धोपयोगी साज उतार लिए गये थे। इस दृश्य को देखकर ठाकुर की ठकुरानियां और ग्रामवासी बहुत व्यथित हुए। जब यह शोक भरी सवारी रवाना हुई तो राजा गम्भीरसिंह ने रास्ता रोक कर अन्तिम बार कहा, "मैं तुम्हारे

2. यह बावडी गांव का निवासी था; उसने हिमालय में गलकर अगले जन्म में चांदणी का ठाकुर होने की कामना की थी। (गु. अ.)

चरणों की धूल पर अपनी पगड़ी रखता हूं, मत जाओ।" चाम्पावत ने उत्तर दिया, "आप ऐसा करेंगे तो मैं *यहीं आत्मघात कर लूंगा।" इसके बाद महाराजा* कुछ भी न कर सका।

घुमाणसिंह का पुत्र और उत्तराधिकारी बीस वर्षीय धीरजी वांकानेर का ठाकुर हुआ और महाराजकुमार उम्मेदसिंह की सेवा में रहने लगा, जिसने कृपा करके उसको कुछ भूमि और अपनी सवारी के आगे घोड़े पर नौबत बजवाने की प्रतिष्ठा प्रदान की।

अब महाराज गम्भीरसिंह वांकानेर के ठाकुर धीरजी पर बहुत मेहरबानी रखने लगे, जिसका कारण आगे लिखे विवरण से ज्ञात होगा। पोल के राव गद्दी पर दावा करके ईडर के इलाके में लूटपाट करते और गावों में आग लगा जाते थे; इसलिए महाराजा ने पोल पर आक्रमण करके बदला लेने का विचार किया। 1808 ई० में उसने छः हजार तोड़ेदार बन्दूकों वाले सिपाही रखे और अपने सभी सरदारों को ईडर बुलाया। उन सबको साथ लेकर वह वराली तक गया, परन्तु किसी को यह नहीं बताया कि इस अभियान का उद्देश्य पोल पर विजय प्राप्त करने का था। उनका दूसरा पड़ाव पोल से चार मील दूर एक घाटी पर हुआ।

जब महाराजा की सेना ईडर से रवाना हुई तब ही पोल के राव और उनके पूर्व-सामन्त रेहवर व वाघेला ठाकुर सचेत हो गए थे और उन्होंने खबर लाने को अपने गुप्तचर छोड़ दिये थे। पोल में जाने का एकमात्र मार्ग प्रायः नदी के पेटे में होकर है, जो ऊंची ऊंची चट्टानों के बीच में पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। इसके घाटे की रक्षा के लिए दो दरवाजे बने हुए हैं। इन दोनों दरवाजों के बीच में राव ने दीवार चुनवा दी और दरवाजों पर अपने 'भाई बन्धुओं' व बन्दूकधारी सिरबन्धियों को बैठा दिया। महाराजा के आदमी दिखाई देते ही वे लोग गोली मार देते थे। इस तरह गम्भीरसिंह के चालीस आदमी मारे गए और चार मास तक डेरा रहने पर भी इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का मार्ग ढूंढने में वह असफल ही रहा इसलिए वह बड़ी निराशा में पड़ गया था। तब उसने चार सौ सोने के कड़े बनवा कर उनको आसपास के भीलों में बटवाए और कहा, "मुझे पोल में पहुंचने का मार्ग बताओ।" भीलों ने कहा, "रास्ता तो इसके सिवाय और कोई नहीं है परन्तु दक्षिण की तरफ पहाड़ों के रास्ते से नसेनी द्वारा एक-एक आदमी चढ़ सकता है, लेकिन वह रास्ता बड़ा कठिन है और चढ़ने वाला आदमी अपने साथ शस्त्र भी नहीं ले जा सकता है। तब महाराजा ने तुरन्त नसेनियां मंगवाई और स्वयं अपने सामने एक एक करके अपने साथियों को ऊपर चढ़ाया। उस समय ईडर के सभी सरदारों ने विचार किया कि चांपावत महाराजा के कृपापात्र हैं इसलिए इस अवसर पर उन्हें ही आगे जाने देना चाहिए। वांकानेर के धीरजी और अन्य चांपावतों के

गुप्त रीति से सलाह की कि राव के सरदारों में से जिसने उनके भाई ठाकुर को मारा था उससे बदला लेने का अवसर आ गया है। इसलिए जब कूंपावत चढ़े तो धीरजी और उसके मित्र भी साथ ही चढ़ गए और ठेठ पोल तक चले गए। वहां पहुंच कर उन्होंने अरवों को बाजा बजाने व बन्दूकें चलाने को कहा। यह देख कर राव और उसके परिवार के लोग पहाडियों मे भाग गए और गम्भीरसिंह ने चवर डुलाते हुए पोल में प्रवेश किया। उसने राव के महलों मे गद्दी बिछवा कर उस पर आसन ग्रहण किया।

महाराजा ने एक महीने तक वहां रहने के बाद अपने परिवार को भी बुला लेने व अपना निवासस्थान वही बना लेने का विचार किया; परन्तु उधर राव लगातार ईडर के गांवों पर धाड़े मारता था इसलिए सरदारों ने कहा, "हुजूर ने पोल पर विजय प्राप्त करके यश बढा लिया है; अब, इस महल को छोड कर सब घरो को अग्नि को भेंट कर देना चाहिए और हम सबकों ईडर लौट जाना चाहिए अन्यथा राव वहा पर प्रवेश पा लेगा।" उनकी सलाह मान कर राजा ने डेरा उठा दिया और भीलोडा आ गया। उस समय शिरबधियो ने अपनी दो या तीन महीने की चढी हुई तनख्वाह का तकाजा किया और राजा को घेर कर बैठ गये, उसका हुक्का पीना या भोजन करना भी मुश्किल कर दिया। अन्त मे, उसने सभी गावो के पटेलो को बुला कर कहा, "तुम गांवो की सभी पैदावार को हड़प जाते हो और मुझे कुछ नही देते हो। अब बताओ क्या उपाय करूं ? इन लोगो ने मुझ पर पहरा बैठा दिया है।" तब पटेलों ने स्वेच्छा से यथायोग्य दण्ड की रकम जमा कराई। राजा ईडर लौट आया और क्योंकि चांपावतो ने इस अवसर पर बहुत अच्छी सेवा की थी इसलिए वह उन पर और भी अधिक कृपालु हो गया।

उन्ही दिनो पांच हजार सिन्धियों की सेना ने डूंगरपुर पर हमला करके वहा के रावल को पकड लिया और उसको पालकी में बैठा कर अपने साथ ले गए। इसके बाद, वे बासवाड़ा की तरफ बढ़े और वहां डट कर लडाई हुई जिसमे दोनों ही पक्षो के बहुत से आदमी मारे गए। बासवाडा के बहुत से गाव फतह कर लिए गए। तब वहाँ के एक जागीरदार अर्जुनसिंह ने सेना एकत्रित करके सिन्धियों को पराजित किया और देश से बाहर निकाल दिया। ऐसी गडबडियां पांच वर्ष तक चलती रही और अर्जुनसिंह के सिरबधिया सिपाहियो की पगार चढती रही। अन्त मे, जब उनकी मांग पूरी करने के लिए उसके पास और कोई उपाय नही रहा तो वह ठाकुर लूणावाड़ा और बालसिनोर की तरफ बढा और वहाँ उसने कर वसूल किया तथा बाद मे ईडरवाड़ा में होकर पालया जा पहुचा। वाकानेर के धीरजी की पालया के ठाकुर (रायसिंह) से तो अदावत थी और अर्जुनसिंह के साथ मित्रता थी इसलिए वह जाकर अर्जुनसिंह से मिला। जब पालया के ठाकुर को यह बात मालूम हुई तो वह भी अर्जुन सिंह के पास पहुचा और उसने कहा, "मेरा ठोडड़ा के ठाकुर पहाडजी से झगड़ा है, अगर तुम उसको खतम कर दोगे तो मैं तुम्हें धन दूंगा।" अर्जुनसिंह

ने इस काम के लिए हां भर ली। धीरजी ठोडड़ा के ठाकुर का मित्र था इसलिए उसने अर्जुनसिंह को इस काम से रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु जब सफलता नहीं मिली तो क्रोध में भर कर यह कह कर चला गया, "अच्छा, मैं ठोडड़ा जाता हूं, वहीं तुम्हारी बाट देखूंगा। जितना जल्दी हो सके मुझसे युद्ध करने आना।" यह कह कर वह ठोडड़ा चला गया और वहां का ठाकुर भी गिरवधियें इकट्ठे करने लगा, परन्तु उसे बहुत थोड़े ही सिपाही मिल सके। इसलिए उसने ईडर जा कर महाराज-कुमार उम्मेदसिंह से कहा, "यदि आप इस समय मेरी सहायता नहीं करेंगे तो मैं तो शत्रुओं से लड़ता-लड़ता मर जाऊंगा और ठोडड़ा उनके हाथों में चला जावेगा।" इस पर उम्मेदसिंह भी अपनी सेना लेकर ठोडड़ा के लिए रवाना हो गया। जब आक्रमणकारियों ने देखा कि विपक्ष की सेना उनके काबू से बाहर है तो उन्होंने अपना विचार छोड़ दिया और सभी लोग अपने-अपने घर लौट गए। इस मौके पर भी राजा धीरजी के आचरण से बहुत प्रसन्न हुआ।

जब चांदणी के ठाकुर सूरजमल के पुत्र मवलसिंह का स्वर्गवास हुआ तो उसके दोनों पुत्र श्यामसिंह और मालूमसिंह में जागीर के लिए झगड़ा हुआ। बड़ा लड़का श्यामसिंह ज्यादा होशियार नहीं था इसलिए वह नाराज होकर वांकानेर चला गया। उधर मालूमसिंह ने टीटोई जाकर वहां के ठाकुर कनकाजी से कहा, 'यदि तुम मुझे चांदणी की गद्दी पर बैठा दोगे तो मैं तुम्हारे कुंअर को गोद ले लूंगा।' इस पर कनकाजी ने चांदणी जा कर कहना शुरू किया, "मालूमसिंह गद्दी पर बैठेगा।" उधर वांकानेर के धीरजी ने आ कर कहा, "असली हकदार तो श्यामसिंह है, वही गद्दी पर बैठेगा।" कुछ समय तक दोनों ठाकुर झगड़ते रहे और फिर अपने-अपने घर चले गए। कुछ ही समय बाद कनकाजी ने चार सौ सिपाही जमा किए और उनके साथ वांकानेर पर हमला कर दिया। धीरजी ने उसका सामना किया और दस बारह आदमी मार डाले। तब आसपास के ठाकुरों ने आ कर कहा, "दूसरों के झगड़े में तुम क्यों आपस में कट मर रहे हो?" यह कह कर उन्होंने कनकाजी को उस समय तो वापस लौटा दिया, परन्तु इन दोनों विरोधियों का यह झगड़ा आसानी से खतम होने वाला नहीं था।

अब चांदणी के कामदारों ने जा कर राजा गम्भीरसिंह को कहा, "महाराज! आप स्वयं कृपा करके चांदणी पधारें और नए ठाकुर को गद्दी पर बैठावें।" राजा ने कहा, "धीरजी और कनकाजी गए तो थे?" कामदार ने कहा, "महाराज! उनके द्वारा बैठाया हुआ ठाकुर गद्दी पर नहीं बैठ सकता, अब तो आप ही जिसको बैठावेंगे वह बैठेगा।" तब राजा ने कहा, "यदि कोठडा गांव मुझे दे दो तो मैं आऊं; बदले में सीमोली तुमको दे दूंगा।" कामदार ने श्यामसिंह की मंजूरी लेकर कोठड़ा महाराजा को देने की लिखावट लिख दी। तब महाराजा ने चांदणी जा कर टीकायत हकदार को गद्दी पर बैठाया और उसकी कमर में तलवार बांधी, परन्तु जिस गांव

के लिए उसने कामदार को कहा था वह कभी नहीं दिया। चांदणी के छुटभाई को केवल एक गाव गुजारे के लिए मिला।[3]

---

3. मेजर माइल्स ने महीकांठा के विषय में अपनी 21 सितम्बर, 1821 ई. की रिपोर्ट मे लिखा है—

'चादणी के सबलसिंह का पिता सूरजमल कोई चालीस वर्ष पहले मरा था। कहते है कि सबलसिंह ज्यादा समझदार नही था और उसके कुप्रबन्ध के कारण मुहू का ठाकुर फतेहसिंह चापावतो मे मुख्य सत्ताधारी बन गया था। फतेहसिंह सन् 1805 ई मे मरा और उसका पुत्र अनरसिंह भी 1819 ई में मर गया। उसका पुत्र गोपालसिंह अभी बालक है इसलिए इस भाग का काम गड़बडी मे पड़ गया है। गोपालसिंह की अवस्था लगभग पन्द्रह वर्ष की है। सबलसिंह के दो बड़े पुत्रों, श्यामजी और मालजी मे विरोध हो जाने के कारण चापावतो का पट्टा दो भागो मे बट गया था। एक का हिमायती टीटोई का ठाकुर कनकाजी है और ईडर के राजा व धीरजी ने श्यामजी का पक्ष लिया है। बहुत बखेड़ा और खून-खराबी के बाद नतीजा यह हुआ कि सेड और हरसोल का आधार परगना तो ईडर के महाराजा ने कनकाजी की सहमति से खालसा कर लिया है और बाकी पट्टे का प्रबन्ध स्वय कनकाजी ने सम्हाल लिया है। पट्टे के असली मालिको का कोई सहायक नही रहा इसलिए वे इन लोगों के बरताव की शिकायत करते हैं।'

लेफ्टिनेण्ट-कर्नल बैलण्टाइन ने सादरा मुकाम से तारीख 15 सितम्बर, 1822 को लिखा है—

'चांदणी—इस पट्टे के मालिकों ने पहले तो इसको छोड देना चाहा क्योंकि उनमें आपस मे झगडा हो गया था; कनकाजी और धीरजी ने जो सब गड-बड़ियां मचाई उसके मूल मे इसके बंटवारे का ही प्रश्न था और बाद में गम्भीर-सिंह ने इस पट्टे को हडप जाने से रोकने के लिए जो यत्न किए उन्ही के कारण चापावत-विद्रोह उठ खड़ा हुआ। मालजी और श्यामजी सबलसिंह के पुत्र हैं और, ऐसा लगता है कि, वे इस पट्टे पर अधिकार करने में सब तरह से असमर्थ हैं। इसलिए यह प्रश्न सरदारों की पंचायत के सामने रखा गया था और उनके निर्णय का सार इस प्रकार है :—

'मालजी और श्यामजी के तकरार का निपटारा करने का विषय हमारी पचायत को सुपर्द किया गया है सो हम उनके जामिन होने अथवा उनको हमारी व्यवस्था मनवाने या उनको अपने प्रभाव से मजबूर करने मे असमर्थ हैं। दोनों भाई अत्यधिक मदिरापान करते हैं, यहां तक कि पागल-से हो जाते हैं; और

टोडड़ा की पूर्व घटना के एक महीने बाद ही धीरजी ने सेना एकत्र कर चादणी के विवाद के कारण टींटोई के विरुद्ध प्रयाण कर दिया; परन्तु, दूसरे ठाकुरों ने बीच में पड़ कर उसे समझा बुझा कर लौट जाने को दबाया। इस पर कनकाजी ने धीरजी के मित्र ठोडड़ा के ठाकुर पर हमला कर दिया और यह खबर सुन कर धीरजी उसकी मदद के लिए दौड़ा। खूब लड़ाई हुई और उसमें टींटोई वाले के दस आदमी मारे गए तथा उसको पीछे हटना पड़ा।

घर लौट कर कनका जी ने ठोडड़ा पर पुनः आक्रमण करने के लिए सिरवधियों की सेना इकट्ठी करना शुरू किया। धीरजी को जब यह खबर मिली तो उसने महाराजकुमार उम्मेदसिंह को ठोडड़ा की रक्षा के लिए आमन्त्रित किया और वह आ भी गया यद्यपि राजा और दूसरे लोगों ने उसे मना कर दिया था। कनकाजी फौज लेकर ठोडड़ा की ओर बढ़ा और सीमा में जाकर उसने सब समाचार सुने, तब उसने विचार किया 'महाराजकुमार यहां है और कुछ ऐसा-वैसा हो गया तो अच्छा नहीं होगा,' इसलिए वह ठोडड़ा की सीमा में होकर निकल गया और पालया जा पहुंचा तथा वहां से कुछ मनुष्यों को पकड़ लाया। पालया जाने में उसका रुपया इकट्ठा करने के सिवाय और कोई उद्देश्य नहीं था। फिर वह कुछ और गांवों में गया और वहां से भी उसने कुछ आदमी पकड़ लिए तथा महाराजकुमार को लिखा, 'आप तो मेरे मालिक हैं, इसलिए आपका ठोडड़ा में ठहरना वाजिब नहीं है; यदि आप सामने आवेंगे तो मेरे भाले और गोलियों के आंखें नहीं हैं, इस तरह आप मुझे संसार की दृष्टि में नीचा दिखावेंगे।' महाराजकुमार इस पत्र से और भी नाराज हुआ और उसने कुछ सेना साथ देकर धीरजी को कनकाजी का सामना करने भेज दिया।

टींटोई की सेना का एक अरब जमादार घोड़ा फेर रहा था तभी धीरजी के आदमियों ने उस पर गोली चला दी जिससे घोड़ा मारा गया। तब अरब ने कनकाजी के पास जाकर पुकार की 'उन्होंने मेरा घोड़ा मार डाला है, मैं उन पर हमला करूंगा।' कनका जी ने कहा, 'तुम उनसे युद्ध करने वहां मत जाओ, कुछ बन्दूक वालों को घाटियों में छुपाकर बैठा दो; हम यहां सामने फौजें जमाते हैं इसलिए जब वे हम पर हमला करने आवेंगे तो मारे जावेंगे।' फिर, उन लोगों ने ऐसा ही किया जिसका नतीजा यह हुआ कि धीरजी सत्रह सवारों से हाथ धो बैठा और उसे ठोडड़ा लौटना पड़ा।

इन्हीं दूषणों के कारण इन दोनों ने अत्यन्त घृणित कार्य भी किए हैं। हमारी राय में, अब ये ला-इलाज हो गए हैं। अतः हमारी यही सलाह है कि इनकी ऐसी अयोग्यताओं को देखते हुए नीचे लिखे अनुसार प्रबन्ध कर देना ही संभव और उचित होगा'—इत्यादि२।

इस अवसर पर धीरजी ने एक बारगीर* को अपने जैसे ही वस्त्र पहना दिए थे और दैवयोग से वह सवार मारा गया। बाद मे, जब कनकाजी ने मृतको के वस्त्र उतारे तो उनमे उसको धीरजी के वस्त्र भी मिले और उसने समझा कि वह भी मारा गया। इस पर टीटोई के ठाकुर को बड़ा दुःख हुआ और शोक में उसने अपनी लाल पाग तो उतार कर फेंक दी तथा सफेद पगडी पहन ली।[1] उसके पुत्र लालजी ने कहा, 'यह क्या बात है ? आपने इस पर पहले विचार क्यो नही किया जो अब इस तरह शोक मनाते है ?' उसने कहा, 'तुम सबने मेरा दिमाग फिरा दिया था इसीलिए यह हुआ।' बाद मे तलाश करने पर जब मालूम हुआ कि धीरजी सकुशल था तो कनकाजी बहुत, प्रसन्न हुआ और घर लौट गया।

धीरजी को बहुत दुखी देखकर महाराजकुमार ने कहा, 'तुम कुछ भी सोच मत करो, जो मर गये हैं वे तो वापस आ नही सकते, परन्तु मैं तुम्हें किसी बात की कमी नही होने दूंगा। तुम्हारे घोडे और नौकर वापस दे दूंगा।' धीरजी ने कहा, 'उसने मेरी इज्जत ले ली है इसलिए मुझे तो टीटोई फतह करनी ही है।' तब महाराजकुमार ने सौगन्ध खाई 'टीटोई विजय किए बिना मैं ईडर नहीं लौटूंगा।' इसके बाद धीरजी महाराजकुमार को साथ लेकर टीटोई गया। उम्मेदसिंह ने अपने पिता को लिखा, 'आप फौज लेकर मेरी मदद के लिए आओ तो आओ वरना मैं टीटोई वालो के साथ लड़ता हुआ जान दे दूंगा।' राजा इस बात से प्रसन्न नही था, परन्तु अपने पुत्र की रक्षा करने के लिए वह सेना लेकर उसके पास जा पहुंचा।

उस समय सिरोही का एक प्रतिष्ठित चारण खोडीदानजी टीटोई के ठाकुर के साथ रहता था। उसको सिरोही से देश निकाला दे दिया गया था क्योकि किसी मामले मे वह जामिन था और उस काम को पूरा करने के लिए राव पर अत्यधिक दबाव डालता था। जब महाराजा की सेना पहुंची तो कनकाजी ने एक दुर्ग मे मोर्चा लिया, जो उसने पहाडी पर बनवाया था, और इस तरह अपनी रक्षा का इन्तजाम किया। तब खोडीदानजी ने महाराजा के पास जा कर कहा, 'अन्नदाता ! यह तो उचित नही है कि आप अपने ही एक सरदार के विरुद्ध तोपें ले कर पधारे हैं।'

---

* किराए का सामान्य सिपाही।

1. जब पगड़ी पहनने का रिवाज था तो मृतक के पुत्र, अधीनस्थ और सगे-सम्बन्धी शोक के कारण सफेद पगडी बांधते थे। सम्बन्ध के अनुसार इसके लिए दिनो की संख्या मे कमी-बेशी होती रहती थी। कुछ सम्बन्धी एक दो दिन और कुछ बारह दिन तक सफेद पगड़ी बांधते थे। मृतक का पुत्र तब तक सफेद पगडी बांधता था जब तक कि उसके वरिष्ठ राजा, ठाकुर या किसी रिश्तेदार के यहा से उसे रंगीन पगडी बंधवाने की रस्म अदा न हो जाती। (हि॰ अ॰)

उसने तरह-तरह की बातें कह कर महाराजा और कनकाजी को समझाया, परन्तु महाराजकुमार और धीरजी नहीं माने। अन्त मे, टीटोई के ठाकुर ने एक निश्चित रकम देकर उनका समाधान किया और इस प्रकार सन्धि हो जाने पर महाराजा अपने पुत्र को लेकर ईडर लौट गया।

इस तरह प्रत्यक्ष में फैसला हो जाने पर भी धीरजी के चित्त को सन्तोष नहीं हुआ और अब उसका क्रोध महाराजकुमार पर उतर पड़ा। घर लौटने के थोड़े ही समय बाद वह भीलोडा गाव मे से मवेशी उठा ले गया; यह गाव महाराजकुमार को हाथखर्च में मिला हुआ था। तब महाराजकुमार ने धीरजी को उलाहना देते हुए पत्र लिखा जिस के उत्तर में ठाकुर ने कहा, 'आपने मेरे नौकरों और घोड़ों को क्यों मरवाया ?' इसके बाद वह खालसे के गांव भूतावड मे से भी आदमी और ढोर पकड ले गया। उसने महाराजकुमार के दूसरे निजी गांव बसाई पर भी धावा किया और तीन या चार रक्षकों को घायल कर दिया। भीलासण, रेंटोडा और अन्य गावो में भी उसने लूटमार की अन्त मे, महाराजकुमार दो हजार सेना, अन्य सरदारों और दो तोपों को साथ लेकर वांकानेर पर चढ़ा। धीरजी भी मुकाबला करने को तैयार हुआ। उसने दो सौ गिरवधिए रख लिए थे। महाराजकुमार ने बसाई आ कर डेरा किया और वहां वह पन्द्रह दिन तक ठहरा रहा। धीरजी ने वहीं रात में आक्रमण करके तोपखाने के अधिकारी अरब को मार डाला और फिर भी साफ निकल कर वापस चला गया। दूसरे दिन महाराजकुमार ने भीलोडा में पड़ाव डाला और फिर वांकानेर जा पहुंचा। वहां तीन दिन तक युद्ध हुआ जिसमें महाराजकुमार के दस आदमी और धीरजी के तीन आदमी मारे गए। तब महाराजकुमार ने अपने पिता को लिखा, 'वांकानेर लेने की कोशिश करते तीन दिन हो गए, परन्तु अभी सफलता नहीं मिली है; मदद के लिए और आदमी भेजें।' इस पर महाराजा ने दो सौ पैदल और पचास घुड़सवार और भेज दिए। तब समय बहुत से लोगों ने धीरजी को कहा, 'महाराजा का पुत्र अपनी इज्जत का सवाल बना कर यहां आया है, वह वांकानेर लिए बिना यहां से नहीं हटेगा। अन्त में, तुम हो तो तीन ही गांव के ठाकुर, कहां तक सामना करोगे ? यही क्या कम बड़ाई की बात है कि तुमने तीन दिन तक सभी हमलों को विफल कर दिया। इसलिए अब तुमको लौट जाना चाहिए।' इस पर धीरजी ने अपने महलों में गोठ करने की तैयारी की। उसने सभी भूलें के पलंग ठीक करा लिए, सभी मेहमानों के लिए मिठाई और मदिरा की बोतलों के साथ भेंट के कुछ रुपये भी रखे और जब यह सब तैयारियां हो गईं तो वह लौट गया। तब महाराजकुमार ने गांव को लूट लिया और जला दिया, आम और महुवा के पेड़ कटवा दिये तथा कुओं को भी भरवा दिया। वहां तीन दिन ठहर कर वह ईडर लौट गया। इधर, धीरजी अपने परिवार को लेकर डूगरपुर पहुंच गया। वहां के रावल ने उसको एक गांव दे दिया जहां उसने अपना निवास कायम किया और वहां से ही ईडर के इलाके में लूटमार व अन्य उपद्रव करने लगा। अन्त में,

मौजूद थी। अपनी नव-वधू के लिए कपड़े और जवाहरात खरीदने के बाद उसके पास बहुत थोड़े से रुपये बचे जिनसे उसने केवल दो घोड़े खरीदे और ईडर लाकर महाराजकुमार को नजर कर दिया। उम्मेदसिंह ने पूछा, "बाकी रुपया कहा गया?" तब धीरजी ने उत्तर दिया, "वह मेरे मालिक का रुपया था और उसको मैंने अपने काम में खर्च कर दिया, मैं किसी गैर के यहां चोरी करने तो गया नही।" महाराजकुमार ने तो कुछ नही कहा परन्तु महाराजा ने दबाकर कहा, "हमारा रुपया जमा कराओ।" धीरजी ने कहा, "रुपया पैसा तो मेरे घर मे है नही, अब आपकी जो मर्जी हो करो।" जब राजा ने उस पर घोड़ो की तलब बैठा दी तो धीरजी ने रुपयो की एवज घाटी गांव लिख दिया। परन्तु, इससे उसके मन को बहुत धक्का लगा और अन्त मे, वह फिर विद्रोही होकर अपने परिवार सहित निकल गया। मेवाड़ के जंगली जिलो मे पाटिया वलेचा नामक भीलो का गांव है; धीरजी उसी मे जा कर एक वर्ष तक रहा और वहा से ईडर के इलाके मे धावे मारता रहा। एक बार वह टीटोई के गाव वामनवा से मवेशी उठा ले गया। उसके पास सिर्फ बीस घोड़े थे, परन्तु वह दिन भर मे उतने ही स्थानो मे धाड़े मार लेता था जितने कि आदमी उसके साथ थे।

धीरजी का कर्नल वैलेण्टाइन को 8 सितम्बर, 1821 ई. का पत्र—

"मुझे आपका पत्र मिला, जिसमे मेरे शत्रुओं द्वारा कही गई बहुत-सी मिथ्या बातो का उल्लेख है; परन्तु, यदि आपकी इच्छा हो तो आपको देखने के लिए मैं वह पत्र भेज दूं जो महाराजा ने मुझे लिखा है; उससे ज्ञात हो जायगा कि मैंने जो कुछ किया है उसके लिए मुझे उन्होने ही बाध्य किया है। एक अवसर पर मैंने उनकी सेवा की और मेरे आठ या दस आदमी तथा आठ-दस घोड़े भी मारे गये या घायल हो गये। ये सब बातें मैं पहले मेजर माइल्स को बता चुका हूं। महाराजा जब अपने लिखे हुए लेख से मुकर गये तो मुझे उनके परगनों मे घुसना पड़ा। महाराजा ने तब मेरे गांव पर हमला करके उसको बरबाद कर दिया, इस पर भी मैंने कोई सामना नही किया और वे लगभग पचास हजार का माल लूट ले गये। इन बातों की सचाई के बारे मे आप अहमदनगर के महाराजा से दरियाफ्त कर सकते हैं और मेजर माइल्स भी कितने ही मुद्दों पर आप को जानकारी दे सकते हैं। अगर मैं किसी तरह कुसूरवार पाया जाऊँ तो आप मुझे इसके लिए, जैसे चाहे वैसे, जिम्मेदार करार दे सकते हैं। पहले तो महाराजा ने मुझे भड़का दिया और फिर इसके नतीजे भोगने के लिए अकेला छोड़ दिया। अब मैं जगलो मे पड़ा हुआ हूं। मेरे पास आठ सौ आदमी और एक हजार घोड़े हैं जो भूखो मर रहे हैं। अगर मेरे गाव के बारे में कुछ नहीं किया गया तो विवश होकर मुझे ईडर पर धावे करने पड़ेंगे। इसके अलावा, मैं अपने आदमियों और घोड़ों सहित आपकी सेवा करना चाहता हूं, क्योंकि अब मैं फिर से महाराजा की चाकरी करना नहीं चाहता।"

फिर भी, ईडर राज्य मे लूटपाट करने वाले भील जब कभी उसको मिल जाते तो वह उनके सिर काट कर और बाकायदा टोकरो मे रखकर महाराजा की नजर के लिए भेज देता था। जिन गांवों को उसने लूटा, जलाया या जहां से आदमी व जानवर उठा ले गया वे वसाई, वलोली, भीलोडा एव अन्य बहुत से गांव थे; वास्तव मे, चारणों को दिए हुये गावो के अतिरिक्त शायद ही खालसा का कोई गांव बचा हो जहां पर उसने लूटपाट न की हो।[5]

उन्हीं दिनो महाराजा ने एक दिन दरबार मे कहा, "मैंने ही इस आदमी को इतना शक्तिशाली और बड़ा बनाया और यह मेरे ही गावो को लूटता है; यह किसी और रजवाड़े मे जाकर अपनी आजीविका का प्रबन्ध क्यो नही कर लेता?" जब यह बात धीरजी तक पहुची तो वह उदयपुर के राणा श्री भीमसिंह[6] के पास पहुचा। धाडो मे अपना पराक्रम दिखाने के कारण धीरजी की प्रसिद्धि बाहर भी पहुच चुकी थी और महाराणा तो गम्भीरसिंह की बहन के साथ अपने विवाह के अवसर पर ईडर-यात्रा के समय से ही उसको जानता था। इसलिए उसने एक बडी जागीर का पट्टा लिख कर धीरजी को दिया। ठाकुर ने जागीर तो ले ली परन्तु पट्टा लेने से इन्कार कर दिया; उसने कहा, "यदि मैं यहाँ रह जाऊं तो लोग समझेंगे कि मैं अपने बाप का हक वापस नही ले सका और इसमे मेरी इज्जत नहीं रहेगी।" वह चार मास तक उदयपुर रहा और फिर अपने परिवार को मारवाड़ के कूरा गांव मे रख कर ईडर लौट आया।

उसी समय कर्नल वैलेण्टाइन ने ईडर के सभी सरदारो को सादड़ा मे इसलिए आमन्त्रित किया कि परगने का बन्दोबस्त किया जा सके। उस समय सरदारों मे राजा के प्रति बहुत असन्तोष था और कुछ ने तो महाराजा को रकम देने से इनकार भी कर दिया था। कुछ लोगो ने कहा कि देने को उनके पास नकद रुपया नहीं था इसलिए उनके घोड़ों का मूल्य ठहरा लिया जाय क्योंकि वे रियासत के सेवक थे और उनके मस्तक राजा के लिए थे। केवल कूंपावतों ने ठीक-ठीक उत्तर दिया। एक महीने के सलाह मशविरे के बाद अंग्रेज प्रतिनिधि ने मूंडेटी, टीटोई, टोडरा और वाकानेर के ठाकुरो के लोहे की बेड़ियां डाल दीं और दूसरे लोगो को अपनी-अपनी जागीरें महाराजा को सौंप देने को मजबूर किया। वाकानेर के धीरजी को एक

5. कर्नल वैलेण्टाइन का सरकार के नाम 22 मार्च, 1822 ई का पत्र—

"धीरजी फिर, बिना कारण बताये ही, विद्रोही हो गया है। वह बहुत ही घातक अत्याचार करने मे लगा हुआ है। भीलोडा के पन्द्रह या सोलह ब्राह्मण मार देने का आरोप उस पर लगाया जाता है और अन्य भी बहुत से घातक कर्म उसने किये हैं।"

6. उदयपुर की गद्दी का 64वां महाराणा (1778–1828 ई.)

चारण की साख देकर बुलाया गया था। वह पैंतीस हथियारबन्द साथियों के साथ आया, परन्तु महाराजा ने उन सबको हटा दिया और केवल उसके भतीजे ऊदाजी को, जो बिल्कुल जवान था, उसके साथ रहने दिया। जब सरकारी सिपाही धीरजी को गिरफ्तार करने आये तो ऊदाजी ने उनमे से कुछ को मार डाला, कुछ को जख्मी कर दिया और फिर स्वय भी काम आ गया।

सोरठा दूहा[7]

भाई तणें शिर भार, पड़ियो धीरा ऊपरे,
शत्रां बजाडे सार, अपछर वरियो ऊदलो ।। 1 ।।

कर आरब कटकाह, प्रशण प्रगातल पाड़िया,
ववे होय कटकाह, एकल धावे ऊदला ।। 2 ।।

छः महीने तक कैद रहने के बाद धीरजी ने बेड़िया तोड डाली और किले की दीवार पर चढ़ कर भाग गया। मूंडेटी का ठाकुर चार महीने कैद मे रहा, फिर उसने जमानत दाखिल की और महाराजा का दावा चुकता किया तब उसको छोड दिया गया। इसी प्रकार और उसी समय टीटोई व ठोडडा के ठाकुरो को भी रिहा कर दिया गया।[8]

---

7. जब उसके भाई धीरा के सिर पर भार पड़ा तो शत्रुओ के सामने तलवार बजाते हुए ऊदा ने अप्सरा का वरण किया।

उसने अरबों के टुकड़े-टुकडे कर दिए; शत्रुओ को पैरों तले रौंदा और एक-एक बार मे शत्रुओ के दो-दो टुकडे कर दिये; ऐसा था ऊदा।

8. धीरजी के कारनामो पर कर्नल वैलेण्टाइन का स्मरण-पत्र दिनांक 30 अक्टूबर, 1822 ई०

"धीरजी ने जो ब्राह्मणो की हत्या एवं अन्य अपराध किए हैं उनके बारे में सरकार को पूरा विवरण पहले भेजा जा चुका है; उसके लिए आज्ञा हुई थी कि उस पर जुर्माना किया जाय, उसको बन्दी बनाया जाय और उसकी जागीर उसके निकटतम सम्बन्धी को दे दी जाय। उसको दण्ड देने के लिए सेना भेजी गई परन्तु, उसी समय उसने दामोदर मोहब्बतसिंह बारहठ को भेजकर अधीनता प्रकट की। इसके बाद जब कर्नल वैलेण्टाइन ने गायकवाड के लिए खंडणी का बन्दोबस्त करने आदि के लिए अन्य सरदारो को डभोरा में एकत्रित किया तो धीरजी को भी बुलाया और उसको यह सूचित कर दिया कि गम्भीरसिंह के विरुद्ध उसकी जो कोई शिकायतें हों वह प्रत्यक्ष में प्रस्तुत करे। धीरजी ने इसके लिए साख मांगी तो उसके सन्तोष के लिए वह गम्भीरसिंह की ओर से दिला दी

→

धीरजी जब बड़ोदा में कैद था तो उसने शामला जी की बोलारी बोली थी कि यदि वह जेल से निकल कर भाग सकेगा तो देवता के मन्दिर में बहुमूल्य भेंट चढ़ावेगा। अन्त में, वह दीवारपर चढ़कर निकल गया तो सीधा भाग कर मन्दिर में गया और वहां अपनी मनौती पूरी की। वहां से वह चुपके से काठियावाड़ चला

गई। वह आ गया, उसका उत्साह बढ़ाया गया, उसके निर्वाह के लिए रकम दी गई और बड़ी कठिनाई से गम्भीरसिंह के साथ समस्त चांपावतों की जागीरों का प्रबन्ध निश्चित किया गया। बाद में, जमानत मांगी गई तो धीरजी देगाव जाने के बहाने से भाग गया। मार्ग में उसने बमाई से आदमी पकड़ लिए, अहमदनगर के एक बोहरा को मार डाला, भीलोड़ा से मवेशी उठा ले गया और अन्य बहुत से अपराधपूर्ण धाड़े कर डाले। अब उसने दाना में रहने वाले युवक ठाकुर गोपालसिंह और ठोडहा के पहाड़सिंह को अपने साथ मिला लिया और इन तीनों ने मिल कर पत्र लिखा है कि वे इलाके को लूट लेंगे। धीरजी पहाड़ियों में चला गया और तत्परता से उसकी खोज की गई। जब भाटी पहाड़जी, कनका जी और अन्य लुटेरों को पकड़ लिया गया तो धीरजी आतंकित हो कर उदयपुर भाग गया। वहां महाराणा और उनके सरदारों को धीरजी द्वारा किये गए अत्याचारों का पूरा पता नहीं था इसलिए उन्होंने वहां के रेजीडेण्ट (सर डेविड आक्टरलोनी) की मध्यस्थता का उपयोग किया, जिसने महाराणा की प्रसन्नता के लिए कर्नल बैलेण्टाइन को धीरजी की सिफारिस करते हुए पत्र लिखा कि उसके अपराधों को दर-गुजर करते हुए भविष्य में गम्भीरसिंह के साथ ऐसा तसफिया करा दिया जाय जो न्यायोचित और ठीक हो। इस पर कर्नल बैलेण्टाइन ने रेजीडेण्ट को लिखा कि धीरजी को सादड़ा भेज दिया जाय। धीरजी ने उस महाशय (रेजीडेण्ट) के सामने ही गोपालसिंह के साथ आने की तैयारी की, उससे 'सीख' मांगी और उसका पत्र व अपने साथियों को साथ लिया तथा महाराणा के एक प्रतिष्ठित कर्मचारी लालजी पुरोहित को लेकर वह रवाना हुआ। बाद में, गोपालसिंह को तो धीरजी ने अत्यन्त भयभीत करके उसकी जागीर के कुछ हिस्से का त्यागपत्र लिखवा कर उदयपुर में ही छोड़ दिया और रास्ते में उसके नौकरों से [illegible] छीन लिए तथा जहां-जहां उसने रुपये पैसे व कपड़े-लत्ते जमा कर रखे थे वहां-वहां से वे सब बटोर लिए। सादड़ा पहुंच कर उसने कहा कि गोपालसिंह की ओर से भी कार्यवाही करने को वह अधिकृत था। लालजी पुरोहित की उपस्थिति में वह राजनीतिक प्रतिनिधि (पोलिटिकल एजेण्ट) के सामने पेश हुआ और गोपाल सिंह को घुमाने व उसकी माफ देना उसने [illegible] किया और [illegible] विषय में लिखावट लिखकर पहाड़जी व कनकाजी की [illegible] दी। तब धीरजी को गुजारे के लिए रकम देकर [illegible]

गया, जहां उसने कुछ घोड़े खरीदे और उन पर सवारों को बैठाकर वापस ईडर के इलाके में घुस गया तथा अपना उपद्रव मचाने का वही पुराना तरीका फिर अख्तियार कर लिया। अब की बार कर्नल वैलेण्टाइन ने गांव-गांव में थाने बैठा दिये, परन्तु धीरजी उन पर रात को आक्रमण करता और बहुत से सिपाहियों को मार डालता। एक बार जब उसने एक गाव के कुछ आदमियों को पकड़ लिया तो कुछ सरकारी सैनिकों और ईडर के सिपाहियों ने उसका पीछा किया। एक गहरी और चौड़ी खाई रास्ते में आई जिस पर धीरजी ने बेधड़क होकर अपनी घोड़ी कुदा दी। तब उसने मुड़कर कहा, "तुम में से कोई खाई लाघ सकता हो तो आ जाओ।" किसी की भी हिम्मत नही हुई।

वहा पहुच कर उसने सरकारी थाना हटाए जाने की दरख्वास्त की जो स्वीकार कर ली गई। उसने तो गोपालसिंह को नही बुलाया परन्तु उस ठाकुर ने जब सुना कि बन्दोबस्त के काम मे प्रगति हो रही है तो वह स्वयं तुरन्त ही सादड़ा आ पहुँचा और हाजिर हो गया। तब धीरजी को बुलाया गया तो उसने नौकर के हाथ अहमद नगर से लिखा हुआ उत्तर भेजा परन्तु उस पर मिती बीकानेर की थी। जब नौकर से पूछा गया कि उसका ठाकुर कहां था तो उसने कहा 'बीजापुर मे।' कर्नल वैलेण्टाइन ने तब उसके जमानतदारों को धर दिया व उस पर मोसल (वसूल करने वाले सिपाही) कायम कर दिये। फिर, धीरजी सादड़ा पहुचा तो कर्नल वैलेण्टाइन ने कई दिनों तक उसको नित्य तसफिए के लिए बुलाया और दिन पर दिन बीतने लगे, परन्तु जब कुछ भी तय नही हुआ और उसके जामिन भी आगे भरोसा देने की इनकार हो गए तो उस पर मोसल बैठा दिए गए। तब धीरजी ने जाहिर किया कि यदि मोसल नहीं हटाए गए तो वह आत्मघात कर लेगा और बाद में न जाने क्या होगा क्योंकि उसके साथी उसके नियन्त्रण में नही थे।'

15 नवम्बर, 1823 ई०

"धीरजी पर मोसल बैठाए हुए दस दिन हो गए है; तभी से उसका आचरण उद्दण्ड और धमकी भरा हो रहा है; वह कहता है अपने लिए तो आवश्यक साख दिला सकता है परन्तु अपने सशस्त्र सिरबंधियों के लिए कुछ नही कह सकता, जिनको साथ लेकर वह छावनी मे आता जाता है और लगातार अपने वचन की अवहेलना कर रहा है...जैसी कि उससे आशंका थी, धीरजी ने हुज्जत व जिद करके अपने सशस्त्र सिपाहियों मे कमी करने के मेरे प्रयत्नों की अवज्ञा की है; इसके नतीजे मे जब लड़ाई हुई तो उसका एक आदमी एक अरब पर वार कर रहा था कि उसी के द्वारा धीरजी की पीठ में एक घाव लग गया। इसी झगड़े

इसके बाद टीटोई के ठाकुर का लड़का लाल जी भी धीरजी के साथ हो गया और फिर दोनो धाड़ैती मिल कर डूंगरपुर के जगलो में चले गए, जहा उनको शरण मिल गई और वहां से ही वे दानो ईडर के इलाके मे लूटमार करने लगे।

[1]उस समय डूंगरपुर के रावल की अवस्था बत्तीस वर्ष की ही थी, परन्तु उसके माथे मे यह बात घर कर गई कि उसके पुत्र नही होगा इसलिए उसको किसी-न-किसी को गोद ले लेना चाहिए। इस कारण उसने देवलिया के राजकुमार दलपतसिंह को बुलाया, जो उसी के कुल का था, और लिखत मे उसको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। यह नवयुवक राजकुमार बाहरवाटियो के पक्ष मे नही था। इस बात को देख कर उनको भी अपनी स्थिति पर भरोसा नही रहा और उन्होंने अपने परिवारो को शामलाजी के पडोस के गांव में भेज दिया। परन्तु, वे स्वयं डूंगरपुर के इलाके मे ही बने रहे और ईडरवाडे को लूटते रहे। इस पर नवयुवक राजकुमार ने चुपके से कुछ लोगो को कहा कि जो कोई मुझे उन बाहरवाटियों को दिखाएगा उसको इनाम दिया जाएगा।

एक बार धीरजी की आखो मे तकलीफ हुई और वे सूज गई, इसलिए वह और लालजी डूंगरपुर के रावल के किसी गांव मे आए थे। उन्होंने एक आदमी को रसोई बनाने के लिए रखा। डूंगरपुर के राजकुमार को जब यह बात ज्ञात हुई तो वह एक सौ सवार लेकर रवाना हुआ और उस गाव मे जा पहुचा तथा उसने नक्कारे पर

मे एक अरब और उसके दो आदमी सख्त घायल हुए, जिनमे से एक बाद मे मर गया।

मण्डल

निदेशक न्यायालय

बम्बई सरकार का कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के नाम पत्र

1 सितम्बर, 1826 ई०

"तीनो ठाकुरो (धीरजी, कनकाजी और पहाड़जी) को अन्त मे बड़ोदा में स्थानान्तरित कर दिया गया, क्योंकि उनका महीकांठा मे रहना ठीक नही समझा गया; (ईडर के) राजा को भी यह स्पष्ट कर दिया गया कि उनके बड़ोदा भेजे जाने से उनकी आधीनता मे किसी प्रकार का अन्तर आने की सम्भावना नही है। उनकी जागीरों का प्रबन्ध उनके निकटतम सम्बन्धियों द्वारा कराने और स्वय उनके व परिवार के खर्चे का भी बन्दोबस्त करा दिया गया जिनको उनके साथ बड़ोदा जाने की आज्ञा नही मिली थी। 24 सितम्बर, 1824 ई० को टीटोई के ठाकुर के पुत्र लालजी (जो जेल में ही रहा) की सहायता से धीरजी बड़ोदा जेल से भाग गया और महीकांठा मे उपद्रव मचाने लगा जिसके कारण उसका पीछा करने के लिए ईडा मे कुछ फौज भेजनी पड़ी।"

गया, जहां उसने कुछ घोडे खरीदे और उन पर सवारों को बैठाकर वापस ईडर के इलाके में घुस गया तथा अपना उपद्रव मचाने का वही पुराना तरीका फिर अख्तियार कर लिया। अब की बार कर्नल वैलेण्टाइन ने गांव-गांव में थाने बैठा दिये, परन्तु धीरजी उन पर रात को आक्रमण करता और बहुत से सिपाहियों को मार डालता। एक बार जब उसने एक गाव के कुछ आदमियो को पकड़ लिया तो कुछ सरकारी सैनिको और ईडर के सिपाहियों ने उसका पीछा किया। एक गहरी और चौड़ी खाई रास्ते मे आई जिस पर धीरजी ने बेधड़क होकर अपनी घोडी कुदा दी। तब उसने मुड़कर कहा, "तुम मे से कोई खाई लाघ सकता हो तो आ जाओ।" किसी की भी हिम्मत नही हुई।

वहां पहुच कर उसने सरकारी थाना हटाए जाने की दरख्वास्त की जो स्वीकार कर ली गई। उसने तो गोपालसिंह को नहीं बुलाया परन्तु उस ठाकुर ने जब सुना कि बन्दोबस्त के काम में प्रगति हो रही है तो वह स्वयं तुरन्त ही सादड़ा आ पहुंचा और हाजिर हो गया। तब धीरजी को बुलाया गया तो उसने नौकर के हाथ अहमद नगर से लिखा हुआ उत्तर भेजा परन्तु उस पर मिती बांकानेर की थी। जब नौकर से पूछा गया कि उसका ठाकुर कहां था तो उसने कहा 'बीजापुर मे।' कर्नल वैलेण्टाइन ने तब उसके जमानतदारो को घर दिया व उस पर मोसल (वसूल करने वाले सिपाही) कायम कर दिये। फिर, धीरजी सादडा पहुचा तो कर्नल वैलेण्टाइन ने कई दिनो तक उसको नित्य तसफिए के लिए बुलाया और दिन पर दिन बीतने लगे, परन्तु जब कुछ भी तय नही हुआ और उसके जामिन भी आगे भरोसा देने को इनकार हो गए तो उस पर मोसल बैठा दिए गए। तब धीरजी ने जाहिर किया कि यदि मोसल नही हटाए गए तो वह आत्मघात कर लेगा और बाद मे न जाने क्या होगा क्योंकि उसके साथी उसके नियन्त्रण मे नही थे।'

15 नवम्बर, 1823 ई०

"धीरजी पर मोसल बैठाए हुए दस दिन हो गए है; तभी से उसका आचरण उद्दण्ड और धमकी भरा हो रहा है; वह कहता है अपने लिए तो आवश्यक साख दिला सकता है परन्तु अपने सशस्त्र सिरबधियो के लिए कुछ नही कह सकता, जिनको साथ लेकर वह छावनी मे आता जाता है और लगातार अपने वचन की अवहेलना कर रहा है ... जैसी कि उससे आशंका थी, धीरजी ने हुज्जत व जिद करके अपने सशस्त्र सिपाहियों मे कमी करने के मेरे प्रयत्नों की अवज्ञा की है; इसके नतीजे मे जब लड़ाई हुई तो उसका एक आदमी एक अरब पर वार कर रहा था कि उसी के द्वारा धीरजी की पीठ मे एक घाव लग गया। इसी झगड़े

→

इसके बाद टीटोई के ठाकुर का लड़का लाल जी भी धीरजी के साथ हो गया और फिर दोनो धाड़ैती मिल कर डूंगरपुर के जगलों मे चले गए, जहां उनको शरण मिल गई और वहां से ही वे दोनो ईडर के इलाके मे लूटमार करने लगे।

उस समय डूंगरपुर के रावल की अवस्था बत्तीस वर्ष की ही थी, परन्तु उसके माथे मे यह बात घर कर गई कि उसके पुत्र नही होगा इसलिए उसको किसी-न-किसी को गोद ले लेना चाहिए। इस कारण उसने देवलिया के राजकुमार दलपतसिंह को बुलाया, जो उसी के कुल का था, और लिखत मे उसको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। यह नवयुवक राजकुमार बाहरवाटियो के पक्ष मे नही था। इस बात को देख कर उनको भी अपनी स्थिति पर भरोसा नहीं रहा और उन्होंने अपने परिवारों को शामलाजी के पड़ोस के गाव मे भेज दिया। परन्तु, वे स्वय डूंगरपुर के इलाके मे ही बने रहे और ईडरवाडे को लूटने रहे। इस पर नवयुवक राजकुमार ने चुपके से कुछ लोगो को कहा कि जो कोई मुझे उन बाहरवाटियों को दिखाएगा उसको इनाम दिया जाएगा।

एक बार धीरजी की आखो मे तकलीफ हुई और वे सूज गई, इसलिए वह और लालजी डूंगरपुर के रावल के किसी गाव मे आए थे। उन्होंने एक आदमी को रसोई बनाने के लिए रखा। डूंगरपुर के राजकुमार को जब यह बात ज्ञात हुई तो वह एक सौ सवार लेकर रवाना हुआ और उस गाव मे जा पहुचा तथा उसने नक्कारे पर

मे एक अरब और उसके दो आदमी सख्त घायल हुए, जिनमे से एक बाद में मर गया।

मण्डल

निदेशक न्यायालय

बम्बई सरकार का कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के नाम पत्र

1 सितम्बर, 1826 ई०

"तीनो ठाकुरों (धीरजी, कनकाजी और पहाडजी) को अन्त मे बड़ोदा में स्थानान्तरित कर दिया गया,क्योकि उनका महीकांठा मे रहना ठीक नही समझा गया; (ईडर के) राजा को भी यह स्पष्ट कर दिया गया कि उनके बड़ोदा भेजे जाने से उनकी आधीनता मे किसी प्रकार का अन्तर आने की सभावना नही है। उनकी जागीरों का प्रबन्ध उनके निकटतम सम्बन्धियो द्वारा कराने और स्वय उनके व परिवार के खर्च का भी बन्दोबस्त करा दिया गया जिनको उनके साथ बड़ोदा जाने की आज्ञा नही मिली थी। 24 सितम्बर, 1824 ई० को टीटोई के ठाकुर के पुत्र लालजी (जो जेल मे ही रहा) की सहायता से धीरजी बड़ोदा जेल से भाग गया और महीकांठा में उपद्रव मचाने लगा जिसके कारण उसका पीछा करने के लिए डीसा से कुछ फौज भेजनी पडी।"

प्रमुक के घर पर धीरजी ने सीरावण (प्रात:भोजन) किया है तो तुरन्त ही पचास सरकारी घुड़सवार वहां पहुंच जाते और वहां के निवासियों को बहुत तंग करते। एक बार धीरजी अपने ही गांव में आया जो एक चारण के गांव के पड़ोस में था। राजा ने चारण पर यह शक करके कि यह धीरजी से मिला हुआ है, उस पर दो घोड़ों की तलब बैठा दी। धीरजी ने जब यह बात सुनी तो वह तुरन्त उस गांव में पहुंच गया और उसने दोनों सवारों पर हमला कर दिया, जिनमें से एक तो मारा गया और दूसरा किसी तरह निकल भागा। तब वह चारण भी तुरन्त ही बाहरवटिया के सामने 'त्रास' प्रदर्शित करने लगा; उसने अपनी भुजा और जांघ पर घाव कर लिए और अपने ही परिवार की एक वृद्धा के गले में कटार भोंक दी। जब महाराजा ने घुड़सवारों पर हमले की बात सुनी तो उसने कहा कि अवश्य ही उस चारण ने इसके लिए धीरजी को उकसाया होगा इसलिए उसके गांव पर सेना भेज दी, परन्तु बाद में छानबीन करने पर मामले की पूरी असलियत सामने आ गई।

अब, धीरजी अपने मित्रों के गांवों की भूमि में होकर निकलने में भी खबरदारी बरतने लगा; वास्तव में, उसका सच्चा मित्र कोई था भी नहीं। उसने अपना निवासस्थान तो मेवाड़ की पहाड़ियों में बना लिया था, परन्तु धावे पाटण तक मारता था; प्रायः सरकारी सैनिकों को सताता था और गांवों में से आदमी व ढोर पकड़ ले जाता था। बाद में, उसने रायगढ़ के आसपास के इलाके में हमले करना शुरू किया। वह लगभग चौदह वर्ष तक बाहरवाट रहा।

अन्त में, 1827 ई. में जब वह ईडर के डूंगरों में छुपा हुआ था तो वहां पर उसके कुछ मित्रों ने उसके उपयोग के लिए बारूद भेजी जिसे सुखाने के लिए जाजम पर फैलाया गया था, तब किसी पहरेदार सिपाही के तोड़े में से आग की चिनगारी उस बारूद पर पड़ गई और वह भभक उठी। इसी दुर्घटना में धीर जी घायल हो गया और अन्त में मर गया। मृत्यु के समय उसकी अवस्था पैंतालीस वर्ष की थी। धीरजी का कद छोटा और शरीर दुबला था। अपने धाड़ों के कारण उसने ईडर के किसी भी महाराजा से अधिक प्रसिद्धि अर्जित कर ली थी। उसके पराक्रमों की गाथा महीकांठा भर में कही जाती है और स्त्रियों के गीतों व चारणों के छन्दों में गाई जाती है।

धीरजी की मृत्यु के समय उसका परिवार मारवाड़ में था। उसकी दो ठकुरानियों में से एक चावडी को धीरजी के पहनने की पगड़ी दिखा कर उसकी मृत्यु के समाचार कहे गये; तब वह अपने पति की उसी पगड़ी की निशानी लेकर चिता

चोट की। नक्कारे की आवाज सुनकर धीरजी व लालजी अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो कर भागे; डूंगरपुर के सवारों ने उनका पीछा किया और जब वे नजर में आए तो कहा, 'यह क्या, राजपूत होकर भागते हो ?' तब धीरजी ने कहा, 'तुम लोग बहुत हो और हम दो ही हैं इसलिए भागना जरूरी है।' परन्तु, उसके साथी ने अपने घोड़े की चाल धीमी कर दी और इतने ही में डूंगरपुर के सवारों ने उसको जा पकड़ा। लालजी का घोड़ा अब अड़ गया और एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा। उसी समय एक अरब ने अपनी तलवार से घोड़े पर वार किया पर तुरन्त ही लालजी की तलवार का वार उस पर हुआ। दूसरे सवार ने लालजी पर अपना भाला चलाया परन्तु वह वार बचा गया और उसने लपक कर हमलावर को मार गिराया। घोड़ा अड़ा हुआ था इसलिए लालजी नीचे उतर गया और दो अन्य हमलावरों को खत्म करके स्वय भी मारा गया। धीर जी ने समझा कि लालजी भी पीछे पीछे आ रहा है इसलिए वह अपना घोड़ा दौड़ाता चला गया।[9]

बाद में ऐसा होने लगा कि जब कभी यह खबर मिलती कि अमुक गाव में

---

9. अंग्रेजी दफ्तर के अभिलेखों मे दर्ज है कि 'मेजर थामस फौज लेकर धाड़ैतियों के पीछे डूंगरपुर गया और 11 मार्च, 1825 ई. को उसने किला ले लिया। फिर जून के महीने मे डूंगरपुर के युवक राजकुमार ने लालजी को मार दिया। उसके इस काम से उसका गोद लेने वाला पिता बहुत अप्रसन्न हुआ।'

सोरठा

पाटण घोड़ा पाय, मगरी रही मेवाड़री;
आभो ऊंडल मांह, धारे तो ले धीरतो ॥1
मालव धरती माडि, पूना लग धाहा पड़े;
कलकत्ते कामाड़, धाके जड़ियां धीरता ॥2
तूं धीरा तरवार, नव सहसा झालत नहि;
नक्षत्री निरधार, खंड नवे होते खरी ॥3

मेवाड़ के मगरों (पर्वतों) में रह कर पाटण के मैदान में अपने घोड़ो को पानी पिलाता है; यदि वह धीरजी ऐसी धारणा कर ले तो आकाश को अपनी बाहों में ले ले ॥ 1 ॥

धीरजी की धाक से मालव मही से पूना तक धांह (धाक) पड रही है (त्रास फैल रही है) और उसके डर से कलकत्ता शहर के दरवाजो के किवाड़ बन्द रखने पड़ते हैं ॥ 2 ॥

हे धीरा ! यदि तू ने साहस करके नए प्रकार से तलवार न सम्हाली (पकड़ी) होती तो निश्चय ही पृथ्वी के नवों खण्ड नक्षत्री (क्षत्रियविहीन) होते ॥ 3 ॥

प्रमुक के घर पर धीरजी ने सीरावण (प्रातःभोजन) किया है तो तुरन्त ही पचास सरकारी घुड़सवार वहां पहुंच जाते और वहां के निवासियों को बहुत तंग करते। एक बार धीरजी अपने ही गांव में आया जो एक चारण के गांव के पड़ोस में था। राजा ने चारण पर यह शक करके कि यह धीरजी से मिला हुआ है, उस पर दो घोड़ों की तनख बैठा दी। धीरजी ने जब यह बात सुनी तो वह तुरन्त उस गांव में पहुंच गया और उसने दोनों सवारों पर हमला कर दिया, जिनमें से एक तो मारा गया और दूसरा किसी तरह निकल भागा। तब वह चारण भी तुरन्त ही बाहरवटिया के सामने 'त्रास' प्रदर्शित करने लगा; उसने अपनी भुजा और जांघ पर घाव कर लिए और अपने ही परिवार की एक वृद्धा के गले में कटार भोंक दी। जब महाराजा ने घुड़सवारों पर हमले की बात सुनी तो उसने कहा कि अवश्य ही उस चारण ने इसके लिए धीरजी को उकसाया होगा इसलिए उसके गांव पर सेना भेज दी, परन्तु बाद में छानबीन करने पर मामले की पूरी असलियत सामने आ गई।

अब, धीरजी अपने मित्रों के गांवों की भूमि में होकर निकलने में भी खबरदारी बरतने लगा; वास्तव में, उसका सच्चा मित्र कोई था भी नहीं। उसने अपना निवासस्थान तो मेवाड़ की पहाड़ियों में बना लिया था, परन्तु धावे पाटण तक मारता था; प्रायः सरकारी सैनिकों को सताता था और गांवों में से आदमी व ढोर पकड़ ले जाता था। बाद में, उसने रायगढ के आसपास के इलाके में हमले करना शुरू किया। वह लगभग चौदह वर्ष तक बाहरवाट रहा।

अन्त में, 1827 ई. में जब वह ईडर के डूंगरों में छुपा हुआ था तो वहां पर उसके कुछ मित्रों ने उसके उपयोग के लिए बारूद भेजी जिसे सुखाने के लिए जाजम पर फैलाया गया था, तब किसी पहरेदार सिपाही के तोड़े में से आग की चिनगारी उस बारूद पर पड़ गई और वह भभक उठी। इसी दुर्घटना में धीर जी घायल हो गया और अन्त में मर गया। मृत्यु के समय उसकी अवस्था पैंतालीस वर्ष की थी। धीरजी का कद छोटा और शरीर दुबला था। अपने धाड़ों के कारण उसने ईडर के किसी भी महाराजा से अधिक प्रसिद्धि अर्जित कर ली थी। उसके पराक्रमों की गाथा महीकांठा भर में कही जाती है और स्त्रियों के गीतों व चारणों के छन्दों में गाई जाती है।

धीरजी की मृत्यु के समय उसका परिवार मारवाड़ में था। उसकी दो ठकुरानियों में से एक चावड़ी को धीरजी के पहनने की पगड़ी दिखा कर उसकी मृत्यु के समाचार कहे गये; तब वह अपने पति की उसी पगड़ी की निशानी लेकर चिता

पर चढ कर भस्म हो गई । उसके कोई सन्तान नही थी । दूसरी विधवा एक लड़के ग्रौर एक लड़की को लेकर वांकानेर चली गई ।[10]



10. इस विद्रोही ठाकुर को काबू में लाने के लिए ब्रिटिश ग्रधिकारियों ने जितने प्रयत्न किये वे सब निष्फल हुए । इसका एकमात्र कारण बम्बई सरकार ने यही बताया कि महीकांठा के सभी सरदार उसके धाड़ों मे सहायता करते थे, इसलिए बडोदा के रेजीडेण्ट को ग्राज्ञा मिली कि वह धीरजी से समझौता करे, उसकी शिकायतो की तहकीकात करने का ग्राश्वासन दे ग्रौर उनमे जो वाजिब साबित हों उनको दूर करे । उस समय बम्बई रेजीडेन्सी का ग्रधिकारी मिस्टर विलबाइ था; उसने बाहरवटिए धीरजी से खतो कितावत शुरू की ग्रौर इसमें कुछ प्रगति हो ही रही थी कि धीरजी की मृत्यु के समाचार मिल गए, जिसकी रिपोर्ट उन महाशय ने 6 ग्रगस्त. 1827 ई. को दी । दुर्घटना होने के बाद भी वांकानेर का ठाकुर छ: दिन तक जीवित रहा ग्रौर जब उसने ग्रपना ग्रन्त निकट देख कर घटना की पूरी सूचना देने के लिए एक राजपूत को मिस्टर विलबाइ के पास भेजा ग्रौर उसके द्वारा प्रार्थना कराई कि वह उसके परिवार का संरक्षण करे ।

प्रकरण तेरहवां

ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह (2)

महाराजकुमार उम्मेदसिंह सन् 1824 ई० में शीतला के रोग से सत्ताईस वर्ष की अवस्था में ही मर गया। उसकी दो पत्नियां उसके साथ सती हुईं; एक पूरोन के चौहान ठाकुर की पुत्री थी और दूसरी मानसा के चावड़ा की। इनके अतिरिक्त एक पड़दायत भी उसके साथ सती हुई। महाराजकुमार के दो और भी कुंवरानियां थी, परन्तु उनके सत नहीं चढ़ा; ये वासवाड़ा और देवलिया के राजाओं की पुत्रियां थीं, जो विधवा होकर अपने-अपने पीहर चली गईं।

(कुंवर उम्मेदसिंह का गीत)*

देण मोज आघाट गज वाज अत, दूथिया, शान गंभीर सुन ममत गूढो;
चाव चित रखण चहुआण अर चावड़ी, वभो सुरपत तणो लेण वूढो। 1

---

* कवियों को प्रसन्न होकर मौजें (गाव), बहुत से हाथी घोड़े दान में देने वाला, गूढ़ सुमतिवाला गम्भीरसिंह का पुत्र अपना मन रखने वाली चहुआणी और चावड़ी पत्नियों के साथ इन्द्र का वैभव लेने चला गया ॥ 1 ॥

शत्रुओं के लिए शल्यरूप, दक्षिणी (मरहठों) के दल को तोड़ने वाला, तलवार के बल से प्रचण्ड शत्रुओं को डाटने वाला, जिसका भाल प्रकाशमान सूर्य के समान तेज से ज्वलन्त था, मैं कहता हूं (उसका स्तवन करता हूं), वही लाल (लाड़ला) सतियों सहित सुरलोक को सिधार गया ॥ 2 ॥

इस इला (पृथ्वी) पर हे हरि! तुमने यह बुरा क्यों किया? मांगने वालों की गरज अभी पूरी नहीं हुई; रानियों में तिलक के समान रानियों को भी राठौड़ ने अपने साथ ले लिया; वह स्वर्ग की परियां बन गईं और उम्मेद सिंह इन्द्र बन गया ॥ 3 ॥

चौहाणी के स्वामी (पति) पर चंवर ढुल रहे थे, वह कवियों की दौलत था, वह जोधा का वंशज हिन्दुओं का सूर्य अपने एहनाण करने के लिए (कीर्ति प्राप्त करने के लिये) शक्र (इन्द्र) के भुवन का स्वामी बनकर चला गया ॥ 4 ॥

जब तक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे तब तक यह गजसिंह का वंशज परमपद को भोगेगा, यह आशीष पूरी होगी; उम्मेदसिंह देवताओं का वैभव प्राप्त करेगा और फिर वह भू-रा (पृथ्वी का) राठौड़ गोलोक को प्राप्त हो जायेगा ॥ 5 ॥

साल सम वादियां, दखरा दल साभरणी,
भाल भ्रर डाटणो, खगा बल भोक;
तरण जेम भाल उद्योतकारी तवां,
लाल सतियां सहित गयो सुरलोक ॥ 2
करी खोटी हरी भ्रला उपर कहा,
सरी न हुस पाता गरज सा भेद;
राणिया तलक साथे करी राठवड,
भ्रमरची पर भ्रद्र हुयो उमेद ॥ 3
चमर ढलता थका साम चहुवाण रो,
भ्राथ कवियांण रो, करन एहनाण;
धणी होय मालियो कुंवर जोधाण रो,
भुवन शक्र तणे हिन्दुवाण रो माण ॥ 4
सूर भ्रर शशि लग हरो गजसाहरो,
परमपद पामसी भ्रसी पूरो;
भेटशे वभो सुरतणो उमेदसी,
भेटशे पद्यी गौलोक भूरो ॥ 5.

ईडर के एक ब्राह्मण ने जब महाराजकुमार की मृत्यु के समाचार सुने तो उसे बड़ा सोच हुम्रा कि भ्रब राज्य की क्या दशा होगी ? इसी शोक के भ्रावेग मे उसने भ्रपना सिर भ्रनाज भरने की कोठी पर दे मारा; उस कोठी पर एक भारी बाट पड़ा हुम्रा था, वह उस ब्राह्मण के सिर पर भ्रा गिरा भ्रौर वह मर गया। महाराजा ने मायासूल नामक गाय कूंपावतो से ले लिया था, वही उस ब्राह्मण के पुत्र को दे दिया, जो भ्राज तक उसी के वश मे चला भ्राता है।[1]

इसके बाद 1828 ई. मे मद्द का ठाकुर गोपालसिंह बागी हो गया क्योंकि महाराजा ने उसकी जागीर के गावो को लूट लिया था। उसके पास बीस सवार थे; उन्ही को साथ लेकर वह भ्रपने गाव चित्रोड़ चला गया। वहा का एक महाजन मर गया था इसलिए ईडर का एक दनिया भी भ्रपनी स्त्री व बाल-बच्चों सहित उसके 'नुकते' मे जीमने भ्राया था। रहे भ्रौर फिर ठाकुर से 'सीख' लेकर घर के लिए रवाना एक सौ के करीब थे। चित्रोड के

1

—

सहित उन पर-गांववासियो के पीछे गया और सब को पकड़ कर पहाड़ियो मे ले गया। जब यह खबर ईडर पहुंची तो वहा के महाजन इकट्ठे होकर रोते-चिल्लाते हुए महलों मे गए। राजा ने एक ऊपर की खिड़की मे से झांक कर कहा, 'यह क्या है?' महाजनों ने उत्तर दिया, 'हमारे कुछ लोग एक नुकते मे जीमने गए थे, वहा उन सब को पकड़ कर गोपालसिंह ले गया। आपने हमारे मालिक हो कर क्या किया? यदि हमारे सिर पर कोई 'धणी' होता तो क्या कभी ऐसा हो सकता था?' तब राजा ने कहा 'तुम्हारा धणी तो रमलेश्वर तालाव[2] के पास सो रहा है; अब तुम्हारा धणी कौन है? मैं तो बुड्ढा आदमी हू।' फिर भी, उसने कुछ फौज एकत्रित की और मह्र व चितोड़ तक चढ़ाई की, परन्तु असफल हो कर लौट आया। महाजनो ने अब फिर हल्लागुल्ला मचाना शुरू किया और अपनी मुसीबतों की शिकायतें करने लगे; वे यह भी सन्देह करने लगे कि गोपालसिंह की कैद मे जो स्त्रिया थी वह उनकी आबरू ले रहा था। इस पर महाराजा ने अपने सिर से उतार कर पगडी अलग रख दी और एक कपड़ा लपेट लिया। उसने कहा 'तुम्हारे आदमियो को छुडा कर लाऊंगा तब ही पगडी बांधूंगा।' उसने अपने मन मे शपथ ली कि ऐसा तभी होगा जब गोपालसिंह मारा जाय।

अब, गोपालसिंह ने फिरौती की रकम लेकर महाजनो को तो छोड दिया और वह स्वयं अपने परिवार सहित मह्र की पहाडियो मे जा कर रहने लगा तथा ईडर के इलाके मे लूटपाट करने लगा। अन्त मे, महाराजा ने फौज एकत्रित करके मह्र के समीप भवनाथ महादेव के पास पड़ाव डाला और (बीजापुर के) बारहठ दामोदर मोहब्बतसिंह की साख देकर गोपालसिंह को बुलाया। जब मह्र का ठाकुर आया तो महाराजा ने उसकी बहुत आवभगत की और उन दोनो ने साथ बैठकर कसूंबा पिया। उस समय महाराजा ने कहा, 'तुम तो मेरे पुत्र हो, तुम्हारे बराबर मेरा कौन होगा?-तुम्हे देखता हूं तो मुझे ऐसी खुशी होती है जैसे उम्मेदसिंह को ही देखा हो।' इस तरह की बातचीत करके उसने गोपालसिंह को पुनः मह्र का ठाकुर बना दिया। इसके बाद महाराजा बराबर यह कहने लगा, 'मुझे तो गोपालसिंह को देखे बिना भोजन ही अच्छा नहीं लगता।' और इसलिए उसने उसको ईडर बुलवा लिया।

1830 ई. में महाराजा अपने लवाजमे के साथ रियासत का दौरा करने निकला उस समय उसने पोसीना जिले के सेरोड गांव के ठाकुर बुधसिंह को पकड़ कर उसके बेड़ियां डाल दी। इसकी हकीकत यों है—

हडाद-पोसीना का ठाकुर 1828 ई. में मर गया; उसके एक पुत्र पर्वतसिंह था जो उस समय यद्यपि अट्ठारह वर्ष का हो गया था परन्तु कुछ जनानी किस्म का

2. यहां उसका आशय उम्मेदसिंह से था क्योंकि उसी की छतरी उस तालाव के पास बनी हुई है।

था। उसके दो निकट सम्बन्धी जामतसिंह और बुधसिंह थे। इनमें से पहला तो असली हकदार को ही गद्दी पर बिठाना चाहता था, परन्तु दूसरा स्वय ही बैठने को तैयार हो रहा था। जब और कोई उपाय नही चला तो बुधसिंह ने ईडर आकर महाराजा को कहा, 'यदि आप मुझे गद्दी पर बिठा देंगे तो पोसीना की जागीर में से चौथा हिस्सा आपको लिख दूंगा।' महाराजा ने यह स्वीकार कर लिया। जब ठाकुर के लडके और जामतसिंह को खबर हुई तो वे भी ईडर गए और उन्होंने महाराजा को कहा, 'असली वारिस होते हुए किसी दूर के रिश्तेदार को गद्दी पर बिठाने की परम्परा नही है।' तब महाराजा ने कहा, 'वह जागीर मे से चौथा भाग मुझे देना स्वीकार करता है, इसलिए मैं उसी को गद्दी पर बिठाऊगा।' जब उन्होंने देखा कि और कोई उपाय नही है तो कहा, 'हम भी चौथा हिस्सा दे देंगे।' गम्भीरसिंह ने कहा, 'चौथा हिस्सा देना तो वही स्वीकार करता है, तुम क्या ज्यादा देते हो जो तुमको गद्दी दी जाय?' अन्त मे बहुत कुछ-हील हुज्जत के बाद युवक ठाकुर ने जागीर का तीसरा हिस्सा छोड़ने की लिखत करदी और जामतसिंह राजा की आज्ञा से उसको गद्दी पर बिठाने के लिए पोसीना रवाना हो गया। बाद मे, बुधसिंह गया और उसने छः आने[3] हिस्सा छोड़ना मजूर कर लिया तब यह हुक्म भेजा गया, 'ठाकुर के पुत्र को गद्दी पर बिठाने से पहले यहा चले आओ।' जामतसिंह लौट आया। महाराजा ने कहा, 'बुधसिंह छः आने हिस्सा देता है, इसलिए गद्दी बुधजी की है।' इसी तरह दो महीने तक कशमकश चलती रही और अन्त मे, युवक ठाकुर ने आधी जागीर छोडना मजूर कर लिया। तब महाराजा ने सुवेर के राजकुमार को पचास बन्दूकचियो, पचास सवारो, एक हाथी, नक्कारा और चादी की छड़ी साथ देकर ठाकुर के लड़के को गद्दी पर बिठाने और साथ ही आधी जागीर सम्हाल लेने को भेजा। तदनुसार राजकुमार ने जा कर पर्वतसिंह को गद्दी पर बिठा दिया। इस पर बुधसिंह सेरोड जाकर अपने घर पर रहने लगा और वहां से पोसीना की जागीर को नुकसान

3. हिन्दुओं में हर एक चीज आनो में या रुपये के सोलहवें भाग में विभक्त की जाती है। वेल्स (Wales) मे भी ऐसी ही एक प्रथा अब तक प्रचलित है। जलपोत के विभिन्न भागीदारो से सम्बद्ध एक अभियोग चल रहा था; उसमे सभी साक्षी वेल्स के थे। वे जब अपनी बात कहते थे तो वह सब वाहन के भार से सम्बद्ध होती थी, यह सुनकर सब को आश्चर्य होता था। इसका साराश दुभाषिए ने इस प्रकार किया—'जब वाहन बनाया जाता है तो उसका खर्चा चौंसठ भागो मे बाट दिया जाता है; सब भागीदारो द्वारा मिलकर जो भाग रखा जाता है वह एक पाउण्ड एवर्डोपाइज माना जाता है। इस प्रकार $\frac{1}{64}$ जिसका भाग हो उसे एक औंस का भागीदार कहा जायगा; $\frac{1}{128}$ वाला आधे औंस का हिस्सेदार होगा और $\frac{1}{256}$ भाग वाला पाव औंस का हिस्सेदार।

पहुंचाने लगा जिसकी शिकायत नए ठाकुर ने ईडर पहुचाई। महाराजा ने बुधसिंह को ईडर बुलाया परन्तु उसने, यह समझकर कि उसको वहां मरवा दिया जायगा, इस आज्ञा का पालन नही किया। फिर, साख देकर उसको बुलाया गया और वह आ भी गया, परन्तु महाराजा के प्रति उसके मन मे सन्देह ही बना रहा। उन्ही दिनों सिरोही का एक कारभारी किसी काम से ईडर आया हुआ था। बुधसिंह जाकर उसी के साथ ठहर गया। महाराजा ने उसको दरबार मे बुलाकर बुरा-भला कहा परन्तु बुधसिंह ने कोई परवाह नही की। महाराजा ने उसको पकडने का इरादा तो किया था परन्तु उस समय यह सोचकर इसको प्रकट नही किया कि शायद सिरोही का कारभारी इसका विरोध करे इसलिए उस समय तो बुधसिंह को कुछ कह सुनकर ही सीख दे दी गई। उसने घर लौट कर अपनी वही पहले वाली पोसीना के पट्टे के गांवों को ज्यादा से ज्यादा नुकसान पहुचाने की हरकतें चालू कर दी। महाराजा ने उसको फिर साख देकर ईडर बुलाया परन्तु ठाकुर ने साफ इनकार कर दिया कि अब वह ईडर नहीं जायगा। तब गम्भीरसिंह ने उसके दो कामदारों (एक ब्राह्मण और एक चारण) को यह कहकर फोड लिया कि यदि वे अपने मालिक को दरबार में पुनः हाजिर होने को बाध्य करेंगे तो उन्हें एक-एक गाव दे दिया जायगा। इस तरह जाल मे फसकर बुधसिंह ईडर आ गया और राजा ने बहुत ही सम्मान के साथ उसका सत्कार किया तथा पूरी सतर्कता से पहले का सन्देह दूर करने के लिए उसको दरबार में बुलाया। उधर मीरू नामक सिंधी जमादार को बुधसिंह को पकड़ने का निर्देश दिया गया और उसने इस काम को उस वक्त किया जब वह अपने डेरे से दरबार मे जा रहा था। मीरू ने उसको बेड़ियां पहना दी।

जब 1830 ई. मे महाराजा दौरे पर निकला तो बुधसिंह को भी बन्दी के रूप मे साथ ले गया; परन्तु दो महीने बाद नीति मे कुछ परिवर्तन हो गया और उसको साख पर छोड़ दिया गया; उसकी सेरोड़ की जागीर लौटा दी गई और अन्य प्रकार से भी उसे सन्तुष्ट किया गया। घर पहुंच कर बुधसिंह ने सब से पहले अपने दोनों कामदारों को बुलाया और प्रीतिभाव जताकर उनका सन्देह दूर कर दिया। फिर, पहले तो उसने ब्राह्मण का सिर काट कर कुत्तो के चबाने के लिए फेंक दिया और फिर चारण को नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह किसी तरह बच निकला।

महाराजा अपना लवाजमा लेकर निकला; उसके साथ अहमदनगर का राजा करणसिंह, मह का ठाकुर गोपालसिंह और दूसरे सरदार भी थे। उस समय उक्त दोनों सरदारों और मूंडेटी के जालिमसिंह ने गुप्त मंत्रणा की कि सेना पालया की तरफ बढ़ानी चाहिए क्योंकि वहां के ठाकुर से उनकी दुश्मनी थी; उधर, महाराजा

श्रौर प्रधान दुर्जनसिंह का विचार रहवरों पर चढ़ाई करने का था। जब गम्भीरसिंह ने अपना विचार प्रकट किया तो इन तीनो ने उसके समर्थन का बहाना बनाया और स्वयं तो महाराजा की हाजरी में बने रहे, परन्तु अपने सैनिको को आगे भेज दिया जिन्होंने महाराजा के पहुचने से पहले ही पालया को लूट कर वहा के सब घर जला दिये। वहां का ठाकुर मोहब्बतसिंह पहाड़ियों में भाग गया; भागने वाला तो वह नही था, परन्तु उसने समझा कि उसके धणी की फौजें हैं इसलिए उसने गाव छोड़ दिया। बाद मे, जब महाराजा वहां पहुंचा तो उसे गाव मे जले हुए घरो के ढेर पड़े मिले; तब उसने तीनों सरदारो को बहुत बुरा भला कहा। फिर, पालया की भूमि मे ही डेरा लगाया गया। ठाकुर मोहब्बतसिंह ने तुरन्त ही भीलों की बहुत बड़ी सेना एकत्रित करके राजा की सेना के लौटने का मार्ग रोक दिया। इस बीच में, पालया से जो लूट का माल मिला उसी से सेना का खर्च चलता रहा। दुर्जनसिंह के सिपाहियो ने तो कोई दुश्मनी का काम नही किया परन्तु, उन तीनों षड्यन्त्रकारी सरदारों के आदमियो ने आस-पास के गावो को लूट-लूट कर आग के हवाले कर दिया जिससे गम्भीरसिंह बहुत अप्रसन्न हुआ। उसी समय समाचार मिले कि सेना के साथ वाले महाजन के माल से लदे ऊटों की कतार को ईडर के रास्ते मे भीलो ने लूट लिया और उन जगली लुटेरो ने कुछ ऊटो और शुतर-सवारो को घायल भी कर दिया। ऐसे ही अवसर पर पालया के ठाकुर मोहब्बतसिंह का सन्देश मिला 'महाराजा ने मेरा गांव अकारण ही लूटा है, मैं नियमित रूप से कर जमा कराता हूं।' उसने सेना का वापस घर लौटना मुश्किल कर देने की भी धमकी दी। इस पर राजा ने उत्तर भेजा कि उसका तो पालया लूटने का कोई इरादा नही था, जो कुछ हुआ, वह उन तीनों सरदारो का किया हुआ था। तब मोहब्बतसिंह ने फिर कहलाया, मैं उनको अच्छी तरह समझ लेता, परन्तु हुजूर ने उनके साथ पधारने की तकलीफ क्यों की?' महाराजा ने उसको मिलने के लिए बुलाया परन्तु ठाकुर ने हाजिर होने से इनकार कर दिया; अन्त मे, गम्भीरसिंह को मजूर करना पड़ा कि पालया के पुनर्वास के सिलसिले में ठाकुर से दो साल तक कोई कर वसूल नही किया जायगा। इसके बाद, महाराजा ने अपना डेरा उठा दिया। इस घटना से उसका मन खिन्न हो गया था इसलिए आगे न बढ कर वह ईडर लौट गया और सेना को बरखास्त कर दिया।

महाराजा ने गोपालसिंह को अपने पास ही रख लिया। दुर्जनसिंह प्रधान और गोपालसिंह मे कट्टर दुश्मनी थी इसलिए महाराजा ने गोपालसिंह को कहा, 'मेरा विचार तुमको ईडर का प्रधान बनाने का है और एक बात, अगर तुम पेट मे रख सको तो, और कहू।' इस पर गोपालसिंह ने भेद अपने तक ही रखने का विश्वास दिलाया। तब महाराजा ने उसके कान में कहा, 'मैं दुर्जनसिंह को रास्ते से हटाना चाहता हूं।' गोपालसिंह ने फिर कहा, 'आप सच कह रहे हैं या हंसी रहे हैं?' महाराजा बोले, 'मैं सत्य कह रहा हूं।' 'वचन दीजिए', गोपालसिंह ने

कहा। वचन दे दिया गया। तब गोपालसिंह ने अपने घर मडू जाने की सीख मांगी जो उसे मिल गई और साथ ही बहुत सा इनाम-इकराम भी। वह चला गया और लौटकर आया तो महाराजा ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया और उसे वह ढाल और तलवार भी बख्शीश में दे दी जो महाराजकुमार उम्मेदसिंह बांधा करता था। बहुत से लोगों ने इन बातों को देखकर गोपालसिंह से कहा कि महाराजा कभी न कभी दगा करेगा। उन्होंने कहा याद करो, भवानीसिंह ने चांदणी वाले सूरजमल को धोखा देकर मार दिया था और मोरासण के युवक ठाकुर के साथ भी दगा हुआ था। इस घराने के राजा तो ऐसा करते ही आए हैं।' परन्तु गोपालसिंह ने इन चेतावनियों पर कोई ध्यान नहीं दिया, यहां तक कि जब उसके श्वसुर ठोडडा के ठाकुर पर्वतसिंह ने भी उसको सावधान रहने को चेताया तो उसने विश्वास नहीं किया और कहा, 'ऐसे ही भय के भूत दिखा-दिखा कर टीटोई के ठाकुर कनकाजी और धीरजी को दरबार से दूर रखा गया और अब इसीलिए मुझे डरा रहे हो कि मैं भी दूर चला जाऊं।'

इसके बाद गोपालसिंह की माता की मृत्यु हो गई तब भी बहुत आग्रह करके वह क्रियाकर्म करने को छुट्टी लेकर मडू गया। घर पर भी बहुत से लोगों ने उसको ईडर न जाने को कहा, परन्तु उसने किसी की भी बात नहीं सुनी। तब उसकी सौतेली माता और पत्नी ने ऐसा प्रबन्ध किया कि जब वह ईडर जाने लगा तो गांव के बाहर उसको काले और फूटे घड़े लिए हुए औरतों की टोली मिली, और भी कितने ही अपशकुन हुए। परन्तु, ठाकुर तो ईडर चला ही गया।

बहुत समय बाद 1831 ई में महाराजा ने अपने कसवाती सेवकों को भेद न खोलने की सौगन्ध-शपथ दिलाकर कहा, 'आज तुमको गोपालसिंह को मार ही देना है।' परन्तु, उनमें से कोई भी इस काम के लिए राजी नहीं हुआ। तब उसने मीरू सिंधी को बुलाकर उसी तरह गोपनीयता की शपथ दिलाई और उसको इस काम के लिए रजामन्द कर लिया। पहले दिन ही महाराजा ने गोपालसिंह से कहा था, 'कल शिवरात्रि का त्यौहार है इसलिए सुबह जल्दी आना; कल ही हम दुर्जनसिंह का काम तमाम करेंगे।' दूसरे दिन गोपालसिंह जल्दी ही उठा, उसने स्नान क्रिया, कलेवा किया और तैयार होकर वह महलों की सीढ़ियों पर जा पहुंचा। उसने महाराजा को मालूम कराया कि वह आ पहुंचा था। तब, प्रथा के अनुसार ड्योढीवान ने उसके शस्त्र ले लिए। मीरू और उसके सिपाही भरी हुई बन्दूकें लिए गोपालसिंह के प्राण लेने को तैयार थे; अच्छे चरित्र-वान व्यक्तियों और दरबार में जो कुछ उसके मित्र या हितू थे उनको किसी न किसी बहाने से दूर भेज दिया गया था। जब गोपालसिंह महलों में पहुंचा, तो, महाराजा ने उसे बड़ी रानी[4] के रावले में बुलवा लिया, जहां गद्दी तकिये लगा कर वह बाकायदा

4. उसका नाम दौलतकुवर बा था और वह ओशवा (ओसिया) के भाटी सरदार की पुत्री थी, जो मारवाड़ में जैसलमेर की भायात में था। जब महाराजा देव हुए तब यह रानी भी सती हुई थी।

दरवार मे विराजमान था। जब जीमन का समय हुआ और थाल आया तो महाराजा ने गोपालसिंह को कहा, 'तुम भी मेरे साथ ही भोजन करो।' उसने माफी चाही परन्तु बहुत आग्रह करने पर उसे जीमना ही पड़ा। जीमन के बाद महाराजा ने बीड़ा मुख-वास इनायत किया। उस समय गोपालसिंह के श्वसुर ने उसको एकान्त में लेकर कहा, 'मुझे भय है कि आज यह सब कुछ तुम्हें मार डालने के लिए ही किया जा रहा है; जरा सोचो, मैंने तुमको अपनी लड़की ब्याही है, जिसकी अवस्था केवल चौदह वर्ष की है, मेरा कहना मानो, उसी की खातिर अपने प्राण बचाने का प्रयत्न करो।' गोपालसिंह ने इसका इतना ही उत्तर दिया, 'तुम्हारी आशंका निर्मूल है।' तब वह गोपालसिंह का श्वसुर हुक्का पीने का बहाना करके किसी तरह बडी मुश्किल से वहा से अपने घर सटक गया और घोड़े पर सवार होकर अपने प्राण लेकर भागा। इस पर सिन्धी जमादार और भी सतर्क हो गया और बाद मे किसी को भी वहां से नहीं निकलने दिया।

फिर महाराजा ने अपने एक सेवक को इत्र की शीशी लाने की आज्ञा दी। जब वह ले आया तो उसने कहा, 'यह तो वह नहीं है जिसके लिए मैंने कहा था।' सेवक कई बार शीशी लाया परन्तु हर बार महाराजा ने वही बात कही और अन्त मे वह स्वयं अपनी पसन्द की शीशी लाने के बहाने बाहर चला गया। तुरन्त ही दरवाजे बन्द कर दिये गये और महाराजा ने धीरे से सिन्धी से कहा 'अब, अगर वह बच गया तो इसके जवाब मे तुम्हारा सिर ले लूगा।' इतना कहते ही खिड़कियो में होकर चारो तरफ से कमरे मे गोलियों की बौछार होने लगी। गोपालसिंह के साथ बारह नौकर थे जो अपने ठाकुर के आस-पास आडे हो गए परन्तु, गोलियों की मार से वे एक एक करके मर गए। गोपालसिंह भी घायल हो गया। तब महाराजा सामने आया और जोर से बोला, 'अरे गोपाल! बोलो, क्या ईडर के महाजनो को पकड़-कर ले जाना वाजिब था? अब अपना बल दिखाओ! यह लो, तुम्हारे बांधने को दो दो तलवारें हैं।' यह कह कर उसने दो तलवारें कमरे मे फेंक दी। तब गोपाल-सिंह ने रानी को जोर से पुकारकर कहा, 'मैं तुम्हारे महल मे हूं, तुम्ही मेरी रक्षा करो।' यह सुन कर कर रानी महाराजा के समीप जाकर बोली, 'जो कुछ हो गया, सो हो गया। अब यदि तुम गोपालसिंह को मारोगे तो मैं भी उसी के साथ प्राण दे दूंगी।' महाराजा ने कहा अब अगर मैं उसे जिन्दा छोड़ दूंगा तो वह मुझे मार देगा।' रानी ने उत्तर दिया, 'जो कुछ कड़ा से कड़ा प्रबन्ध हो, वह करो परन्तु उसके प्राण मत लो।' रात भर और दूसरे दिन गोपालसिंह को वहा बन्द रखा गया। जब रात हुई तो उसने फिर महल की चार-दीवारी पर चढ़कर भाग जाने का निश्चय किया। जब इस इरादे से वह बाहर निकला तो पहरेदार ने तुरन्त ही काट कर उसके दो टुकड़े कर दिए और वह वही ढेर हो गया। फिर, भंगियों को बुलवा कर ... लाश महल के चौक में घिसटवाई गई और महाराजा ने आज्ञा दी कि उसके

टुकड़े-टुकड़े करके चीलों के खाने के लिए फेंक दिए जावें। जब नगर के प्रमुख महाजनों को महाराजा का यह विचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने महलों मे आ कर कहा, "महाराज! अपराधी को दण्ड मिल गया; अब इस मिट्टी के ढेर से आपको कोई वैर नही है; इसे जलाने की आज्ञा दीजिए।" इस पर सब लाशें एक गाडी में रख कर श्मशान मे ले जाई गई और वही उनका अग्नि-संस्कार हुआ। इसके बाद ही महल के सब लोगों ने अपना व्रत खोला क्योंकि जब से गोपालसिंह ने वहां प्रवेश किया था तब से किसी ने एक कौर भी मुह मे नही डाला था।

मह्रू के ठाकुर के दो पुत्र थे, भारतसिंह और पर्वतसिंह[5]। पिता की मृत्यु के समय बड़े लड़के की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। ईडर में जो दुर्घटना हुई उसके

---

5 पर्वतसिंह की अवस्था तीन वर्ष की थी। (गु. ग्र.)

टिप्पणी—मह्रू के ठाकुर गोपालसिंह की इस दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के विषय मे अंग्रेजी दफ्तर मे कोई लेख नही मिलता है। लेफ्टिनेन्ट कर्नल बैलेण्टाइन के चले जाने के बाद महीकाठा मे कोई पोलिटिकल एजेण्ट नही रहा था। ऐसी अवस्था में इस प्रकार के कृत्य को या तो अंग्रेज अधिकारियों से छुपा लिया गया होगा या फिर किसी तरह का फेरफार करके कहा गया होगा। महाराजा गम्भीरसिंह के बारे में जो कुछ लिखा मिलता है उससे तो यह विश्वास दृढ होता है कि उसके हाथों ऐसा कुकृत्य होना कोई असम्भव बात नही थी। उसके स्वभाव मे धोखेबाजी थी, यह बात अब तक ईडरवाड़े में कुप्रसिद्ध है और चारण-भाटो ने जो उसके अन्य कितने ही कृत्यो के बारे में उल्लेख किया है उससे भी लक्षित होती है।

1821 ई० में मेजर माइल्स ने महाराजा गम्भीरसिंह के विषय मे लिखा है—"ईडर के वर्तमान महाराजा के चरित्र के विषय मे यहां के लोगों का कहना है कि उसमें धोखेबाजी, ठगी और अस्थिरता का सम्मिश्रण है। ऐसी प्रसिद्धि है कि अपने स्वार्थ के आगे लोगों की गुण-सम्पदा और योग्यता के प्रति उसकी कोई आस्था नही है। उसकी अविश्वसनीयता तो सर्वप्रसिद्ध है और मुझे बताया गया है कि सम्पूर्ण ईडरवाड़ा मे शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जो शपथपूर्वक उसके साधारण से साधारण वादो और करारों पर विश्वास कर सके। उपज का प्रबन्ध करने के विषय में वह अविवेकपूर्ण और उडाऊ गिना जाता है; परन्तु, बोहरों और सैनिकों को ठगने मे वह कोई कसर नही छोड़ता। वह पूरी तरह से ब्राह्मणो और गोसाइयों के हाथों मे खेलता है जो उसको भारी ब्याज पर रुपया-उधार देते हैं और उसकी आमदनी को आगे से आगे हड़पते रहते हैं। चरित्र की यह बुराई कुछ बातों में तो निःसदेह सही मालूम होती है परन्तु दूसरे मामलों में कुछ बढा-चढ़ा कर कही हुई भी प्रतीत होती है। वैसे, यह

→

समाचार सुनकर मृत ठाकुर के सेवक और परिवार के लोग पहाड़ियों में चले गये। तब महाराजा ने मद्दू की तरफ कूच किया और उसी गाव के पास अपना डेरा कायम किया। इसके बाद उसने गोपालसिह के बालकों को बुलवाकर उनकी बपौती की जागीर पर कायम कर दिया।



महाराजा योग्य मालूम देता है। साथ ही, इसमे चालबाजी और फरेब की भी खासियत है। पुरुष-परीक्षा के ज्ञान के कारण वह अपने कितने ही कारभारियो और सम्बन्धियो से विशिष्ट हो गया है इसलिए कई बार जब वे राजनीतिक प्रबन्धों मे इसकी बराबरी नही कर पाते है तो अपनी योग्यता और दूरदर्शिता मे हीनता अनुभव करने के बजाय सारा दोष इसी की कपट-विडम्बना पर डाल देते है। फिर, इसके चरित्र की जाच, परिस्थितियों, आसपास के लोगों और जिनने इसको टक्कर लेनी पडती है, उनको देख कर भी करनी चाहिए।" इन बातो के लिए छूट देते हुए भी यह तो मानना ही पडेगा कि महाराजा गम्भीरसिंह एक असाधारण और ऊँचे दर्जे का छलछन्दी था; उसमे छद्म और क्रूरता का वह सम्पूर्ण सम्मिश्रण पाया जाता था, जो राजपूतो मे राठौड़ जाति का विशिष्ट लक्षण माना जाता है। अंग्रेज कवि शेक्सपियर के ग्लोसेस्टर[×] के साथ वह भी कह सकता था—

> "मैं मुस्करा सकता हूँ, और मुस्कराने के साथ ही वध भी कर सकता हूँ; और, जो मेरे हृदय को दुःखी करता है उसी के प्रति सन्तोष का उद्घोष भी कर सकता हूँ; मैं कृत्रिम अश्रुओं से अपने कपोलों को सिक्त कर सकता हूँ, और सभी अवसरो के अनुकूल अपनी मुखाकृति बना सकता हूँ।"

(हेनरी षष्ठ, 3. 2. 182–5)

× ड्यूक ऑफ ग्लोसेस्टर इंगलैण्ड के राजा एडवर्ड चतुर्थ का भाई था। वह अपने भाई के बाद रिचार्ड तृतीय के नाम से राजा हुआ। उसने अपने भाई एडवर्ड के दो पुत्रों को छल से मार दिया था।

प्रकरण चौदहवां

ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह (3)

सन् 1804 के लगभग उदयसिंह के मर जाने पर उसका पुत्र जालिमसिंह मूंडेटी[1] ठिकाने की गद्दी पर बैठा। गोता का ठाकुर, जो स्वर्गीय ठाकुर (उदयसिंह) का भाई था, निःसन्तान मर गया, इसलिए वह जागीर भी जालिमसिंह के हाथ लगी। उसने इस जागीर को अपने पुत्र उम्मेदसिंह के नाम कर देना चाहा, जिसकी माता वरमोडा के चावडा की पुत्री थी। गोता की जागीर का पट्टा राज्य की ओर से अलग मिला हुआ था इसलिए यह आवश्यक था कि महाराजा नये ठाकुर से नजर ग्रहण करे। अतः जालिमसिंह ने अपने कामदार को ईडर भेजा तब महाराजा ने स्वीकृति दे दी और यह भी कहा कि उम्मेदसिंह के पगड़ी बधने का दस्तूर जिस दिन हो उसकी सूचना उनको दे दी जाय जिससे वह स्वयं मूंडेटी आकर पाग बधवा दे तथा बांह भर कर मिलने का सम्मान भी प्रदान करे। निश्चित तिथि पर महाराजकुमार उम्मेदसिंह अपने पिता के प्रतिनिधि रूप मे मूंडेटी गया। उसकी सगाई जालिमसिंह की राठौड ठकुरानी की पुत्री गुलाब कुंअर बा से हुई थी, जो सूरजमल और शेरसिंह की सगी बहन थी; इसलिए महाराजकुमार की मगेतर (वाग्दत्ता पत्नी) की माता राठौड़ानी चावडी के पुत्र की एवज अपने पुत्र अर्थात् महाराज कुंअर के साले शेरसिंह को गोता की पगडी बधवाने मे सफल हुई। इसी बात को लेकर जालिमसिंह और उसकी राठौड पत्नी तथा पुत्रों मे वैमनस्य का बीज जम गया जिससे आगे चलकर उन पर बहुत सी आपत्तिया आई और महाराजा व ठाकुर मे भी आपस में अनबन रही।

शेरसिंह गोता[2] जा कर रहने लगा। उसके दूसरे गांव रतनपुर की सीमा वलासण ठाकुर के गाव खास्की से मिलती थी इसलिए दोनो ही पक्षो की ओर से इन दोनों गावो में सशस्त्र सिपाही रहते थे। वर्षा ऋतु मे दोनो गावो के किसानो

---

1. मूंडेटी का पट्टा महाराजा शिवसिंह ने मानसिंह चौहान को सवत् 1741 मे बख्शा था।

2. ठाकुर अभयसिंह की ठकुरानी भी राठौड़ी थी; वह गोता मे ही रहती थी। शेरसिंह उसी का वारिस हुआ था।

मे सीमा के बारे मे तनाजा (झगड़ा) हुआ। उस समय तो उनको समझा-बुझा कर दोनों ही दलो को अलग-अलग कर दिया गया परन्तु बाद मे दोनों ही पक्षों ने अपने अपने 'धणी' के पास जाकर पुकार की तब दोनो ही मालिको ने अपने-अपने आदमियो से कहा, "तुम मर्द थे या क्या ? अगर मर्द होते तो वही लड़ कर झगड़ा निपटा देते।" दूसरे दिन जब वे किसान तनाजे की जमीन पर हल चला रहे थे तो उनके हाथो मे शस्त्र भी थे इसलिए लड़ाई शुरू हो गई। शेरसिंह की तरफ का एक आदमी मरा और कुछ घायल हुए तथा दूसरी ओर के भी बहुत से आदमी जख्मी हो गए। जब गोना के ठाकुर ने यह परिणाम सुना तो उसने मूँडेटी जा कर अपने पिता से सहायता मागी और कहा, 'यदि इस समय सहायता नही करोगे तो वलासण जाकर मरणान्त युद्ध करूंगा यद्यपि विरोधी के पास अत्यधिक बल है।" तब जालिमसिंह ने अपने सैनिक इकट्ठे किए और उनको लेकर वह स्वयं वलासण गया; युद्ध चालू हो गया। मूँडेटी के ठाकुर ने ईडर के महाराजा से भी सहायता मागी तब उसने धन एव सिरबंधिये देने का आश्वासन दिया और उसके सन्देशवाहक को यह कहकर विदा किया कि कदाचित् वलासण का ठाकुर जीत जायेगा तो मारवाड की इज्जत चली जायेगी और कभी वह स्वय मूँडेटी का मालिक बन बैठेगा। वलासण के ठाकुर ने भी उससे मदद मांगने को आदमी भेजा क्योंकि उसकी आधी जागीर ईडर के अधीन थी, परन्तु उसको भी गम्भीरसिंह ने वैसा ही उत्तर दिया जैसा जालिमसिंह को दिया था। वास्तव में, उसके दोनों हाथो मे लड्डू थे और वह इनमें से किसी की भी विजय होने पर प्रसन्न था, परन्तु एक न एक पक्ष की तो पराजय होनी ही थी।

वलासण मे एक साध्वी रहती थी जो पुरुषों के से वस्त्र पहनती थी और उसने अपना नाम भी पुरुषो जैसा ही 'मानदास' रखा था। वह समझौता कराने के काम मे प्रसिद्ध थी। इसी रूप मे ईडर आ कर बड़े दर्प के साथ महाराजा के सामने उपस्थित हो उसने कहा—'वलासण के लोगों ने ऐसी बुरी तरह से मारवाड़ियों को पीछे हटा दिया कि उनकी बहुत बेइज्जती हुई।' दुर्जनसिंह प्रधान, जो उस समय दरबार मे ही बैठा था, इस खबर को सुन कर बहुत विचलित हुआ क्योंकि उस समय उसका पुत्र और भाई भी मूँडेटी ठाकुर के साथ ही थे। उसने जालिमसिंह को लिख भेजा कि वह या तो वलासण को विजय करे अन्यथा ईडर में आकर कभी अपना मुंह न दिखावे। इसके साथ ही उसने कुछ द्रव्य देने को भी लिखा। उसका पत्र वलासण पहुंचा उससे पहले दिन ही झगड़ा शुरू हुआ परन्तु एक पड़ोसी ठाकुर ने आकर बीचबचाव कर दिया था। जब प्रधान का पत्र पहुंचा तो जालिमसिंह ने दृढता के साथ धावा मारा और उस गांव को लूटकर अग्नि की भेंट कर दिया; उसने वहा के कुछ लोगों को कैद कर लिया, ढोर घेर लिए और वासकी के ठाकुर को वह मृत अवस्था में रणक्षेत्र मे छोड़ गया। इस प्रकार वह झगड़ा खतम हो गया और मारवाड़ी घर लौट आए। ब्रिटिश सत्ता ने वलासण के लोगों को वैर का बदला लेने से

रोक दिया परन्तु वे कहते रहे कि जब कभी यह सत्ता नहीं रहेगी तब मूँडेटी से बदला अवश्य लेंगे।

ई० सन् 1820 मे चौहान शाखा का अन्तिम पुरुष मृत्यु को प्राप्त हुआ तो गम्भीरसिंह ने उसके गावो को इस आधार पर खालसा करना चाहा कि उसका पट्टा मूँडेटी से भिन्न था इसलिए अब वह वापस राज्य मे मिल जाना चाहिये। जालिमसिंह ने इस व्यवस्था को मानने मे इनकार कर दिया और बागी हो जाने की धमकी दी। यह प्रायः उसी समय की बात है जब कर्नल बैलेण्टाइन ईडरवाडा का प्रबन्ध करने मे लगा हुआ था। उसने जालिमसिंह को कैद कर दिया परन्तु जब चार मास बाद उसने विवादास्पद जागीर को छोडना, महाराजा के अन्य अधिकारो को मानना और दस वर्ष तक अच्छे चाल-चलन की जमानत दाखिल करना कबूल कर लिया तो उसको रिहा कर दिया गया।[3]

---

3. कर्नल बैलेन्टाइन ने सादडा से ता० 15 अक्टूबर, 1822 की रिपोर्ट मे लिखा है—

"इस ठाकुर (मूँडेटी के जालिमसिंह) के चालचलन के बारे मे सरकार को पिछली तारीख 7 अप्रेल की रिपोर्ट मे अवगत करा चुका हू और उसके दंगा फसाद करने का प्रमाण दे चुका हू। उसके बाद जुर्माना देकर ठाकुर ने ईडर से समझौता कर लिया और नया पट्टा करके उसको वापस ठिकाने पर बैठा दिया गया है।... ...हर एक पटावत के कुछ जिलायत होते हैं जिनसे उसका वही सम्बन्ध होता है जो उसका राजा से होता है। वे चाकरी की एवज मे जमीनें भोगते हैं और, वास्तव में, वे जमीनें भी इस बन्दोबस्त मे शामिल की गई हैं। इस पट्टे मे चार जिलायत हैं परन्तु इनको सीधी ईडर से जमीनें मिली हुई हैं इसलिए इनको भी समान हक-हकूक और दर्जा प्राप्त है। इसकी हकीकत इस प्रकार है—इस राजवंश की सस्थापना के समय वर्तमान जिलायतों के पूर्वज राजा के पटावतों के अनुयायी, रिश्तेदार या हिस्सेदार थे और उनको ईडर की तरफ से गुजारे के लिए प्रायः समान करारो पर भूमि मिली हुई थी। पटावत उनसे नौकरी ले सकता है परन्तु उनको जमीनो से बेदखल नही कर सकता; इनमे अन्तर केवल इतना ही है कि जिलायत अपनी जमानतें अलग से अपने वरिष्ठ पटावतो को पेश करते है जो फिर अन्तिम रूप से उनके लिए भी जिम्मेदार हो जाते हैं।... ...यह ठाकुर गम्भीरसिंह का सम्बन्धी है। इसकी पुत्री महा; राजकुमार उम्मेदसिंह को ब्याही गई है। परन्तु इस सम्बन्ध से मेल की शत्रुता मे ही वृद्धि हुई है। स्वय जालिमसिंह का विवाह पोल के राव से हुआ है और उससे उसके एक पुत्र सूरजमल है, जो उसका पाटवी कु

ई० स० 1826 में गोरल के ठाकुर की मृत्यु हुई; उसके चांद बा नामक एकमात्र पुत्री थी जो महाराजा गम्भीरसिंह को ब्याही थी। इसलिए उसने जाहिर कि उसका ससुर अपना गाव उसकी पत्नी के दहेज मे दे गया था अतः उसका इरादा वहा पर थाना कायम करके या तो खालसा करने का था या रानी को हाथखर्च मे दे देने का था। ठाकुर की विधवा ने इस प्रबन्ध के लिए रजामन्दी प्रकट की क्योंकि महाराजा ने जागीर की आय में से 'खाणगी' देना कबूल कर लिया था। मूंडेटी के जालिमसिंह ने कहा कि वह स्वर्गीय ठाकुर का दत्तक पुत्र था इसलिए उसने दाढ़ी-मूछ मुडवा कर उसका क्रियाकर्म करने को प्रस्थान किया, जो महाराजा स्वयं करना चाहता था। गम्भीरसिंह को भय था कि जालिमसिंह बागी हो जायगा इसलिए उसने उसको प्रसन्न रखा और बाद मे वह अनुकूल अवसर की ताक मे रहा। इस तरह गोरल की जागीर मूंडेटी मे मिल गई। एक वर्ष बाद, जालिमसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल से कहा, 'शुरू से ही मेरा इरादा गोता की जागीर उम्मेदसिंह को देने का था, परन्तु तुम्हारी माता ने वह तुम्हारे भाई शेरसिंह को दिला दी इसलिए अब यह गोरल की जागीर उम्मेदसिंह को देना चाहता हूं।' सूरजमल इस बात से सहमत नहीं हुआ और उसके इनकार करने पर वह नाराज होकर उसी समय जोधपुर महाराजा मानसिंह के दरबार मे चला गया और वहां छः मास तक रहा।[4] परन्तु,

---

ये दोनों, माता और पुत्र, बहुत दिनों से उसके खिलाफ हैं। कुछ समय तक उन लोगों ने ईडर मे जाकर शरण ली और ऐसा लगता है कि गम्भीरसिंह ने भी सूरजमल और उसकी माता को खानगी दिलाने के प्रयत्न किए परन्तु सफलता नही मिली। जालिमसिंह इस बात से नाराज हुआ और बाहरवाट होने को ही था कि मैंने उसको बुलाया। तब से कुंअर सूरजमल तो सिरोही मे नौकरी करता है और उसकी माता घोल चली गई है।"

4. तारीख 24 दिसम्बर, 1826 ई० को कर्नल बैलेण्टाइन ने बड़ोदा के रेजीडेण्ट को इस प्रकार लिखा—

इस प्रसग मे गम्भीरसिंह और मूंडेटी के कुवर सूरजमल ने भी मुझ मे प्रार्थना की है कि मैं यह बात सरकार को सूचित करू कि कुछ समय मे जालिमसिंह मूंडेटी छोड़कर चला गया है और पता चला है कि वह जोधपुर के महाराजा मानसिंह के पास रहता है। पिछले वर्ष बहुत समय तक ठाकुर कोटा मे रहा और वहां अपने दूसरे पुत्र के लिए भी नौकरी प्राप्त कर ली। इन सब बातों का कारण गृह-कलह बताया जाता है जिसके मूल में, अपने ज्येष्ठ पुत्र और अधिकारी सूरजमल को खारिज करने की, ठाकुर की इच्छा है।" कर्नल बैलेण्टाइन ने सिफारिश की कि 'खानी टिकाने' पर सूरजमल को कायम कर

→

उसको वहां पर पट्टा प्राप्त करने मे सफलता नही मिली और उसका स्वयं का व उम्मेदसिंह का, जो उसके साथ ही था, खर्चा भारी पड़ने लगा इसलिए वह जोधपुर से कोटा चला गया। वहां उसको नौकरी मिल गई और वह एक वर्ष तक रहा। जालिमसिंह को आशा थी कि उसके जाने के बाद सूरजमल उसे मनाने आवेगा और उसकी इच्छानुसार कार्य करना स्वीकार करेगा, परन्तु ऐसा नही हुआ। वह मूंडेटी मे ही रहा और उसने जागीर के बहुत बड़े भाग का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया; केवल तीन गांव जालिमसिंह के सेवकों के हाथ मे रहे। वर्ष के अन्त मे जालिमसिंह ईडरवाड़ा में लौट आया और उसने सूरजमल को कहलाया कि गोरल उम्मेदसिंह को नही दिया गया तो उसका पक्का इरादा पूरी-की-पूरी जागीर महाराजा को सौंप देने का था। सूरजमल ने इस पर कोई ध्यान नही दिया तब उसके पिता ने सिरबंधिये एकत्र करना शुरू कर दिया। जब सूरजमल को यह सूचना मिली तो उसने अपने पिता को लिखा, 'आप सेना क्यो इकट्ठी करते हैं? मूंडेटी की जागीर जिसको चाहें उसको दे दें, मैं तो स्वयं भावनगर या और कहीं जाकर नौकरी तलाश कर लूंगा।' ठाकुर ने उत्तर मे लिखा, "मैं जीवित हूं तब तक तुम्हारी 'खाणगी' मे दो गाव तुम भोगो, मेरी मृत्यु के बाद सम्पूर्ण पट्टे के तुम मालिक हो, परन्तु अभी मूंडेटी छोड दो।" सूरजमल इससे सहमत नही हुआ और रोष मे भरकर अहमदनगर चला गया। वहां उसने तीन सौ बन्दूकची और अपने पिता के उन जिलायतों को एकत्रित किया जो उसके पक्ष मे थे। सन् 1829 ई० के मार्च मास मे वह अपने सैनिक लेकर नादरी गाव के पड़ोस में आया, जहां उसका पिता ठहरा हुआ था; उसका विचार गाव पर अचानक हमला करने का था इसलिए उसने कड़ी आज्ञा दी कि बन्दूक का एक भी भड़ाका न किया जाय। फिर, जब सैनिक निश्चित स्थान पर पहुच गए तो उन्होने दनादन गोलियां चलाना शुरू कर दिया और इस तरह सूरजमल का आगमन सब को विदित हो गया; उसके पिता के सेवकों ने मुकाबला किया परन्तु जालिमसिंह ने देखा कि विपक्षियों की संख्या बहुत अधिक थी और वह आसानी से सामना नही कर सकता था इसलिए अपनी चावडी ठकुरानी को लेकर निकल भागा। बाद में ठकुरानी को दाता जिले में कहीं सुरक्षित स्थान पर रखकर वह स्वयं पहाड़ियों में भाग गया। सूरजमल ने नादरी पर अधिकार करके अपना थाना कायम कर दिया। इसके बाद वह मूडेटी आ गया और फिर वहीं अपना रहठाण बना लिया।

दिया जाय। रेजीडेण्ट ने सिर्फ इतना ही मुनासिब समझा कि सूरजमल को उसके पिता के प्रतिनिधि के रूप मे ठिकाने का इन्तजाम ही सुपुर्द कर दिया जाय। बम्बई सरकार ने इस अपर प्रस्ताव को मान लिया और इसको अप्रेल, 18 में क्रियान्वित भी किया गया, परन्तु आने वाले जून मास में ही समाप्त भी दिया गया।

महाराजकुमार उम्मेदसिंह की मृत्यु को अब पांच वर्ष हो गए थे इसलिए महाराजा ने सूरजमल की बहिन गुलाब के साथ, जिसकी सगाई उसके पुत्र के साथ हुई थी, स्वयं विवाह करना चाहा। मूंडेटी का ठाकुर और उसकी राठौड़ पत्नी, दोनों ही, इस प्रस्ताव से प्रसन्न नहीं हुए क्योंकि महाराजा अब बुड्ढा हो गया था। परन्तु, सूरजमल ने अपनी बहन का विवाह गम्भीरसिंह के साथ इस शर्त पर करना स्वीकार कर लिया कि वह उसके पिता के विरुद्ध उसकी मदद करे। जब जालिमसिंह पहाड़ियों में चला गया तब उसको आशंका हुई कि मौका देखकर सूरजमल अपनी बहन का विवाह राजा के साथ कर देगा इसलिए उसने चुपके से एक पत्र में कन्या की माता को लिखा कि लड़की को उसके पास भेज दे तो वह किसी योग्य वर के साथ उसका विवाह करने का प्रबन्ध करे। इसके अनुसार उस बाला को उसके पिता के पास पहुंचा दिया गया और उसने उसका विवाह सैलाना के ठाकुर के साथ कर दिया, जो रतलाम के छुटभाइयों में था।

इस समय तक जालिमसिंह ने छः सौ अरब और मकरानी बन्दूकधारी सिपाही इकट्ठे कर लिए थे; उनको लेकर उसने एक रात को नादरी पर हमला कर दिया। सूरजमल के थानेदार कानजी ने बहादुरी से युद्ध करके आक्रमणकारियों को पीछे हटा दिया।

सोरठा

वाकरियो थे वाघ, आयो खड अदमाल रो;
कनयो कालो नाग, निश्चल कीधी नादरी ॥[5]

जालिमसिंह ने पर्वतों में एक ऐसे स्थान पर मोर्चा जमाया जहां जंगल के घने वृक्षों में वह और उसके आदमी सुरक्षित रह सकते थे; लौटते समय उन्होंने सूरजमल के एक गांव में आग लगा दी। थोड़े दिनों बाद उसने मूंडेटी पर धावा करने का विचार किया, जहां उसका पुत्र कुछ सैनिकों के साथ रहता था। युवक ठाकुर के गुप्तचरों ने उसके पिता की तैयारियों के बारे में सूचना दी और उसने उसी समय अपने ईडर के वकील को लिखा कि महाराजा को उसकी प्रतिज्ञानुसार मदद भेजने को कहे। गम्भीरसिंह ने यह आमन्त्रण स्वीकार कर लिया और सेना एकत्रित की। वह पूरा दिन तो यों ही बीत गया; दूसरे दिन महाराजा अपनी सेना के साथ उत्तर दिशा में रवाना हुआ और वकील को बताया कि उसका इरादा जालिमसिंह और मूंडेटी के बीच का रास्ता रोकने का था। परन्तु, ठाकुर ने तो पहली रात को ही हमला कर दिया था। सूरजमल के आदमियों का इमारतों के कारण बचाव हो गया और उनकी बन्दूकों की मार से आक्रमणकारियों के पैंतीस आदमी मारे गए;

---

5. गुस्से में भरे हुए बाघ की तरह अदमाल (उदयसिंह) का पुत्र आया परन्तु काले नाग के समान कन्हैया (कानजी) ने नादरी को निश्चल कर दिया।

परन्तु, उसके छोटे से थाने के छः आदमी, गोलाबारूद-भरी एक गोल बुर्ज की रक्षा करते हुए, बारूद भभक जाने के कारण स्वाहा हो गए। स्वयं युवक ठाकुर के हाथ मे भी बन्दूक की गोली लगकर घाव हो गया परन्तु उसने गाव पर कब्जा नहीं छोडा। दूसरे दिन एक पड़ोसी ठाकुर और मूंडेटी के निवासियो ने जालिमसिंह को अपने पुत्र से समझौता करने के लिए जोर देकर कहा, "अगर सूरजमल मारा गया तो दुनियां में तुम्हारा मुह काला हो जायगा।" अन्त मे, इन शर्तों पर समझौता हुआ कि सूरजमल मूंडेटी छोड़ दे और पिता के जीवन काल मे दो ही गावों पर गुजारा करे; पिता की मृत्यु के बाद उसकी जागीर का ठाकुर बनने मे कोई बाधा उत्पन्न नही होगी। इस पर वह युवक कुवर अपनी माता को साथ लेकर उसे मिले हुए गांवो मे रहने को मूंडेटी से विदा हो गया; जालिमसिंह ने अपने गाव मे पुनः प्रवेश किया।

सूरजमल ने वहा से निकल कर, अपने पिता के भय से, कोई अधिक सुरक्षित स्थान तलाश करने का प्रयत्न किया परन्तु कोई भी पड़ोसी ठाकुर उसको शरण देने को राजी नही हुआ। वह कुवावा गया जहा एक सुदृढ़ परकोटे वाला गढ था। वह गांव चारणों का था, जो इस अतिथि के आने से प्रसन्न नही हुए। सूरजमल ने उनको समझा-बुझा कर शान्त किया कि उसका विचार अधिक लम्बे समय तक ठहरने का नही था; वह तो घाव ठीक होने तक ही रहना चाहता था। उसी समय महाराजा भी उधर आ निकला तब चारण उसके पास गए और सूरजमल को ठहराने की लिखित अनुमति प्राप्त की। तब वह कुवर बहुत दिनों तक उन चारणो के गाव मे रहा और अन्त मे अपने परिवार को वहीं छोड़कर अहमदनगर चला गया। वहा के राजा करणसिंह ने उसको अपनी नौकरी में रख लिया और उसको एक गाव व नक्कारों की जोड़ी बख्शीश मे दी।

सन् 1833 ई० मे महाराजा गम्भीरसिंह देवलोक हुआ। उसके शव के साथ चौदह रानिया सती हुईं परन्तु, उत्तराधिकारी महाराजा जवानसिंह की माता अपने शिशु के पालनपोषण के लिए जीवित रही।

छप्पय×

पड़े नक्षत्र भुव पंथ, धड़ाके कप हुइ धर;
सुरभी निसासा होय, शब्द कठिण विललात कर;
इन्द्र अपां तुछ अब, अपां अनमंत उपलवह;
तेज खंड भये तंड, मंड, घुमंड मारुतह;

× बहुत से नक्षत्र पृथ्वी-पथ पर गिर पड़े, धड़ाके की आवाज हुई, धरा घूमने लगी; गायें निःश्वास डालने लगीं और कठिनता से भयभीत आवाज करके रम्भ लगी; इन्द्र ने जल तो थोड़ा बरसाया, परन्तु अनगिनती ओले साथ मे गिराये; मार्तण्ड का तेज (बादलों से ढंक जाने के कारण) खड (मद)

अस उद्‌घट श्रोसगुन आगमन, हा भावी वल होय हो
तरा माट हुवो श्रोत्तम वपू, भूप भाणकुल भाण भो ॥1॥[5]

उमड-घुमडने वाले बादलो से मंडित हो गया, तेज हवा चलने लगी; ऐसे अघटित अपशकुनों के आगमन से बलात् यह भान होने लगा कि कोई अनिष्ट होने वाला है (भावी प्रबल हो गया है); उसका उत्तम शरीर तुच्छ मिट्टी में मिल गया और सूर्यवशी राजा सूर्य हो गया (सूर्यलोक को चला गया) ॥ 1 ॥

---

6 नक्षत्र टूटने व भूकम्प आदि का जो वर्णन किया गया है वह वास्तव में सत्य है। 1833 ई० का वर्ष दुष्काल का वर्ष तो नहीं था परन्तु उस समय वस्तुओं की असाधारण तगी आ गई थी। बम्बई सरकार ने अपने 10 दिसम्बर के पत्र में सचालक मण्डल (Board of Directors) को लिखा है—

"पालनपुर के राजनीतिक अधीक्षक (Political Agent) ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा है कि खरीफ की फसल बिल्कुल नष्ट हो गई है जिसके कारण अनाज के भाव सन् 1812–13 मे पडे अकाल की अपेक्षा भी कहीं ज्यादा बढ़ गए हैं। अनाज की आमद में सहूलियत पैदा करने की नजर से और जहां तक हो सके वहां तक गरीब तबके के लोगो को राहत पहुंचाने की गरज से पालनपुर के दीवान ने, लेफिटनेन्ट प्रेसकॉट की सलाह मान कर, आने वाले अनाज पर चुगी लेना बिल्कुल बन्द कर दिया है; और खुशकिस्मती से इस इलाके में सिंचाई के लिए बहुत बडे हिस्से मे सहूलियत होने की वजह से किसानों को कुएं खोदने के लिए हर तरह की इमदाद दी जा रही है और इस वजह से मौजूदा कमी को किसी हद तक दूर किया जा सकेगा। फिर भी, ऐसा अन्देशा है कि गुजरात भर मे फैले हुए कोली और दूसरे उपद्रवी लोग, फसलें खराब हो जाने व कीमतें बढ़ जाने से बेकार और नाउम्मीद होकर, गिरोह बनाकर रियाया के अमन मे दखल व धमकियां दे सकते हैं; इसको रोकने के लिए सभी वाजिब तरीके और बचाव के पहलू अपना लिए गए हैं।

16 अगस्त के लेख मे मिस्टर विलोबाई (Willoughby) कहता है कि उस समय प्रायः समस्त काठियावाड़ मे बिल्कुल वर्षा नहीं हुई थी और ऐसी आशा भी नहीं थी कि ठीक समय पर मेह बरस जायगा और फसलो की रक्षा हो सकेगी। इसका नतीजा यह हुआ कि अनाज और चारे की बहुत कमी आ गई और ब्रिटिश व गायकवाड़ सरकारो के लिए लगान में भारी छूट करना जरूरी हो गया। अनाज की कीमत तिगुनी हो गई और दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी। चारे की तो खास तौर से कमी आ गई थी और रोजाना बहुत से
→

भूपत पड़े गम्भीर, अभग हिन्दुवाण उजागर;
सुणी सबे रणवास, हरखी सतिया कहे हर हर;
तके वंश तारवा, सधा त्रहू पखा चढावा,
साथ करा सामरो, किरत नव खंड कहावां;
इम धार बात मन मे अडग, परम ज्योत पिछानिया;
पति तणी अबे छेटी पड़े, मुज राजधर्म केहो राणिया ।। 2 ।।*

ढोर मारे जा रहे थे । मि विलौबाँई ने आगे लिखा है, "मेरी राय मे कर देने वालों को करीब-करीब आधी छूट देनी पड़ेगी ।"

"मुजके वायव्य और नैऋ्‌त्य कोण वाले परगनो से तो बहुत ही खराब हालत की रिपोर्ट आई जिस पर रेजीडेण्ट को दौरा करके अपनी आखो से हालात देखने को मजबूर होना पड़ा । ऐसा लगता है कि इन रिपोर्टों मे अनावश्यक रूप से बढा-चढ़ाकर विवरण नही दिया गया था । बहुत से स्थानो पर इस साल वर्षा बिल्कुल नही हुई और गए साल भी बहुत थोड़ी ही हुई थी इसलिए चारा तो बिल्कुल नही रहा और नित्य बडी सख्या मे भूखों मरते जानवर नष्ट होने लगे । इस इलाके मे पहले जब कभी अकाल पडता था तो लोग गुजरात, काठियावाड और सिन्ध में अपने परिवार और ढोरो के टोले लेकर चले जाया करते थे परन्तु इस बार तो इन प्रान्तो में भी सहारा नही है । दरबार ने गरीबो और मजदूरो का दुःख दूर करने के लिए फैसला किया है कि शहर के पास तालाब खोदने वाले प्रत्येक व्यक्ति को एक सेर अनाज रोजाना दिया जायगा और दीवान ने इसमे एक पाव रोजाना अपने खर्चे से देना और जोड़ दिया है ।"

इस रिपोर्ट के बाद थोडी सी बारिश हुई परन्तु इससे उत्पन्न हुई आशा भी जल्दी ही नष्ट हो गई और फसल का भविष्य अधिक अन्धकारपूर्ण हो गया क्योंकि टिड्डियो के दल के दल आकर देश मे छा गए और उन्होंने सभी तरह की फसलो को नष्ट कर दिया । इस आघात से लोग घोर निराशा मे डूब गए और अगली फसल बोने के लिए भी उत्साहित नही हो रहे है; ऐसा विश्वास है कि दरबार. सामान्य रूप से, चौथे हिस्से का ही राजस्व वसूल कर सकेंगे ।

* गम्भीरसिंह राजा का देहान्त हो गया, जिसका तेज हिन्दुओ मे अभग्न (असंग) था; जब पूरे रणवास मे यह खबर फैली तो सतियो ने हर्षित होकर हर! हर ! कहा; वे बोली, अपने वश का विस्तार करने के लिए, अपने पिता, माता और पति इन तीनो पक्षों को ऊँचा बढ़ाने के लिए तथा नवो खण्डो मे कीर्ति विस्तार करने के लिए हम स्वामी का साथ करेंगी; इस प्रकार मन मे निश्चित करके उन्होने परम ज्योति को साक्षी करके पहचान लिया और कहा "यदि पति मे और हम मे अन्तर (दूरी) पड गया तो हमारा (रानियो का) राजधर्म कहा रहा"? ।।2 ।। →

अस उद्‌धट ओसगुन आगमन, हा भावी बल होय हो
तरा माट हुवो ओत्तम वपू, भूप भाणकुल भाण भो ॥1॥[6]

उमड-घुमडने वाले बादलों से मंडित हो गया, तेज हवा चलने लगी; ऐसे अघटित अपशकुनो के आगमन से बलात् यह भान होने लगा कि कोई अनिष्ट होने वाला है (भावी प्रबल हो गया है); उसका उत्तम शरीर तुच्छ मिट्टी में मिल गया और सूर्यवंशी राजा सूर्य हो गया (सूर्यलोक को चला गया) ॥ 1 ॥

6 नक्षत्र टूटने व भूकम्प आदि का जो वर्णन किया गया है वह वास्तव में सत्य है। 1833 ई० का वर्ष दुष्काल का वर्ष तो नहीं था परन्तु उस समय वस्तुओं की असाधारण तंगी आ गई थी। बम्बई सरकार ने अपने 10 दिसम्बर के पत्र में संचालक मण्डल (Board of Directors) को लिखा है—

"पालनपुर के राजनीतिक अधीक्षक (Political Agent) ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि खरीफ की फसल बिल्कुल नष्ट हो गई है जिसके कारण अनाज के भाव सन् 1812–13 में पड़े अकाल की अपेक्षा भी कहीं ज्यादा बढ गए हैं। अनाज की आमद में सहूलियत पैदा करने की नजर से और जहां तक हो सके वहा तक गरीब तबके के लोगो को राहत पहुंचाने की गरज से पालनपुर के दीवान ने, लेफ्टिनेन्ट प्रेसकॉट की सलाह मान कर, आने वाले अनाज पर चुंगी लेना बिल्कुल बन्द कर दिया है; और खुशकिस्मती से इस इलाके में सिंचाई के लिए बहुत बडे हिस्से में सहूलियत होने की वजह से किसानों को कुएं खोदने के लिए हर तरह की इमदाद दी जा रही है और इस वजह से मौजूदा कमी को किसी हद तक दूर किया जा सकेगा। फिर भी, ऐसा अन्देशा है कि गुजरात भर में फैले हुए कोली और दूसरे उपद्रवी लोग, फसलें खराब हो जाने व कीमतें बढ जाने से बेकार और नाउम्मीद होकर, गिरोह बनाकर रियाया के अमन में दखल व धमकियां दे सकते है; इसको रोकने के लिए सभी वाजिब तरीके और बचाव के पहलू अपना लिए गए हैं।

16 अगस्त के लेख में मिस्टर विलोबॉई (Willoughby) कहता है कि उस समय प्रायः समस्त काठियावाड़ में बिल्कुल वर्षा नहीं हुई थी और ऐसी आशा भी नहीं थी कि ठीक समय पर मेह बरस जायगा और फसलों की रक्षा हो सकेगी। इसका नतीजा यह हुआ कि अनाज और चारे की बहुत कमी आ गई और ब्रिटिश व गायकवाड़ सरकारों के लिए लगान में भारी छूट करना जरूरी हो गया। अनाज की कीमत तिगुनी हो गई और दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी। चारे की तो खास तौर से कमी आ गई थी और रोजाना बहुत से →

भूपत पड़े गम्भीर, ग्रभग हिन्दुवाण उजागर;
सुणी सवे रणवास, हरषी सतियां कहे हर हर;
तके वश तारवा, सधा ग्रहू पखां चढावा;
साथ करां सामरो, किरत नव खड कहावां;
इम धार बात मन मे ग्रडग, परम ज्योत पिछानिया;
पति तणी ग्रबे छेटी पड़े, मुज राजधर्म केहो राणिया ।। 2 ।।*

ढोर मारे जा रहे थे । मि विलौबाँई ने ग्रागे लिखा है, "मेरी राय मे कर देने वालो को करीब-करीब ग्राधी छूट देनी पड़ेगी ।"

"मुजके वायव्य ग्रौर नैऋत्य कोण वाले परगनो से तो बहुत ही खराब हालत की रिपोर्ट ग्राई जिस पर रेजीडेण्ट को दौरा करके ग्रपनी ग्रांखो से हालात देखने को मजबूर होना पड़ा । ऐसा लगता है कि इन रिपोर्टों में ग्रनावश्यक रूप से बढा-चढाकर विवरण नही दिया गया था । बहुत से स्थानो पर इस साल वर्षा बिल्कुल नही हुई ग्रौर गए साल भी बहुत थोडी ही हुई थी इसलिए चारा तो बिल्कुल नही रहा ग्रौर नित्य बडी सख्या में भूखो मरते जानवर नष्ट होने लगे । इस इलाके मे पहले जब कभी ग्रकाल पडता था तो लोग गुजरात, काठियावाड ग्रौर सिन्ध में ग्रपने परिवार ग्रौर ढोरों के टोले लेकर चले जाया करते थे परन्तु इस बार तो इन प्रान्तो मे भी सहारा नही है । दरबार ने गरीबो ग्रौर मजदूरो का दुःख दूर करने के लिए फैसला किया है कि शहर के पास तालाब खोदने वाले प्रत्येक व्यक्ति को एक सेर ग्रनाज रोजाना दिया जायगा ग्रौर दीवान ने इसमे एक पाव रोजाना ग्रपने खर्चे से देना ग्रौर जोड दिया है ।"

इस रिपोर्ट के बाद थोड़ी सी बारिश हुई परन्तु इससे उत्पन्न हुई ग्राशा भी जल्दी ही नष्ट हो गई ग्रौर फसल का भविष्य ग्रधिक ग्रन्धकारपूर्ण हो गया क्योंकि टिड्डियों के दल के दल ग्राकर देश में छा गए ग्रौर उन्होंने सभी तरह की फसलों को नष्ट कर दिया । इस ग्राघात से लोग घोर निराशा मे डूब गए ग्रौर ग्रगली फसल बोने के लिए भी उत्साहित नहीं हो रहे हैं; ऐसा विश्वास है कि दरबार, सामान्य रूप से, चौथे हिस्से का ही राजस्व वसूल कर सकेंगे ।

* गम्भीरसिंह राजा का देहान्त हो गया, जिसका तेज हिन्दुग्रो मे ग्रभग्न (ग्रभंग) था; जब पूरे रणवास मे यह खबर फैली तो सतियो ने हर्षित होकर हर! हर ! कहा; वे बोली, ग्रपने वश का विस्तार करने के लिए, ग्रपने पिता, माता ग्रौर पति इन तीनों पक्षों को ऊंचा बढ़ाने के लिए तथा नवो खण्डो मे कीर्ति विस्तार करने के लिए हम स्वामी का साथ करेंगी; इस प्रकार मन मे निश्चित करके उन्होने परम ज्योति को साक्षी करके पहचान लिया ग्रौर कहा "यदि पति मे ग्रौर हम मे ग्रन्तर (दूरी) पड़ गया तो हमारा (रानियों का) राजधर्म कहा रहा"? ।।2 ।। →

नेह नाथ नारियां, केक मन हरप करे वे;
नेह नाथ नारियां, घंख चित्र उमंग घरे वे;
नेह नाथ नारिया, वडी ठकरात सजावे,
नेह नाथ नारियां मीत मरदग गवावे;
तन भवान तणी हम कहे त्रिया, सुकुल वाट किय सारिया।
नाथ रे साथ बलवे नहि, नेह नाव कि नारियां ॥ 3 ॥

अण समये एटला, मरम-छद वचन उचारे;
सतिया कर सकल्प, अग्निस्नान हि उर धारे;
प्रथम दौलतकुवरी, भजे चढ़ी भटियाणी;
जमुकुवरी चहुंवाणी, जगत-माता सी जांणी;
सत अधिक सती सीसोदणी, कुवरी अजब अधिक चढती कला;
सती सग करत महाराज रो, वध्यो सुजस चहुवे वता ॥ 4 ॥

कुंवरी लाल आहडी, सति सुता जनक सरीखी;
वखतकु वरी चावडी, प्रकट सुरसुरी परीखी;
चंदकु वरी चहुवाणी, अखा ज्यम भवा अनोपम;
पारवती ज्यम प्रकट, कुंवरी वदन सत रे क्रम;

(पति के) स्नेह के कारण (याद करके) कितनी ही स्त्रियां हर्षित हो रही हैं; (पति के स्नेह) के कारण कितनी ही स्त्रियां अपने चित्त मे उमंगें भर रही हैं स्नेह के कारण कितनी ही नारियां (अन्तिम) जलूस को ठकुराई से सजा रही हैं, और स्नेह के नाम पर कितनी ही नारिया गीत गायन और मृदंग वादन की व्यवस्था कर रही है; तब भवान के पुत्र की सभी पत्नियों ने सत्कुल का मार्ग ग्रहण किया और कहा "यदि पति के साथ नही जली तो स्त्रियों का पति के प्रति क्या प्रेम हुआ ?" ॥ 3 ॥

उस समय उन्होने इस तरह के बहुत से मर्म को छेदने वाले वचनो का उच्चारण किया; सतियो ने दृढ संकल्प करके अग्नि-स्नान करने की बात मन मे धारण की, सर्वप्रथम दौलतकुवरी भटियाणी (चिता पर) चढ़ी; जसकुंवरी चहुवाणी जगन्माता दुर्गा-सी जान पडी; अजबकुंवरी सीसोदणी के अधिक सत चढा, वह बढ़ती हुई कला के समान थी; जब सतियां महाराज का साथ दे रही थी तो उनका सुयश चारों ओर बढ़ता जा रहा था ॥ 4 ॥

पासवान उभय नाथी, वना खुशी उमंग चित खलभली।
गढपति सार गंभीर रे, मेहलां वलण कज हलमली ॥ 5 ॥
उमेदां उमंगी, हुई सत करण सजूरण;
जमुबाई धा-वहिनी, जके तन उठी जलण;
मु-मुरतां सघ जान, प्राप सत काल उमगे;
जेठी, दोली जोड, लार पति के ऊ ए लगे;
भणवार तीम कथ ग्रोचरे, कलजुग लता न कामरी।
नतिपुरे जाय वसशा सही सेवा करशा सामरी ॥ 6 ॥
मरदाना के मांह, तवे कृत ग्रडग तणी तक;
पिछे सदन निज पहूंची, करे स्नान गगोदक;
ग्रधिक पोसाका ग्रंग, जरी गरकश (जरकश) जाणे जण;
सन भूसण मोतिया, पहीरी मज माती ग्रापोपण;
वरणाव करे तण ही वकन, धर्म सुभारथ उर धरी।
भवानरा नद साथे मेली, सती बलण कज सचरी ॥ 7 ॥

लालकुंवरी ग्राहड़ी जनकसुता सीता जैसी सती थी; बखतकुंग्ररी चावडी गगा के समान थी; चन्दकुंवरी चहुंग्राणी का हम ग्रनुपम भवपत्नी भवानी के समान बखान करते है; इसी सत् के क्रम मे वदनकुंवरी पार्वती की तरह प्रकट हुई; नाथी ग्रौर वना नाम की दोनो पासवानों (उप-पत्नियों) के भी चित्त मे खुशी ग्रौर उमग के कारण खलबली मच गई; इस प्रकार गढपति गम्भीरसिह के साथ जलने के लिए महिलाएं हिलमिल कर तैयार हुईं ॥ 5 ॥

उमेदा नाम की खवासिन उमग मे भर कर सती होने के लिए तैयार हुई; जमुबाई धाय-बहन के शरीर में भी जलन (ग्रग्नि) उठी; सुमुहूर्त जानकर सती होने को उमंग उनमे उमगी; जेठी ग्रौर दौली नाम की दोनो ही दासियां ग्रपने स्वामी का ग्रनुसरण करने को तत्पर हुई; उस समय वे स्त्रिया कह रही थी "यह कलियुग की बेल (लता) ग्रब काम की नही रही, हम तो सतियो के पुर मे जाकर बसेंगी ग्रौर स्वामी की सेवा करेंगी ॥ 6 ॥

वे मरदाने (पुरुषों के रहने के महलों) में बहुत देर तक इस तरह बोलती रही, फिर ग्रपने-ग्रपने सदन (रावले) मे जाकर उन्होंने गगाजल से स्नान किया; शरीर पर खूब (ग्रच्छी-ग्रच्छी) पोशाकें धारण की, वे पोशाकें जरी ग्रौर जरकश की थी; मोतियों के ग्राभूषण शरीर पर सजाकर वे ग्रपने ग्राप मे मस्त हो गई; वे उस समय ग्रपना वणाव (श्रृंगार) करके सुन्दर भारतीय धर्म को हृदय में धारण करती थी; भवान के पुत्र के साथ भली सतियां जलने को संचार करने लगी (ग्रागे बढी) ॥ 7 ॥

नेऊवानुं नत वर्ष, सवत वधते एक सत्तर;
व्रपा रितु, वरण, व्रपा, भया सम गत भासकर;
श्रावरण दिन पख श्याम, सोम अगीयारस जाणो;
पतंग चडते पड़ी पंदर प्रान गभीर प्रयाणो;
सो रात दिवस रनिवास रह, सतियां करत चलामणो ।
निसि होत श्रमो नृप राजरो, हुवो प्रभात हलामणो ।। 8 ।।

गाज नाद घणकार, तांत भरणकारत वामा;
त्रहक त्रहक त्रंबालु, डहक करताल दमामा;
श्रमंगल मंगल श्रसो, तसो तरण घडी व्रतायो;
जरण बिनितारो जूथ, सुपुह जातरा सिधायो;
सो गभीर नृप सतियां सहित, हा-हसत मुख हुँडली
ले चल्यो श्रस्त पामरण कजे, मयक उडगण मंडली ।। 9 ।।

हा-हसती हिंडती, श्राणंद करती उकसती;
पग पग जश पावती, कर्म श्रश्वमेघ करती;
दाण पुण देयती, नेह तोड़ती पुरानर;
ध्यान स्वामि धारती, पिंड मानती तृणापरि;

सत्रह से एक अधिक श्रौर नव्वे सहित (श्रर्थात् श्रट्ठारह सौ नव्वे (1890) संवत् में, वर्षा रहित वर्षा ऋतु मे, जब भास्कर की गति समान हो गई थी, श्रावण, कृष्ण पक्ष, सोमवार एकादशी के दिन,' पन्द्रह घडी दिन चढे, गम्भीरसिंह के प्राणों ने प्रयाण किया; उस दिन श्रौर रात भर वह (उसका शव) रनिवास में रहा, जहां सतिया चलामरण ।(महाप्रस्थान) की तैयारियां करती रही; रात्रि बीत जाने पर प्रभात समय में राजा का 'चलावा' हुश्रा ।। 8 ।।

घरणकार नाद गूंजने लगा, तन्तु वाद्यों (तांत के बाजों) को स्त्रिया झनकारने लगी, त्रबाल (तांवे के बने वाद्यों) छोटे नक्कारो से त्रहक-त्रहक शब्द होने लगा, करताल श्रौर दमामे भी डहकने (बजने) लगे; उस श्रमगल की घडी मे भी ऐसा मगल का सा बरताव (समा) हुश्रा मानों श्रपने पुरुष (राजा) के साथ स्त्रियो का झुण्ड यात्रा के लिए निकला हो। वह गम्भीर राजा श्रपनी सतियों के साथ इस तरह चला जैसे हाथी (श्रपनी) हथिनियों को श्रागे करके चल रहा हो श्रथवा श्रस्तोन्मुख चन्द्रमा तारिकाश्रों की मण्डली के साथ प्रस्थान कर रहा हो ।। 9 ।।

हसती हुई, झूमती हुई श्रौर श्रानन्द से उत्कण्ठित होती हुई; पद-पद पर श्रश्वमेघ यज्ञ से प्राप्त होने वाले यश को प्राप्त करती हुई; दान-पुण्य करती हुई,

फुण विरद एहि सतियां कहु, पण में एहड़ी पारखी ।
स्त्रियां नाम अबला अवर, आ सबला सूरा सारखी ॥ 10 ॥

अंत थान ऊपरां, आय सतिया अणवारे;
पतंग करी प्रणाम आदि कथ एह उचारे;
हे दिनकर ! हे देव ! सदा तुम सती सहाई;
शुद्ध ईडर सामरो, साम तण भान सदाई;
कर जोड़ अरज वंदन करे, उर पर ध्यांन अनूप रा,
मरडाय शक्ति हाली मसत, भर डरथी रहो ऊपरा ॥ 11 ॥

भूपत धन्य माटियां, पृथवी जश वास प्रमाणा;
सिसोदा धन्य साख, साख धन्य हे चहुवाणां;
धन्य साख चावड़ा, उमर सौभाग्य वड़ाले;
धणी साथ धुव धड़े, पावक तन सती प्रजाले;
के साख साख धन्य धन्य कवीन्द्र, पति धन्य नृप तो परणिया;
. साम रो नांव भवसिधु सें, तारण झोका तरणिया ॥ 12 ॥

पुर (नगर) के लोगो से नेह (मोह) छोड़ती हुई, अपने स्वामी का ही ध्यान करती हुई और शरीरपिंड को तुच्छ समझती हुई, (ऐसी) वे सतिया थी; मैं उनका विरद कहने वाला कौन हू ? (अर्थात् मुझ से उनका यश नही कहा जा सकता) परन्तु, यह परीक्षा मैंने की है कि जिन स्त्रियो का नाम 'अबला' है वे और हैं ये तो सबल शूरवीर के समान हैं ॥ 10 ॥

अन्त मे दाह-स्थान पर आकर सतियो ने सूर्य को प्रणाम करके इस प्रकार प्रार्थना की "हे दिनकर देव ! आप सदा ही सतियो के सहायक हो (हम यही मांगती हैं कि) भांन (भवान) का पुत्र सदा ही शुद्ध रूप से ईडर का स्वामी हो; इस प्रकार वे हाथ जोड़कर वंदना कर रही थी और हृदय में (परमात्मा का) अनुपम ध्यान धरे हुए थीं; बडी मरोड के साथ मस्त होकर शक्ति के समान वे चली और (समस्त) भय से ऊपर रही ॥ 11 ॥

भाटी राजा को धन्य है जिसका यश पृथ्वी पर प्रामाणिक रूप मे निवास करता है; सीसोदियों की शाखा धन्य है, चहुंवाण शाखा भी धन्यवाद की पात्र है; चावडा शाखा धन्य है जिसका ऐश्वर्य और सौभाग्य बड़ा है; (इन शाखाओ की पुत्रिया) (अपने धणी (स्वामी) के साथ सतिया ध्रुव (अविचल) भाव से अपने शरीरों को जला देती हैं; कवीन्द्र इनमे से प्रत्येक शाखा को देता है; वह राजा भी धन्य है जिसके साथ इनका परिणय हुआ; स्वामी के नाम (यश) को भवसिंधु (संसार समुद्र) की लहरों में तैरा नौका (तरणी) स्वरूप हैं ॥ 12 ॥

मंड वंश मरजाद, मंड ग्रानद ग्रतिय मन;
मड रसन हरि मन्त्र मड वैराग्य साधुजन;
मड कंप कायरां, मंड क्षत्रिय पुरुपातन;
कमध मड थरू कीर्ती करे मड सुजस कर्म;
बड मडी धर्म संसार बिच, साम साथ तन छंडियां।
पतनी गंभीर चिता परे, ए पग मंडे मडिया ॥ 13 ॥

मर्यादा वंश (कुल) के लिए मंडन (भूपण) रूप है; ग्रतीत ग्रानन्द मन का मडन है; हरिमंत्र (का जाप) रसना (जिह्वा) का भूपण है, इसी प्रकार वैराग्य साधुजनों का मंडन है; कंप (कंप कंपाना) कायरों को शोभा देता है ग्रौर पुरुपातन (पौरुष) क्षत्रिय का भूपण है; कमधजों का भूपण स्थिर कीर्ति है ग्रौर कीर्ति का मण्डन सुयश-सम्पादक कर्म होते हैं; जिन स्त्रियो ने ग्रपने स्वामी के साथ तनुत्याग किया है उन्होंने ससार के बीच धर्म को मंडित (सुशोभित) कर दिया है; गम्भीरसिंह की चिता पर जब उसकी पत्नियों ने पग मांडे (ग्रारोहण किया) तो उसके साथ ही ये सब सुशोभित हो गए ॥ 13 ॥*

---

* ग्रक्टूबर 8, 1833 के दिन बम्बई सरकार की तरफ से सचालक मडल (Court of Directors) के नाम जो डाक गई उसमे महाराजा गम्भीरसिंह के मरण समय का वृतान्त इस प्रकार लिखा है—

"ईडर के राजा गम्भीरसिंह की मृत्यु 15 ग्रगस्त के दिन हुई। इस ग्रवसर पर गुजरात के राजनीतिक ग्रायुक्त (Political Commissioner) ने ग्रपने प्रथम सहायक मिस्टर ग्रर्स्किन (Mr. Erskin) को ईडर भेजा। इसका ग्रभिप्राय यह था कि उस मौके पर कोई गडवड़ी हो तो वह उसको रोक दे ग्रौर वहा के ठाकुरो ग्रादि को यह समझा दे कि ग्रग्रेज सरकार का विचार यह था कि बालक राजा को गद्दी पर बिठा दिया जाय ग्रौर मांजी (राजमाता) राजकाज चलाती रहे। राजा के ग्रग्नि-संस्कार के समय जो खेद एवं करुणा-जनक दृश्य उपस्थित हुग्रा उससे मंडल (कोर्ट) को बड़े ग्रफसोस के साथ ग्रवगत कराते हैं—

"राजा कुछ दिन बेहोश पड़ा रहा ग्रौर फिर उसकी मृत्यु हो गई। यह बात बालक राजा की माता को उसके ग्रग्निदाह होने के कुछ समय बाद तक मालूम नही होने दी गई। परन्तु, ग्रन्य सात रानियां राजा के साथ जलने को तैयार हो

गई। इस प्रकार 13 अगस्त को प्रातःकाल वे सत चढी हुई उन्मादिनी स्त्रियां, राजा की दो अन्य-जातीय रखैलें, एक हजूरण (प्रधान सेविका) और चार दासियां समस्त ईडर की बस्ती की आंखों के आगे और सभी कामदारों के समक्ष चिता में जलकर राख हो गईं। इस रोमांचकारी घटना को सभी कामदारों का आश्रय प्राप्त था; राजा का कोई भी कुटुम्बी जन ऐसा नहीं था जिसने इसको रोकने का प्रयत्न किया हो और न ईडर में कोई ऐसा सत्ताधारी ही था जो इस विनाशकारी कर्म का निवारण करता। मिस्टर अर्स्किन लिखता है कि एक रानी को तो कुछ मास का गर्भ था और एक दूसरी रानी का तो राजा के साथ सहवास ही नहीं हुआ था; उसने जलने के लिए नामर्जी (असहमति) जाहिर की थी। अवस्था में सबसे बड़ी और पदवी में दूसरे स्थान पर जो रानी थी, उसकी उम्र साठ वर्ष थी; सब से छोटी, जिसके विवाह को केवल उन्नीस महीने ही हुए थे, छब्बीस वर्ष की थी। लोगों के मन में धर्म की भ्रान्त धारणा होते हुए भी उन्होंने इस रोमांचकारी कृत्य को सामान्यतः धिक्कारने योग्य ही समझा था; आम लोगों का यह विचार था कि यदि उचित उपाय काम में लाए जाते तो तीन प्राणियों से अधिक का बलिदान नहीं होता। एक दर्शक ने कहा कि जब चिता प्रज्वलित हुई तो सबसे बड़ी रानी ने कारभारियों को बुलाकर कहा, "मैंने तो सती होने का निश्चय किया ही था और तुम यदि मुझे समझाने आते तो मैं मानने वाली भी नहीं थी, फिर भी किसी की भी ओर से कोई दयाभाव प्रकट नहीं किया गया, यह आश्चर्य की बात है" अन्त में, उसने कहा, "अपने राजा के सम्पूर्ण कुटुम्ब का नाश करा कर जो लूट मचाने की आशा रखते हो तो जाओ, उसको भोगो।" कारभारियों ने राजा के एकमात्र पुत्र की माता रानी को ही बचाने का लोभ इस लिए किया है कि यदि उसका भी नाश हो जाता तो उनके मनसूबों पर आशंका की जा सकती थी।"



प्रकरण पन्द्रहवाँ

महीकांठा का प्रबन्ध

सन् 1828 ई मे महाराजा गम्भीरसिंह ने रूपाल के ठाकुर फतेहसिंह के कीडी नामक गांव को लूट लिया। इस पर फतेहसिंह ने पालनपुर स्थित ब्रिटिश प्रतिनिधि मेजर माइल्स[1] को फरियाद की, जो उस समय अस्थायी रूप से महीकांठा प्रात की भी देखभाल करता था। कुछ समय बाद उस अधिकारी ने निर्णय दिया कि गांव लूट लेने के कारण फतेहसिंह को महाराजा हर्जाने की रकम दे। उसके द्वारा कायम की हुई रकम इतनी भारी थी कि ईडर मे कहावत चल पडी "कीडी (चीटी) तो कुंजर भई।" अस्तु, महाराजा ने वह रकम मरणपर्यन्त नही चुकाई और रूपाल के ठाकुर ने इरादा किया कि या तो बारहवाट हो जाय या ईडर के किसी ऐसे बडे आदमी को पकड़ ले जाय जिसकी 'फिरौती' मे रकम वसूल हो सके। उन्ही दिनों ईडर के कारभारियो मे एक खेमचन्द था जिसके भाई का नाम अखैचन्द था; वह व्यापारी था। एक बार अखैचन्द प्रतापगढ से ईडर लौटते हुए रात के समय रूपाल ठहरा; उसके साथ बहुमूल्य सामान, अफीम और अन्य व्यापार की वस्तुएं थी, जिनकी सुरक्षा के लिए दस बन्दूकधारी मनुष्य भी थे। रूपाल के ठाकुर ने उस व्यापारी की बहुत अच्छी आवभगत की और दूसरे दिन सुबह माल तो रक्षको के साथ रवाना कर दिया तथा अखैचन्द को बहुत मनुहार करके भोजन के लिए रोक लिया और उसे सुरक्षित घर तक पहुचा देने का आश्वासन भी दिया। जीमण के बाद ठाकुर सुरक्षा के बहाने से दस घुड़सवार साथ लेकर सेठ को पहुचाने के लिए रवाना हुआ परन्तु, एक ऐसे स्थान पर पहुचते ही जो उसके मतलब के लिए अनुकूल था ठाकुर ने अपने मेहमान को बन्दी बना लिया और उसको जंगल मे ले गया। सेठ ने अपनी मुक्ति के लिए ठाकुर को मुहमागा धन देना स्वीकार किया, परन्तु फतेहसिंह ने कहा, "मुझे तुम्हारा धन नही चाहिए, केवल खेमचन्द के नाम एक चिट्ठी लिख दो कि मुझे कीड़ी के मुआवजे की रकम चुका दे या फिर कबूल कर ले कि जब तक रकम न चुक जाय रूपाल से कोई कर वसूल नही किया जाय।" सेठ ने ठाकुर के कहे अनुसार खेमचन्द को पत्र लिख दिया, परन्तु उसने उत्तर दिया "मैं इस मामले में कुछ

[1] ऐसा मालूम होता है कि उस समय, मेजर माइल्स नही, लेफ्टिनेन्ट प्रेस्कॉट पालनपुर का एजेन्ट था।

नहीं कर सकता क्यों कि ईडर रियासत[2] ब्रिटिश सरकार की जब्ती मे है। इस पर रूपाल का ठाकुर भवेचन्द को बहुत तंग करने लगा; वह कई दिनों तक उसको खाना नही देता, पीटता और उसके कान मे बारूद रखकर सुलगा देता। अब बेचारे बनिए ने अपने पास से दोगुनी रकम देने के लिए कहा, परन्तु फतेहसिंह ने उत्तर दिया,

---

2. बम्बई सरकार ने अपनी 15 सितम्बर, 1834 ई० के डिस्पैच मे कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के नाम इस प्रकार लिखा है—

"गम्भीरसिंह की मृत्यु के बाद ईडर राज्य की सत्ता छाजूराम नामक एक ओछे चालचलन वाले आदमी ने हथिया ली। वह पहले राजा के बड़े पुत्र उम्मेदसिंह की सेवा में रहता था और महाराजकुमार से एक बड़ी रकम मार लेने मे सफल हुआ था। लालजी साहब की मृत्यु के बाद गम्भीरसिंह ने उसको अपना दीवान बना लिया और कुछ समय तक वह नाममात्र के लिए उसका प्रधान मन्त्री भी रहा। बाद मे, गम्भीरसिंह अपना काम आप ही सम्हालने लगा और मृत्यु के कुछ समय पूर्व तो उसका छाजूराम पर से बिल्कुल विश्वास उठ गया था, यद्यपि राजा की मृत्यु के समय तक तो वह दीवान ही कहलाता था परन्तु राजकाज के विषय मे न उसमे सलाह ही ली जाती थी और न कोई काम ही उसके सुपुर्द था। रानी के भाई पीयोजी के जरिए वह उसका कृपापात्र बन गया था और मूंडेटी का ठाकुर जालिमसिंह तो शुरू से ही उसके दुष्कर्मों में सहायक था; उसी की मदद से वह अपना सारा कारोबार चलाता था तथा उसी आधार पर उसने वह लूट भी चालू रखी जो उसने सतियों के अवसर पर चालू की थी और जिसके विषय में हम अपने 8 अक्टूबर, 1833 ई० के पत्र मे रिपोर्ट कर चुके हैं। मानव जीवन के उस निर्दय बलिदान को पूरा कराने मे सर्वोपरि उसी का हाथ था और उसके इस हृदयहीन कृत्य के फलस्वरूप एवं प्रजापीड़न के अन्य अनेक दुष्कार्यों के कारण वह समस्त ईडरवाडा मे घृणा का पात्र बन गया। इससे स्पष्ट प्रतीत होता था कि इस प्रबन्ध के कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा संरक्षित बालक महाराजा की सम्पत्ति नष्ट हो जाती और प्रजा से वसूल किया हुआ राजस्व भी इस तरह लूट जाता कि सरकार के लिए गायकवाड़ दरबार से किए हुए अहदनामें का पालन करना, असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य हो जाता; इसलिए आयुक्त (Politioal Commissioner) के अनुरोध पर हमने यह स्वीकृति दे दी कि बालक महाराज की नाबालिगी मे निम्नलिखित व्यक्तियों की एक प्रतिनिधि सभा कायम करदी जावे— नी कुकड़िया का दुर्जनसिंह (प्रधान), हमीर्दासिंह (सुवर का) जो स्वर्गीय का चचेरा भाई है, और मूडेटी के ठाकुर जालिमसिंह का सेठिया।"

"इससे कोई फायदा नहीं, मुझे यह रुपया रखने कौन देगा"? अन्त में, खेमचन्द ने मूंडेटी से सूरजमल को बुलाया और उसको अपने भाई की रिहाई कराने के लिए बडी रकम देने को कहा और साथ ही उसके लिए हुण्डी भी लिख दी।

अब सूरजमल, अपने तत्कालीन निवास-स्थान, कुवावा से रूपाल के ठाकुर की खबर लेने निकला। बावडी गाव के भीलों और फतेहसिंह में झगडा रहता था क्योंकि वह रहबर राजपूत था और रहबरो ने पहले बहुत से भीलों को मार दिया था। इस लिए सूरजमल ने उन भीलो को ठाकुर की तलाश करने को नियुक्त किया। वे लोग दूसरी घुमक्कड जाति के वेश मे निकले और अन्त में उन्होंने पता लगा लिया कि फतेहसिंह कहा था। यह सूचना मिलने पर सूरजमल ने चुपचाप सिरबंधिये एकत्रित करना शुरू कर दिया; उसने दो सौ सिपाही तो अहमदाबाद और मोडासा में रखे और दो सौ का जमाव टीटोई मे किया। अपने जिलेदारों के सवारों के आने तक वह कुवावा मे ही रहा और फिर बन्दूकचियो को साथ लेकर भीलो के पीछे-पीछे उस स्थान की ओर रवाना हुआ जहा रूपाल का ठाकुर छुपा था। जब मूंडेटी की सेना आई तो एक ब्राह्मण, जो अखैचन्द की रसोई बनाता था और एक भील एक ऊँची टेकरी पर खड़े हो कर देखने लगे। सूरजमल के आदमियों ने उसकी तरफ गोली दाग दी जिससे ब्राह्मण का पैर जख्मी हो गया और भील जान से मारा गया। बन्दूक की आवाज सुन कर रूपाल के ठाकुर ने बनिए को एक खड्डे में, उतार दिया और स्वय उसके पास ही कटार निकाल कर खडा हो गया तथा बनिये को कह दिया कि आवाज निकालेगा तो तत्काल मार दिया जायेगा। ठाकुर के पुत्र गोकुलजी ने यही हाल ब्राह्मण का किया। इस प्रकार उसको हुल्ला मचाने से रोक दिया गया सूरजमल के आदमियों ने इधर-उधर बहुत तलाश की, परन्तु जब कोई नहीं मिला तो प्रयत्न छोड़ दिया और रूपाल तथा चांदणी की ओर बढ गए, जहां वे लोग पन्द्रह दिन तक ठहरे रहे।

चादणी से सूरजमल ने खेमचन्द को लिखा कि सिरबंधियों का वेतन चुकाने के लिए रकम भेजे, परन्तु उसने रुपया पेशगी देने से इनकार कर दिया और कहा कि सूरजमल ने उसका काम सुधारने के बदले बिगाड़ दिया। सेना के लोग तनख्वाह के लिए हायतोबा मचाने लगे तो सूरजमल को उन्हें शान्त करने की और कोई तरकीब नही सूझी और वह उन्हें वापस रूपाल की तरफ ले गया और वहा से कुछ मनुष्य व ढोर उठा लाया। ढोरों की कीमत कायम कर के उन्हें सेना में बांट दिया गया और मनुष्यो की फिरौती में प्राप्त रकम भी इसी तरह वितरित कर दी गई, परन्तु, फिर भी उनका पूरा चुकारा न हो सका। तब सूरजमल अपने आदमियों को बोमार ले गया, जो रूपाल ठिकाने का ही गाव था, और वहां पर लूट शुरू कर दी।

रूपाल के ठाकुर ने, कुछ समय पहले, एक व्यापारी से कुछ अफीम लूट कर के एक ब्राह्मण के घर में रख दिया था। सूरजमल को मालूम हुआ तो उसने

ब्राह्मण मे अफीम तलब किया । ब्राह्मण और उसकी स्त्री ने तुरन्त ही 'त्रागा' शुरू कर दिया; उन्होंने अपने शरीरो पर घाव कर लिए और जो कोई उनके घर मे घुसता उसी पर अपने रक्त के छींटे मारने लगे । इस पर राजपूतो ने अपना यह प्रयत्न तो छोड़ दिया परन्तु गाव मे से मवेशी और अन्य सामान ले गए तथा उन्होंने उनको पहले की तरह सेना मे बांट दिया । इसके बाद मूडेटी के ठाकुर ने दो-तीन ईडर के गाव भी लूट लिए क्योंकि वहां के मन्त्री ने उसकी माग पूरी करने से इनकार कर दिया था । फिर, वह मूडेटी के पास 'फारकी' नामक जंगल मे जाकर रहा और वहा से ही ईडर के गांवो से घास, अफीम, तम्बाकू, गन्ना और अन्य आवश्यक वस्तुएं वसूल करने लगा । जब कभी गांव वाले उसकी मांग पूरी करने से इनकार कर देते तो वह उस गाव को लूट लेता; परन्तु, यह सब होते हुए भी सिरबंधियों का वेतन पूरा नही चुकाया जा सका । तब 'फारकी' के जंगल मे ही सिरबंधियों ने अनशन शुरू कर दिया और सूरजमल को भी दो तीन दिन तक कुछ नही खाने पीने दिया तथा उसे धमकी भी दी । इस पर सूरजमल ने उनसे वायदे किये और उनको अपने साथ वडाली जाने को मजबूर किया, वहां उन्होंने एक सरोवर के किनारे डेरा डाला और गांव वालो से जबरन खुराक-खर्च वसूल करने लगे ।

सन् 1835 मे अहमदनगर के राजा कर्णसिंह की मृत्यु हो गई । ब्रिटिश प्रतिनिधि मिस्टर अर्सिकन उस समय राजधानी से कुछ मील दूर बखतापुर मे था । खबर मिलते ही वह रानियों को सती होने से रोकने के लिए अहमदनगर गया । राजा का शव तीन दिन तक पड़ा रहा, उसका पेट चीर कर मसाला भर दिया गया था । तीसरे दिन मिस्टर अर्सिकन के पास कुछ राजपूत सरदार यह समझाने के लिए भेजे गए कि जबरदस्ती से कोई औरतें नही जलाई जावेंगी, जो स्वेच्छा से सती होना चाहेंगी उन्हे ही होने दिया जायगा; यही उनके बाप-दादों से चला आया रिवाज था । मिस्टर अर्सिकन ने सन्देशवाहकों को तो अपने पास रोक लिया और वापस कोई जवाब नही भेजा, इसलिए जो राजपूत नगर मे थे उन्होने आस-पास के गावों से भीलो को बुलाया और सूरजमल को कहला भेजा कि वह अपने सैनिक लेकर आ जावे ताकि वे चुपचाप औरतो को सती हो जाने दें अथवा ब्रिटिश एजेण्ट बाधा उत्पन्न करे तो वह उसको बलपूर्वक रोक ले । सूरजमल समय पर नही आया । भीलो ने चुपके से नगर के दूसरे सिरे पर अंग्रेज ऐजेण्ट के मुकाम से बहुत दूर चिता बनाई; उन्होंने उस पर बहुत सी रूई, घी, नारियल और अन्य ज्वलनशील वस्तुएं रखीं । मिस्टर अर्सिकन ने नगर के सभी दरवाजो पर पहरा बैठा दिया था इसलिए राजपूतो ने एक नया ही द्वार निकाल लिया और आधी-रात को शस्त्रास्त्र से लैस होकर उसी मार्ग से सतियों को बाहर ले गए । तीन रानियो पर सत चढ़ा था; वे क्रमशः
देवड़ा राजवंश, वरसोड़ा के चावड़ा और रणासन के रहबर राजपूतों की
राजपूतों ने मिस्टर अर्सिकन के डेरे पर निगाह रखने के लिए भीलो को

दिया था इसलिए ब्रिटिश एजेण्ट को तभी खबर हुई जब सतियाँ जल गईं और चिता से ऊंची-ऊंची लपटें उठने लगीं; तब उसने इसकी जाच करने को आदमी भेजे। भीलो ने उन पर तीर चलाए और उनका सामना किया। इस पर स्वयं एजेण्ट घोड़े पर सवार होकर दलबल सहित चढ़ा परन्तु उस समय तक खेल खत्म हो चुका था और राजपूत अपने अपने घरों को लौट गए थे। इस प्रसग मे भीलों द्वारा एक ब्रिटिश अफसर मारा गया।[3]

सतियो के दाह के दूसरे दिन सूरजमल अहमदनगर के पडोस में आया और उसने हालात की जानकारी करने के लिए सवारों का एक दस्ता आगे भेजा। उन लोगों ने अहमदनगर आकर, जो कुछ हुआ था वह, सब देखा और लौट कर ठाकुर को सब हाल बताया। तब वह बड़ाली के तालाब पर वापस लौट गया।

मिस्टर अर्स्किन ने सूरजमल को लिखा, 'तुम खरगोश की तरह भागते हो तो मैं शिकारी कुत्ते की तरह तुम्हारा पीछा करूंगा।' इस पर ठाकुर ने अपना परिवार तो पानोरा भेज दिया और स्वयं घूमा की प्रसिद्ध पहाड़ियो मे चला गया, जो घने जंगल से घिरी हुई हैं। ब्रिटिश एजेण्ट के पास जब और अधिक सेना आ गई तो वह ग्यारह गोरे अफसरों को साथ लेकर गांता पर चढा। वहां सूरजमल के दरवाजे पर एक भेड बधी हुई थी। 'अंग्रेजी फौज का एक सवार उनको लेने आया

---

3. वडोदा के रेजीडेण्ट के नाम मि. अर्स्किन का पत्र, ता. 9 फरवरी, 1835 ई. 'डेरा लगभग आठ बजे हटाया गया था और सुबह के ढाई बजे तक बिल्कुल शांति रही; ढाई बजे के करीब हल्ला हुआ कि चिता जल उठी है। हमने पहले जिस स्थान पर डेरा लगाया था उसके और नदी के बीच मे गायकवाड़ के सवारों की छावनी थी; इस नदी के किनारे पर ही चिता बनाई गई थी। आज प्रातः मुझे खबर दी गई कि स्त्रियो का क्रन्दन और कोलाहल इतना तेज था कि जो सोया हुआ था, जाग पडा। उन्होंने (राजपूतों ने) इस हिंसापूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए काफी आदमी साथ रखे थे परन्तु फालतू आदमियों को नहीं; स्त्रियों को किले की टूटी हुई दीवार के रास्ते से घसीट कर जल्दी-जल्दी नदी की ओर ले गए; कर्णसिंह के दोनो पुत्र भी साथ थे। फिर, बड़ी तेजी से उन स्त्रियों को चिता पर चढ़ा दिया गया जो तेल और घी से तरातर हो रही थी; आग लगा दी गई और वह त्रासदायक, कर्म सम्पन्न हो गया। सतियो को रोकने के लिए कोई भी प्रयत्न करने को समय नहीं था और जब मुझे खबर दी गई उस समय खूब ऊंची ऊंची लपटें उठ रही थीं; मैं समझ गया कि सब कुछ समाप्त हो चुका था।

(अंग्रेजी दफ्तर में इससे भी अधिक विवरण प्राप्त होता है—वह इस प्रकरण के अन्त में दी हुई टिप्पणी में पढ़िए।)

सो तुरन्त गोली मार दी गई। और भी बहुत से आदमी मारे गए जिनमें एक गोरा अफसर भी था, परन्तु गांव पर कब्जा नही हो सका। रात को सूरजमल की बुआ, जो पोल के राव की विधवा थी, कुछ भीलो के साथ पानौरा चली गई। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर हमला हुआ परन्तु दोपहर तक भी गांव फतह नही हुआ। घरोई का कोली ठाकुर अंग्रेजों के साथ था; उसका सूरजमल के साथ झगडा था इसलिए उसने गांव में घुसने की परवानगी मागी। अन्त मे, जहा घोड़े बधे हुए थे उधर से वह घुसा और फौजें भी प्रविष्ट हो गई, गांव को उन्होने लूट लिया और फिर जला दिया। कुछ राजपूत मारे गए और कुछ घायल हुए। उनमे रतना राठोड़ भी था जो बहुत से हमलावरो को मार कर काम आया; उसकी तलवार का चिह्न एक वृक्ष पर अब तक गांव वाले दिखाते हैं।

सोरठा

आगे कहता एम, सिर पडियां धड ऊठसे;
नर रतना तैं नेम, सो राख्यो भड़ शेर रा ॥[4]

उस समय सूरजमल कुछ मील दूर घूम्रा की पहाड़ियो में था। जब उसने बन्दूकों की आवाजें और जलते हुए गाव की आग देखी तो जासूस भेज कर खबर मगाई, उन जासूसो को गाव से भागते हुए मनुष्य रास्ते मे मिले और उनसे पूरा वृत्तान्त ज्ञात करके उन लोगो ने लौटकर अपने स्वामी को खबर पहुंचाई। इस पर सूरजमल अपना राजपूत रिसाला व चार सौ बन्दूकची साथ लेकर तुरन्त गोता के लिए रवाना हो गया। उस समय अंग्रेजी सेना गाव के तालाब पर थी; बहुत से घायलों को डोलियों मे लिटा दिया गया था और दूसरे लोग तालाब के पास विश्राम कर रहे थे। सूरजमल ने अपने बन्दूकचियों को आगे घाटी मे भेज दिया, जो गोता से वडाली के मार्ग मे पड़ती है। बाद मे, जब अंग्रेजों की सेना रवाना हुई तो वह स्वय भी अपने सवारो सहित उनके पीछे हो लिया। जब वे लोग इस तरह शिकजे मे आ गए तो झड़प शुरू हुई जिसमे बहुत से मारे गए, और बहुत से घायल हुए; कहते है, उस स्थान पर एक और अंग्रेज अफसर मारा गया था।

सेना किसी तरह वडाली पहुंच गई और वहां से ईडर होती हुई सादड़ा[5] चली गई। सूरजमल घूंम्रा लौट गया और गलोड़ा के एक महाजन को अपने गुजरान

---

4. कहते हैं कि जब योद्धा का सिर उतर जाता है तो उसका धड उठकर युद्ध करता था, हे शेरसिंह के पुत्र रतना! तुमने इस नियम का निर्वाह किया।
5. कॅप्टेन डेलामेन (Captain Delamain) ने ईडर से मिस्टर अर्स्किन के नाम तारीख 22 फरवरी, 1835 ई को जो पत्र लिखा उसमे से गोता सम्बन्धी वृत्तान्त नीचे उद्धृत किया जाता है :—

के लिए पैसे वसूल करने को पकड़ कर पानोरा ले गया। अंग्रेज एजेण्ट बाद में दो तोपें लेकर अहमदनगर और ईडर पहुंचा। ईडर में, उसने मूंडेटी के जालिमसिंह को बुलाकर कहा, "तुम अपने लड़के को बुलाओ।" सूरजमल उस समय 'फारकी' में था। जालिमसिंह ने एजेण्ट को उसका पता तो बता दिया परन्तु साथ ही सूरजमल को भी बच निकलने को कहला दिया। इसलिए जब फौज फारकी पहुंची तो सूरजमल

"सूरजमल को जिस स्थान पर बताया गया था वहां मैं सवेरा होते ही जा पहुंचा परन्तु वे लोग उस जगह को छोड़कर जा चुके थे। पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि वह दो दिन पहले ही वहां से दो कोस की दूरी पर गोता नामक गांव में या उसी तरफ कहीं चला गया था। यह भी बताया गया कि वह गाव उसके भाई के पास था और शायद वह उसी के पास कहीं ठहरा हुआ था। मैंने तुरन्त ही उधर प्रस्थान कर दिया और जब सेना के अगले सवार गांव की मुख्य गली में हो कर जा रहे थे तो एक ऊंची गढ़ी पर से बन्दूक का भड़ाका हुआ और कुछ ही मिनटों में दोनों ओर से गोलाबारी चालू हो गई। नतीजा यह हुआ कि जो चार या पांच आदमी मारे गए उनके अतिरिक्त कुल पचीस आदमी, जो उस समय गांव में थे, बन्दी बना लिए गए।

"मुझे यह जाहिर करने में दुःख होता है कि इस झगड़े में हमारा बहुत नुकसान हुआ और जो परिणाम प्राप्त करने का पूर्व-अनुमान किया गया था उसको देखते हुए तो और भी अधिक हानि हुई है। यह सब नुकसान केवल सात आदमियों द्वारा हुआ जिन्होंने एक बहुत मजबूत और ऊंची गढ़ी में मोर्चा ले रखा था; यह गढ़ी एक चौक के बीच में स्थित थी और एक छोटे से दरवाजे के सिवाय इसके अन्दर पहुंचने का कोई मार्ग नहीं था। यह दरवाजा भी चौक में था, जिसके चारों ओर रक्षकों के मकान बने हुए थे और उन्हीं में तीरकश लगाकर इस द्वार की रक्षा की जा रही थी। उनके निशाने अचूक थे और सुरक्षा के लिए उन्होंने जो व्यवस्था की थी वह, आदमियों की संख्या देखते हुए, प्रशंसनीय थी। हमारा जो नुकसान हुआ उसके विषय में पहले ही खेद प्रकट कर चुका हूं। अब मैं आपको अत्यधिक शोक की बात बताता हूं कि जो लोग मारे गए उनमें लेफ्टिनेण्ट पॉटिञ्जर भी थे। वे सेना के अग्रभाग का नेतृत्व करते हुए बहुत बहादुरी से लड़ते हुए घायल होकर गिरे और यद्यपि उनको इस स्थान पर ले आए थे परन्तु गई रात के दस बजे वे खत्म हो गए। मैंने उनके शव को इसी दाए आपके डेरे के लिए रवाना कर दिया है और मुझे आशा है कि यह पत्र उससे पहले ही आपके पास पहुंच जायेगा।

गोता गांव को करीब करीब जला दिया गया था। मैं नम्रतापूर्वक आपको यह भी बताना चाहूंगा कि इस गाव की बनावट के बारे में जो सूचनाएं आपको

→

भाग गया, परन्तु वह इतनी जल्दी मे भागा कि अपनी जाजम भी जमीन पर बिछी हुई छोड गया, ऊट की 'काठी' भी नीचे गिरा गया और जिस महाजन को पकडा था उसको भी वही छोड़ गया। फारकी और पोल के बीच मे घोडादरो नामक तालाब है, वही जाकर सूरजमल ठहरा। ब्रिटिश एजेण्ट ने फिर जालिमसिंह को धमकाया और उसने, यह सोच कर कि अब फौजें उसका पीछा करने की हिम्मत नही करेंगी, अपने पुत्र का पता फिर बता दिया कि वह घोडादरो मे था। अब ब्रिटिश फौजें फिर आगे बढीं और मूंडेटी के ठाकुर को इतना समय नही मिला कि वह सूरजमल को अगाऊ खबर भेज पाता। इसलिए जब फौज पहुची तो उस पर गोलिया चलाता हुआ वह निकल गया। भागते समय उसका भाई शेरसिंह भी उसके साथ था, जो कुछ घबरा गया था, और कैद कर लिया जाता परन्तु सूरजमल के साथी उसे पहाड़ी पर ले गए। इस तरह सूरजमल पुनः पानौरा पहुच गया।

मिली हैं और जो मेरे पास भेजी गई है वे बहुत गलत है। इसमे बहुत सी ऊची ऊची चट्टानें हैं जो घने जगलो से ढकी हुई है, घुडसवार सेना के तो बिल्कुल काम की जगह नही है और पैदल फौज को भी पूरी असुविधा के कारण गभीर खतरे की ही आशका रहती है। इस का सुबूत हमको तब मिला जब हम गाव खाली कर रहे थे। सूरजमल कही आसपास ही मे था और वह हमारी घुडसवार सेना के पिछले हिस्से पर अपने साथियो सहित जगल मे से आकर टूट पड़ा, गोलिया चली और हमारा एक सवार मारा गया। उस पर आक्रमण करना असभव था और यदि ऐसा किया जाता तो उसके द्वारा जो कुछ हमारी हानि पहले हुई थी उसमे और वृद्धि हो जाती। मेरे साथ जो पैदल सेना थी उसको मैंने कैदियो को लेकर आगे रवाना कर दिया इसलिए वह हमें उपलब्ध नही हो सकी।

मेरा इरादा रात को वडाली में मुकाम करने का था परन्तु हम भूल से एक तालाब और मैदान की तलाश में, जो मैंने सुबह देखा था, एक कोस आगे चले आए; बाद मे मुझे मालूम हुआ कि उससे हमारा काम नही चल सकता था इसलिए हम यहा पहुंचने के लिए आगे बढते रहे और रात के आठ बजे आ कर पहुंचे। आदमी और घोड़े दोनों ही थक कर चूर हो गए है।

जो लोग घायल हुए अथवा मारे गए उनका विवरण-पत्रक साथ मे भेज रहा हूं; इसमे जिनको लापता बताया गया है उनको बहुत करके शत्रु पकड ले गए हैं या मार डाला गया है। मेरा खयाल है कि एकत्रित होने का बिगुल बजने के बाद भी वे लूट की आशा मे गाव मे ही ठहरे रहे और सूरजमल व उसके साथियों के आस-पास मे होने का उनको ध्यान नही था।

इस ठाकुर को पकड़ना या नष्ट करना आसान नही है क्योकि मेरे वह एक के बाद दूसरे मजबूत और सुरक्षित प्रदेश मे जाता रहेगा।

जब जालिमसिंह और उसके पुत्र मे वैर था तब सूरजमल कुवावा में रहा था इस लिए वह वहा के निवासियों से भी नाराज था। उसने ब्रिटिश एजेण्ट को समझाया कि रूपाल का ठाकुर (फतेहसिंह), अहमदनगर के राजा पृथीसिंह और तखतसिंह, जो सतियो के मामले में बाहरवाट हो गए थे, और स्वयं सूरजमल, ये सब कुवावा मे मौजूद थे। इसलिए एजेण्ट अपने घुडसवारो के साथ वहां पहुचा। जिन चारणो का यह गाव था (जिनमे से एक इस किस्से का बयान करने वाला भी था) उनको साहब के रूबरू बुलाकर पूछा गया कि सूरजमल कहा था? जब उन्होने कहा "हमे कुछ पता नही है" तो गाव पर गोले चलाना शुरू कर दिया गया, किला बरबाद कर दिया गया और गांव को लूट कर जला दिया गया। बहुत से गांववाले तो भाग गए और बहुतो को मवेशियो के साथ पकड कर अग्रेजी सेना के मुकाम पर वडाली पहुचा दिया गया। इसके बाद सूरजमल को पकडने के लिए सेना पानोरा पहुची; वहा पर युद्ध हुआ, जिसमे आक्रमणकारियो का एक अफसर और पचास आदमी मारे गए परन्तु, गाव ले लिया गया और जला दिया गया; वहां के रहने वाले गांव छोड कर भाग गए। इसके बाद अंग्रेजो की सेना ने मेवाड के गांव मानपुर को जला दिया। इस बीच मे सूरजमल सपरिवार पहाड़ियों में भाग गया; उसकी पत्नी जोबीजी बड़ी कठिनाई से उन जंगलो मे उसके साथ चल रही थी, उसके पैर कांटो से छिद गए थे और उसकी लड़की को (जो बाद मे ईडर के महाराजा जवानसिंह को ब्याही थी) को गोदी मे लिए लिए चलती हुई वह थक कर चकनाचूर हो गई थी।

जब अंग्रेजी फौज सादड़ा लौट गई तो पानोरा फिर बस गया और सूरजमल अपने परिवार को वहां छोड कर कुवावा के समीप किसी स्थान पर चला गया और वहा से यदा कदा ईडरवाडे पर धावे करता रहा। उस समय सिद्धपुर के एक मठ का अतीत महन्त मर गया इसलिए उसके दो चेलो मे उत्तराधिकार का झगड़ा खडा हुआ। उनमे से एक का नाम राज भारती था; वह राजपूतों के से कपड़े पहन कर बागी हो गया और सूरजमल से जा मिला। उसने ठाकुर से वादा किया कि अगर वह उसकी मदद करेगा तो उसके सिरबंधियों की तनख्वाह का पैसा जुटाता रहेगा। सूरजमल ने यह बात मजूर कर ली और सिद्धपुर के आसपास के इलाके पर धावे मारना शुरू कर दिया। एक दिन सूरजमल और राज भारती अठारह सवारों के साथ सिद्धपुर के पास सरस्वती नदी के किनारे ठहरे और रसोई बनवाने लगे;

की स्थिति मे केवल दो सौ पैदल सेना लेकर उसके लश्कर पर आक्रमण करना मुझे वाजिब नही लगता। इसमे सन्देह नही है कि मैं उसको पीछे हटा सकता था परन्तु हमारा भय से दस गुना अधिक नुकसान होता और, मेरे ख्याल से, उसमे कोई लाभ भी नही हो पाता।

राहगीरों को उन्होंने बताया कि वे ईडर के रहने वाले थे और पालनपुर की यात्रा करने जा रहे थे। शाम होते ही राजपूत नगरसेठ को पकड़ने के इरादे से बाजार मे गये परन्तु, उनको उसका पता नहीं लगा। तब वे दूसरे व्यापारी लख्खू सेठ के घर गए और उन्होंने उसके मुनीम से पूछा "तुम्हारे सेठजी कहां हैं ? हमको एक हुण्डी मुनवानी है।" गुमाश्ते ने कहा, "हुण्डी का पैसा तो मैं ही चुका दूंगा, इसके लिए सेठजी को कष्ट देने की क्या आवश्यकता है ? वे ऊपर भोजन कर रहे हैं।" तब राजपूत अपने घोड़ों से उतर गए और ऊपर जाकर उन्होंने सेठ को पकड़ लिया; वे उसको घर में मे गली में घसीट लाए और एक सवार ने घास के गट्ठर की तरह उसको अपने घोड़े पर बांध लिया। इसके बाद वे बाजार में होकर अपने घोड़े दौड़ाते हुए चले गए। अब तो, बाजार में हाय-तोबा मच गई। जब घुड़सवार दरवाजे पर पहुंचे तो उन्होंने किवाड़ो को चूल पर झूलते पाया; एक सवार ने द्वारपाल को गाली देकर तलवार खींच ली तब उसने दरवाजा खोल दिया। अब, सूरजमल और उसके साथी ओड़ा के रास्ते चले गए। गायकवाड थाने के अफसर ने कुछ सवारों को उनका पीछा करने भेजा परन्तु उनको इसका कुछ इनाम मिलने की तो आशा थी नहीं इसलिए वे कुछ दूर तक वैसे ही घूमघाम कर वापस आ गए। सूरजमल ओडा से घूमा और वहां से पानोरा चला गया। लख्खू सेठ ने प्रार्थना की कि उसे दुख न दिया जाय और 'फिरौती' की रकम लेकर छोड़ दिया जाय। सूरजमल ने पहली बात तो मान ली परन्तु दूसरी के लिए यह कहकर इनकार कर दिया कि पहले अतीत का मामला तय होना चाहिए। तब महाजन ने सूरजमल को हुण्डियां लिख दी जिनको उसके आदमियों ने मुनवाकर नकद पैसा वसूल कर लिया और उससे वे अपने व कैदियों के लिए सामान ले आए।

सिद्धपुर के व्यापारियों ने बड़ोदा सरकार से शिकायत की कि लख्खू सेठ को नहीं छुडाया जायगा तो वे शहर छोड़कर चले जावेंगे। इस पर गायकवाड मन्त्रि-मंडल ने कैप्टेन आउट्रम को लिखा, जो उस समय महीकांठा का ब्रिटिश एजेण्ट था, कि साहूकार को मुक्त कराया जाय। उस अफसर ने ईडर जाकर सभी बाहरवाटियों को आश्वासन देकर बुलवाया कि उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जायगा। सबसे पहले सूरजमल आया और उसने अपनी तलवार फेंक कर एजेण्ट से माफी मांगी। ठाकुर ने कहा, "मेरे सिरबधिये चढी हुई पगार के लिए तंग करेंगे और मेरे पास अपना गुजारा चलाने को भी कुछ नहीं है।" तब मूंडेटी ठिकाने के गांवों में से दो गांव उसको दे दिए गए और उसने बीस घुडसवार रखकर बाकी सिपाहियो का बरखास्त कर दिया। ईडर राज्य की तरफ से उसको भीलोड़ा के थाने का कप्तान नियुक्त कर दिया गया और सवारों को भी नौकरी मे रख लिया गया। जिलेदारों को भी, जो उसके साथ ही बागी हो गए थे, अपनी अपनी जगह से कायम कर दिया गया। उसके साथी राज भारती ने गायकवाड़

आत्म-समर्पण कर दिया। उन्होंने कुछ मास बन्दी रखा और फिर जुर्माने के तौर पर कुछ रकम लेकर सिद्धपुर के महन्त की गद्दी पर बिठा दिया, जहां वह बहुत पैसे वाले की हैसियत से रहता रहा। इसी तरह रूपाल, अहमदनगर और अन्य स्थानों के बाहरवाटियों को अपने अपने घर भेज दिया गया और ईडरवाड़े में शान्ति की संस्थापना हो गई।

सन् 1838 में मूडेटी का ठाकुर जालिमसिंह मर गया और सूरजमल अपनी पैतृक जागीर का ठाकुर हुआ। उसके भाई शेरसिंह के पास रतनपुर और गोता की जागीर रही।

अंग्रेज दफतर से प्राप्त लेखों के आधार पर महीकांठा के अन्तिम प्रबन्ध विषयक पश्चात् टिप्पणी।

बम्बई सरकार का 17 सितम्बर, 1835 ई० का डिस्पैच।

"जब मिस्टर अर्स्किन पिछली 16 फरवरी को अहमदनगर पहुंचा तो उसके साथ तीन सौ आदमी थे; वे अन्य उपद्रवों को दबाने के लिए आए थे; इस घटना में उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। नगर में पहुंचने पर उन्हें खबर मिली कि उस रियासत का राजा कर्णसिंह इतना बीमार था कि वह दिन भी शायद ही निकाल सके। इस पर मिस्टर अर्स्किन ने यह जानने का उद्योग किया कि जिस प्रकार अगस्त, 1833 ई० में ईडर के महाराजा के साथ जबरन सतियों का दाह हुआ उसी प्रकार कहीं यहां भी महाराजा की रानियों को, जिनकी संख्या सात थी, बरबस सती कर देने का विचार तो नहीं चल रहा था। इस विषय में वह कोई सन्तोषप्रद सूचना प्राप्त नहीं कर सका। 6 फरवरी की रात को महाराजा दिवंगत हुआ, परन्तु इस समाचार को दूसरे दिन शाम तक गुप्त रखा गया और उस समय स्पष्ट रूप से चर्चा होने लगी कि सात में से पांच विधवाएं अवश्य ही चिता पर चढ़ा दी जावेंगी। सात तारीख को सुबह मिस्टर अर्स्किन ने दिवंगत महाराजा के सत्रह वर्षीय युवक ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह और उसके काका के लड़के कुंवर के हमीरसिंह को बुलाया और उनसे कहा कि ब्रिटिश सरकार इस अमानवीय प्रथा को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखती है और उसने उनको इस बात से भी सूचित कर दिया कि वह उस अत्याचारपूर्ण रस्म को अपने भरसक प्रयास से रोकने का प्रयत्न करेगा। अंग्रेज सरकार ने पहले-पहले तो इस रिवाज को बर्दाश्त किया, परन्तु बाद में उन्होंने अपने अधीन इलाकों में इसको कानूनन जुर्म करार दे दिया था। दूसरा पूरा दिन पृथ्वीसिंह और हमीरसिंह ने यह समझाने में व्यतीत कर दिया कि वह एक आवश्यक सामाजिक रिवाज था और उसे पूरा करने दिया जाय। उधर, मिस्टर अर्स्किन लगातार उनको इस बात के लिए मनाते रहे कि वे उसके दृष्टिकोण को समझकर क्रियान्वित करने में सहयोग करें। मिस्टर अर्स्किन को इस बात की बिलकुल खबर नहीं थी कि यह वाद-विवाद सिर्फ दिखाने के लिए ही बढ़ाया जा रहा था और उधर अहमदनगर जिले के हर गांव

में से सशस्त्र भीलों और वन्दूकचियों को एकत्र करने को आदमी भेजे जा चुके थे जिससे कि बलपूर्वक भी सतीप्रथा को पूरा करवाया जा सके। शाम को सभी दिशाओं से सशस्त्र पुरुषों के टोले के टोले नगर की ओर आते हुए हमारे डेरे मे से दिखाई दिए। इस पर अर्स्किन ने अपनी सेना के अफसर को निर्देश दिया कि हर एक आदमी के शस्त्र उतरवाकर रख लिए जावें क्योकि राजा के दाह-सस्कार मे तो इस तरह की सशस्त्र सेना की कोई आवश्यकता नहीं थी इसलिए स्पष्ट था कि उनके एकत्रित होने का इरादा नेक नही था। एक या दो टोली के शस्त्र तो यह कहकर उतरवा लिए गए कि दूसरे दिन वापस कर दिए जावेंगे परन्तु इसी बीच मे खबर मिली कि किले मे सशस्त्र आदमियो की बहुत बडी भीड जमा हो गई है और एक पचास या साठ कोलियो, वन्दूकचियो और अन्य आदमियो का जत्था कर्णसिह के कोटवाल के नेतृत्व मे लेफ्टिनेन्ट लेविस (Lieutenant Lewis) के पास होकर निकला, जो नगर के परकोटे के नीचे कवायद करा रहा था, उन लोगों के पास जलते हुए पलीते और चढ़े हुए कामठे (धनुप) थे। उस अफसर ने अश्वारूढ़ कोटवाल को बुलाकर हुक्म सुनाया तथा अपने साथ के सभी आदमियो के शस्त्र उतारकर रख देने को कहा, परन्तु कोटवाल ने तुरन्त ही अपने पीछे आने वालो को लेफ्टिनेन्ट लेविस पर गोली दाग देने की आज्ञा दी। उन लोगो ने बेखटके गोली चला दी और वह लेफ्टिनेन्ट लेविस की पसलियों में पार हो गई। तब वह जत्था तेजी से शहर मे घुस गया और तुरन्त ही दरवाजे बन्द कर दिए गए तथा परकोटे पर से हमारे सैनिको पर गोलिया वरसने लगी, जो मुश्किल से दो सौ कदम पर ही जमा थे। शहर मे तोपें भी थीं जो अगर रात मे मोर्चों पर चढा दी जाती तो हमारा बहुत नुकसान होता इसलिए यही मुनासिब समझा गया कि सेना को कुछ सौ कदम और पीछे हटा देना चाहिए। इसी अवसर पर मिस्टर अर्स्किन ने अहमदाबाद और हरसोल के सैनिक अधिकारियों को तोपें भेजने के लिए लिख दिया था ताकि दरवाजा तोडकर-नगर पर अधिकार किया जा सके। दूसरे दिन (9 तारीख) को सुबह के ढाई बजे तक सब कुछ शान्त रहा परन्तु उसी समय अचानक सूचना मिली कि चिता जला दी गई है। अब उस घातक कर्म को रोकने या उसमे बाधा डालने के लिए बहुत देर हो चुकी थी क्योकि काम शुरू हो चुका था। इस बर्बर कृत्य के सम्पादकों ने जो विधि अपनाई थी वह सफल हुई और वे अभागिनी स्त्रिया उन हत्यारो के जगली मनसूबों का शिकार हो गईं। हम मानवीय न्याय-मण्डल के सामने इस भयानक दुष्कार्य का यथावत् वर्णन यहा नही कर रहे क्योंकि वह हाशिये मे सूचित मिस्टर अर्स्किन के पत्र से अवगत हो जायगा।

"यह रोमांचकारी घटना पूरी हुई। मृतक राजा के दोनों पुत्र कुछ ... और अन्य लोगो के साथ नगर के बाहर निकले। सुबह-सुबह तो हमारी सेना के कोई शत्रुभाव प्रकट नहीं किया गया सिवाय इसके कि नादी से पानी लाने वालो

आते जाते समय किले में से एक दो बार बन्दूकें चलाई गई। बहुत से कोली और भील रात को ही अपने-अपने घरों को लौट गए थे। उस समय मिस्टर अर्स्किन को जो समाचार मिले उनसे उसको विश्वास हो गया कि सतियों के दाह का कर्म जोर-जब से किया गया था परन्तु यह सब पृथीसिंह की इच्छा के विरुद्ध हुआ था और उसका विचार तो मि. अर्स्किन की सलाह मान लेने का ही था।

9 तारीख को तीसरे पहर हरसोल से पचास आदमियों की अतिरिक्त मदद आ पहुंची और कप्तान लार्डनर (Captain Lardner) ने, जो उस टुकड़ी का अध्यक्ष था, उसी संध्या को नगर पर अधिकार कर लेने का इरादा किया; यदि निम्नलिखित परिस्थिति उत्पन्न न हो जाती तो ऐसा हो भी जाता।

"सती काण्ड से कुछ मास पूर्व मूंडेटी के ठाकुर जालिमसिंह चौहान के ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल ने उपद्रवकारियों की एक बड़ी भारी टोली इकट्ठी कर ली थी और वह स्वयं उसका नेतृत्व करता था। इस सेना को एकत्रित करने का मुख्य उद्देश्य डूगरपुर के साहूकार, अहमदाबाद की प्रसिद्ध पेढी के खेमचन्द के भाई को रिहा कराने व हिम्मतसिंह और रूपाल के ठाकुर फतेहसिंह से युद्ध करने का था; इन ठाकुरों से उसका व उसके भाईबन्धुओं का पुराना वैर चला आता था। शत्रुओं के साथ उसकी कुछ असफल झड़पों और सेना द्वारा वेतन के लिए तंग करने के कारण वह मुसीबत में पड़ गया था। रूपाल के ठाकुर ने डूगरपुर राज्य में जो ज्यादतियां की थी उनके लिए तुरन्त ही उसको कोई दण्ड नहीं मिला था, इसलिए उसने सोचा कि क्यों न वह भी अपने सिपाहियों को सर्वत्र लूटमार में लगा दे? बाद में, उसने घास-दाणा के गावों में से दरोवी नामक गाव पर धावा किया और लूट के माल को अपने सिपाहियों में तकसीम कर दिया। उस समय ईडर की व्यवस्था इतनी बिगड़ी हुई थी कि मिस्टर अर्स्किन ने, यह खबर मिलने पर, इन सब बातों का निपटारा हो जाने तक इन्तजार करने के बाद ही सूरजमल से निपटना उचित समझा। अतः उस समय तो उसने सूरजमल के नाम एक शिक्षाप्रद पत्र ही लिख दिया। परन्तु, कुछ ही समय बाद उसको सूचना मिली कि सूरजमल ने नान्ही मारवाड़ में घास-दाणा के दूसरे गाव हरसोल पर धावा बोल दिया है। इस पर मिस्टर अर्स्किन ने उस पर पाच मोसल भेज दिए और तुरन्त ही सिरबन्धी खतम करने की ताकीद की। उसने पांचों मोसलों को तो विदा कर दिया और सिरबन्धी खतम करने के लिए साफ इनकार कर दिया। इस पर बीस मोसल भेजे गए परन्तु इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला।

सूरजमल द्वारा अपने डेरे से लौटाए हुए पाच मोसलों में से एक ने 9 फरवरी को शाम के चार बजे आकर खबर दी कि वह (सूरजमल) वखतपुर के पास अहमदनगर से चार मील दूर, लगभग एक हजार मकरानियों और साठ या सत्तर

सवारों सहित अंग्रेजी सेना से मुकाबला करने को तैयार खड़ा है। यह सूचना मिलने पर मिस्टर अर्स्किन ने अपनी टुकडी के अफसर को सलाह दी कि वह कुछ समय तक अहमदनगर के विरुद्ध कोई कार्रवाई न करे और उसने उत्तरी विभाग के सेनानायक को निर्देश दिया कि वह सूरजमल की सेना को व उस से उत्पन्न गड़बड़ियों को दवाने के लिए अपनी इच्छानुसार पर्याप्त मदद तुरन्त भेज दे।

3 मार्च को अंग्रेजी सेना ने अहमदनगर शहर पर कब्जा कर लिया और 6 मार्च को मिस्टर अर्स्किन ने लिखा कि वह जल्दी ही महीकाठा का बन्दोवस्त कर सकेगा।"

बम्बई सरकार का 15 अक्टूबर, 1835 का डिस्पैच

इस प्रकार मही कांठा मे उपद्रवकारियो के तीन दल थे; पहला, पृथीसिंह और उसके साथी; दूसरा, रूपाल का ठाकुर और घोड़वाड़ का ठाकुर तथा उनके साथी; और तीसरा, सूरजमल और उसके साथी।

कैप्टेन डेलामेन (Cap'ain D:lamain) दो सौ पैदल, एक घुड़सवारो की टुकड़ी और एक सौ पचास गायकवाड के पायगों (घोडों) की मिली-जुली सेना लेकर सूरजमल पर हमला करने को रवाना हुआ और 17 फरवरी को ईडरवाडा मे वड़ाली नामक स्थान पर पहुंचा, जहा सूरजमल का डेरा था। वहा जाने पर मालूम हुआ कि वह भागकर दो मील दूर गोता गाव मे चला गया जहां उसका भाई शेरसिंह रहता था, इसलिए डेलामेन उस गांव के लिए चल पड़ा। गाव ले लिया गया, शत्रु के चार या पांच आदमी मारे गये और बचे हुए पचीस या तीस आदमियों को बन्दी बना लिया गया। परन्तु, हमारा भी बहुत भारी नुकसान हुआ; 17वी रेजीमैण्ट एन. आई. का लेफ्टिनेण्ट पॉटिन्जर मारा गया। यह शोकपूर्ण परिणाम इसलिए हुआ कि वहां पर एक सुदृढ गढी थी जिसके रक्षकों ने जी-जान से बचाव किया और हमारी सेना के पास तोप नहीं थी क्योंकि रवाना होते समय यह नही सोचा गया था कि उसका भी काम पड़ सकेगा.................

जब युद्ध के लिए और सेना आ गई तो रूपाल के ठाकुर के विरुद्ध कार्रवाई आरम्भ की गई। 1835 ई. की फरवरी खतम होते-होते हमारी फौजों ने कानौरा और दोढर गांव ले लिए जिसमें अपना कोई नुकसान नही हुआ; दोढर के पास ही एक गुसाँई का मठ भी अधिकार में आ गया और 5 मार्च, 1835 ई को पीरमली पर भी अधिकार हो गया। ये सब रूपाल के भीलों के गढ थे जिन पर दुर्दम्य वाहरवाटियों ने अधिकार कर लिया था। रूपाल गाव पर भी हमारी फौजों ने कब्जा कर लिया।....रूपाल के वासियो को तितर-बितर कर देने के वाद मेजर मोरिस (Major Morris) की अध्यक्षता मे 24वीं पलटन एन. आई. ने सूरजमल के विरुद्ध अभियान चालू किया और 11 मार्च को मूडेटी के पास की पहाड़ियो में गोरल के सामने डटी जो उसके मुख्य गढ़ो मे समझा जाता था। सेना ने गढ़ पर अधिकार कर

और किलेदारों को खदेड़ दिया; इस झड़प मे शत्रु के आठ आदमी मारे गए और सत्रह-अठारह घायल हुए। सूरजमल तो पहले ही वहा से भाग गया था और उसका भाई शेरसिंह ही दो सौ या ढाई सौ मकरानियों के साथ बचाव कर रहा था।.... मार्च, 1835 ई. के मध्य तक सूरजमल और उसके साथियो का पीछा करती हुई हमारी सेना पहाडी इलाके मे और भी आगे घुस गई और उसने फारकी, पानौरा, मानपुर व वादरवाडा के गढों को बरबाद कर दिया अथवा उन पर कब्जा कर लिया। पानौर गाव में एक भील सरदार का रहठाण था; वह बहुत समय से आसपास के प्रदेश के लिए हौवा बना हुआ था और सूरजमल का तो आज्ञावर्ती पक्का सहयोगी था। इन लडाइयो मे हमारी 17वीं रेजीमेण्ट, एन आई का अफसर लेफ्टिनेण्ट क्रुइकशेंक (Lieutenent Cruikshank) और सत्रह सिपाही घायल हुए और शत्रु के लगभग 370 आदमी मारे गए या जख्मी हुए।

"हम स्वीकार करते हैं कि इस पत्रावली में वर्णित घटनाओं और प्रयत्नों ने हमारे मनो पर बहुत ही दुखद प्रभाव के चिह्न अंकित किए हैं; इस अत्यन्त पथरीले, दुरूह और अनजाने प्रदेश मे सेना ने असह्य कष्टों को झेलकर तथा अथक परिश्रम करके, सामने आने वाले सशस्त्र दलों को तो भगा दिया परन्तु अभी तक उनके सरदार नही पकडे जा सके और यहा पर वह स्थिति अब तक बनी हुई है जिसमे कोई भी उत्साही मनुष्य किसी भी समय लूटपाट और बरबादी के कामो के लिए मनचाही सशस्त्र सेना एकत्रित करके उसका अगुआ बन सकता है। इन इलाकों की अधिकाश प्रजा, वास्तव मे लड़ाकू है और यद्यपि वे लोग लगातार लूटमार नही कर पाते है तो भी इन कामो के लिए उनकी इच्छा बनी ही रहती है। परिस्थिति यह है कि हमको तो इस प्रदेश की अधिक जानकारी नही है और यहा कदम-कदम पर ऐसे विकट स्थान हैं जहा थोड़े से ही उत्तम शस्त्रधारी वीर अपने से बहुत अधिक सख्या वाले सैनिकों को आसानी से रोक सकते हैं, इसलिए इन सरदारों से वर्तमान मे जो हमारे सम्बन्ध है, उनमें और हमारे प्रभाव मे वृद्धि नही हुई तो हमको इतने सारे दुर्दम्य उपद्रवियों को शान्त रखने की आशा तब तक नही करनी चाहिए जब तक कि हम बहुत बडी सेना न रखें और प्रान्त मे जगह-जगह थाने कायम करके उनका जाल न बिछा दें, जिस पर अत्यधिक खर्चा करना अनिवार्य होगा।

"इन बातों से हमारे मन मे यह विचार आता है कि इस प्रान्त का पूरी तरह से सर्वेक्षण कराया जाय और हमारे प्रेसिडेण्ट (सर रावर्ट ग्राण्ट) ने यह सलाह दी है, जिसमें मण्डल (बोर्ड) के दूसरे सदस्यो की भी राय शामिल है, कि महीकांठा के लडाकू स्वभाव के लोगों पर ऐसी हुकूमत बैठाने का यत्न किया जाय जिससे मुल्क मे अमन कायम हो सके और अन्तिम रूप से इनको सभ्य बनाने का बीज उसी प्रकार बोया जाय कि जिस तरह हमने खानदेश मे कार्य किया और हमें सफलता प्राप्त हुई।"

बम्बई सरकार की पत्रावली, दिनांक 31 दिसम्बर, 1835 ई.

"कप्तान आउट्रम (अब मेजर जनरल सर जेम्स आउट्रम के. सी. बी. अवध के मामलों के चीफ कमिश्नर) की खानदेश में की हुई सेवाएं और कुछ वर्षों पहले डाग प्रदेश में शान्ति संस्थापना के प्रसंग मे प्रदर्शित सूझबूझ एवं योग्यता को देखते हुए लगता है कि यह अधिकारी इस विश्वस्त कार्य के लिए उपयुक्त सिद्ध होगा। इन परिस्थितियों में हमारे प्रेसिडेण्ट ने प्रस्ताव किया है कि कप्तान आउट्रम को आज्ञा दी जावे कि वह उपर्युक्त सुझावों के आधारभूत निर्देशो को समझकर तुरन्त गुजरात के लिए रवाना हो जावे।"

बम्बई सरकार का डिस्पेच, तारीख 15 मई, 1836 ई.

"स्वयं कप्तान आउट्रम अपनी 14 नवम्बर, 1835 ई. की योग्यतापूर्ण एवं मनोरंजक रिपोर्ट मे स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त करता है कि महीकांठा के असन्तुष्ट और उपद्रवी सरदारों को सतुष्ट करना चाहे कितना ही आवश्यक हो परन्तु उनमे से कितने ही ऐसे हैं जिनके प्रति दयाभाव प्रकट करना नितान्त असभव है; ये वे लोग हैं जिन्होंने ब्रिटिश हुकूमत का प्रत्यक्ष विरोध किया है; इनको कड़ा दण्ड देकर दूसरो के लिए उदाहरण सामने रख देना चाहिए; इनको बागी घोषित करके, ये जहा भी मिलें, पहचाने जावें या पकड़े जावें तो, कोर्ट मार्शल (फौजी अदालत) में पेश करके डंके की चोट फासी की सजा दे दी जाय। कप्तान आउट्रम की इन भावनाओं का पोलिटिकल कमिश्नर ने भी समर्थन किया है और कतिपय दूसरे अधिकारियो ने भी, जिनकी यह राय और भी अधिक गौरवपूर्ण और मानने लायक है कि महीकाठा में शान्ति स्थापित करने के लिए इन लोगो का दमन करना अत्यावश्यक है।"

"इस विषय पर आवश्यक विचार करने के उपरान्त हमने इसके विपरीत नीति पर चलने का निश्चय किया और गए समय में जो कुछ हुआ उसके लिए क्षमा प्रदान करने की घोषणा कर दी—परन्तु, वह इस शर्त के साथ कि जो बाहरवाटिए बाहर है वे उपस्थित होकर भविष्य मे शान्त भाव से रहने की जमानत दें। हमें, आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि यह नीति तो पूर्णतया सफल होगी ही और साथ ही यह भी कि इसके अवाता और कोई भी प्रयत्न महीकांटा में शान्ति स्थापित करने मे सफल नही हो सकता।................

"पहली बार तो हमारे विचार में यह है कि मुख्य बाहरवाटियों या बागियों ने यह नियम विरुद्ध मार्ग अपनी विशुद्ध इच्छा या रुचि से नहीं अपनाया है वरन् पारिवारिक झगड़ों, अत्याचारों अथवा ब्रिटिश नीति के द्वारा खडी की गई मुसीबतों के कारण ही वे इसमे पड़ गए हैं। इस विषय में हमको जो जानकारी मिली है वह अपने आप मे परिपूर्ण नही है परन्तु यह विश्वास करने का दृढ प्रमाण मौजूद हैं कि महीकाठा में जो गडबडिया उत्पन्न हुई हैं और लम्बे समय तक चलती रहती उनके मूल कारणों मे से यह भी एक है अथवा यही मात्र मूल कारण है।

"दूसरे, हमारा ख्याल है कि जिस कठोर दण्ड व्यवस्था के लिए कप्तान आउट्रम और अन्य अधिकारियो ने अनुरोध किया है और कहा है कि पूर्णतया शान्ति स्थापना के लिए इनकी सर्वप्रथम आवश्यकता है, वह तो पहले ही हो चुकी है। गत वर्ष की सैनिक कार्यवाहियों मे, यद्यपि वाहरवाटियों में से कोई भी हमारे हाथ नही आया, परन्तु उनकी ताकत तो तोड ही दी गई है; उनके साथी तितर-बितर हो गए, उनके कुछ गढ़, नगर और गाव जला दिए गए या दूसरी तरह बरबाद कर दिए गए और उनके सिपाहियो मे से बहुत से मारे गए, जख्मी हो गए या कैद कर लिए गए है।

बम्बई सरकार के 26 अप्रेल, 1837 के डिस्पैच का सार

कैप्टेन आउट्रम ने महीकांठा के राजनीतिक प्रतिनिधि (Political Agent) का कार्यभार 20 जनवरी, 1836 ई. को सम्हाला। 7 फरवरी को सरकार द्वारा समझौता-नीति के निर्देशानुसार उसने सभी वाहरबाटियो को पत्र लिखे कि वे उसके डेरे मे आकर मिले जिससे कि उनके द्वारा किये गये कार्यों को किन्ही शर्तों पर क्षमा करके भविष्य के लिए समझौता किया जा सके। पत्रों में उपस्थिति के लिए जो तिथि निश्चित की गई थी उसकी अवधि सूरजमल की सुविधा के लिए दस दिन और बढ़ाई गई और वह ठाकुर 8 मार्च को एजेण्ट के डेरे पर हाजिर हुआ। उसने पश्चात्ताप प्रकट किया और माफी मिल जाने पर जमानत दाखिल करने का करार किया। इसके बाद वह जमानत तलाश करने व अपने सैनिकों को सीख देने के लिए चला गया।

इसके दस दिन बाद जब कैप्टेन आउट्रम सिद्धपुर पहुंचा तो ईडर से एक सन्देशवाहक ने आकर कहा, "कोई तीन मास पूर्व हमारे गाव का एक व्यापारी पकड लिया गया था, आप उसको छुड़ाने मे मदद करें।" इस पर ब्रिटिश एजेण्ट ने तुरन्त ही सूरजमल के नाम पत्र लिखा कि व्यापारी को तीन दिन के अन्दर-अन्दर छोड दिया जाय, यदि इन निर्देश का पालन नही किया गया तो जो माफी दी गई है वह रद्द कर दी जावेगी। सरकार ने इस कार्यवाही को बिल्कुल पसन्द नही किया और सर राबर्ट ग्राण्ट ने टिप्पणी करते हुए लिखा "मुझे शुरू से ही डर था कि कैप्टेन आउट्रम को जिस कार्य के लिए तैनात किया गया है उसमे वह सैनिक कार्यवाही का ही रुख अधिक अपनायेंगे।" इसी बीच में सूरजमल ने उत्तर भेजा कि जिस अतीत को उसने व्यापारी को पकडने मे साथी बनाया था वही उसको अपने साथ ले गया इसलिए वह उसे पेश करने मे मजबूर था। ऐसा उत्तर प्राप्त होने पर भी एजेण्ट उस व्यापारी को पेश करने पर बल देता रहा तो विवश हो कर सूरजमल को पानोरा जाकर आश्रय ग्रहण करना पडा। इस पर कैप्टेन आउट्रम ने तुरन्त ही उस ठाकुर को बागी घोषित कर दिया और उसका सर काट कर लाने वाले के लिए इनाम का ऐलान कर दिया और सेना की एक टुकडी उसका पीछा करने को रवाना कर दी।

सेना रवाना हो गई तो पानोरा के राजा को आशंका हुई कि सन् 1835 ई.

के मार्च मास में जिस तरह उसका गांव बरबाद कर दिया गया था उसी तरह फिर नष्ट कर दिया जायेगा इसलिए उसने सूरजमल को सहायता या संरक्षण देने से साफ इनकार कर दिया। अतः उस ठाकुर ने तुरन्त आत्मसमर्पण कर दिया। सरकार ने बयान दिया "हालां कि कॅप्टेन आउट्रम के जोशीले लेकिन कुछ सख्ती के कदम से जो खुश-किस्मत नतीजा हासिल हुआ है उस पर खुशी जाहिर किए बिना नहीं रह सकते लेकिन हम सूरजमल को बागी करार देने को सख्ती का कदम और फौजों की रवानगी को गैर-जरूरी समझते हैं; फिर भी, यह सब काम ऐसी होशियारी के साथ पूरा हुआ है जिसको कॅप्टेन आउट्रम ही कर सकते थे; हम इसकी दाद देते हैं। इसलिए हमने उनको सूचित कर दिया है कि हम तहे दिल से और खुशी के साथ मंजूर करते हैं कि यह सफलता उनके द्वारा निर्देश का पालन करने के कारण नहीं, बल्कि उसका उल्लंघन करने के कारण प्राप्त हुई है; साथ ही, उनको इस बात के लिए भी पाबन्द कर दिया है कि भविष्य मे हमारे निर्देशों को पूरी तरह ध्यान देकर समझें और तदनुसार ही उनका पालन करें।

मई मास को 7 तारीख को सूरजमल (जो इस बीच में प्रतिज्ञा-मुक्त कैदी था) सिद्धपुर के व्यापारी को लेकर पोलिटिकल एजेण्ट के सामने हाजिर हुआ विगत घटनाओं के बारे में उन दोनों के बयान समान थे इसलिए कॅप्टेन आउट्रम ने सूरजमल को बिना जुर्माने के गिरफ्तारी से मुक्त कर देना ही उचित समझा; इस अनपेक्षित सहृदयतापूर्ण व्यवहार के कारण वह ठाकुर बहुत आभारी प्रतीत हुआ।

सरकार लिखती है, "सूरजमल को जब से माफी दी गई है तब से उसके व्यवहार में जो परिवर्तन आया है उसकी सूचना देने मे हमको खुशी होती है; और सम्माननीय मण्डल (Court) को यह लिखते हुए भी हमें हर्ष का अनुभव होता है कि महीकांठा में पुनः शान्ति स्थापना और व्यवस्था कायम करने मे उसके प्रयत्न कॅप्टेन आउट्रम के प्रयासों मे सम्मिलित हो गए है। बाहर-बाटिया खुमला का विनाश और उसकी भयानक टोली को बिखेरने में जो सफलता मिली है उसमें अधिक श्रेय इसी ठाकुर की सहायता को मिलना चाहिए।

"पहली सितम्बर, 1836 ई. से पहले-पहले बचे हुए धाडैतियो ने भी आत्मा-सम्पर्पण कर दिया और उदयपुर से ईडर तक पानोरा होकर नई सड़क चालू हो गई; यह एक बड़ा काम हो गया। सभी सम्बद्ध सरदारों ने यह स्वीकार कर लिया है कि एक नियत समय तक वे इस मार्ग के यात्रियों से चुंगी वसूल नहीं करेंगे।

'पानोरा में ठहर कर पोलिटिकल एजेण्ट ने जो गावों के सीमा सम्बन्धी विवाद निपटाने में प्रयास किए है वे बहुत सफल हुए हैं; एक खून का झगड़ा तो पीढ़ी-दर-पढ़ी कोई चालीस वर्षों से चला आ रहा था। पहाड़ियों के जंगली हिस्सो में उसकी इस उपस्थिति से एक यह भी लाभ हुआ कि सीमावर्ती ठाकुरों और विश्वास देने का भी उसको अच्छा अवसर मिल गया क्योंकि

लोगों ने यूरोप-वासियो को अपनी सेना के सम्मुख शत्रुभाव के अतिरिक्त और किसी रूप में नही देखा था। उसने कई ऐसे झगड़े और विवाद भी निपटाए जो कई वर्षों से चले आ रहे थे और जिनके विषय मे गुजरात के राजनीतिक अधिकारियों से एक कभी खत्म न होने वाली खतो-किताबत चल रही थी। कैप्टेन आउट्रम ने उन लोगो में अपने प्रति ऐसा विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि बहुत से बाहरवटिया भी अपने आप उसकी मध्यस्थता के लिए प्रार्थना करते थे।

'इस ग्रन्थ को समाप्त करते हुए स्वयं कैप्टेन आउट्रम के दिनांक 30 अप्रैल 1836 के पत्र मे से अनुच्छेद उद्धृत करने मे भी हमें हर्ष होता है, जिसमे उसने उस मित्रतापूर्ण व्यवहार का उल्लेख किया है जो, उसके मेलमिलाप-पूर्ण प्रयत्न के कारण, अंग्रेजी मेवाओं को, आवागमन के समय, इन इलाकों में प्राप्त हुआ है :—

"हमारी सेनाएं इन प्रान्त मे, शत्रुओं की तरह नही मित्रों की तरह गुजरी। जो भील पहले सैनिको को देखते ही भाग जाते थे अब वापस आ गए और जिस तरह का सद्-व्यवहार उनके साथ किया गया उसे देखकर चकित रह गए। अथवा, पहले जब उनके गांव के पास फौजी दस्ते ठहरते तो वे डर के मारे सामने भी नहीं आते थे परन्तु अब की बार लौटने पर जब उन्होंने देखा कि उनकी अनुपस्थिति में कोई नुकसान नही हुआ है तो वे दंग रह गए। सेना के आदमियों और ग्रामवासियों मे व्यक्तिगत सम्पर्क भी स्थापित किए गए जिसका परिणाम यह देखा गया कि लौटते समय सेना को बहुत ही प्रसन्नता एवं विश्वासपूर्ण व्यवहार प्राप्त हुआ। वास्तव में, इस वर्ष महीकांठा में जो सेना का दौरा हुआ उससे शान्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ है; और, इस बार सेना के आगमन को यहां वरदान के रूप में ग्रहण किया गया है, देश पर आफत समझ कर उसको दूर टालने के प्रयत्न नही किए।

इस प्रकार गुजरात के प्रारम्भिक इतिहास काल से लेकर यहां पर मरहठों और तदनन्तर ब्रिटिश के आगमन एवं सत्ता सथापन तक का ऐतिहासिक वृत्तान्त अलेक्जेण्डर किनलॉक फार्बस की रासमाला के तीन भागों मे स्थानीय रास साहित्य को आधार बनाकर संकलित किया गया है। सन् 1854 में पुस्तक पूरी करके फार्बस स्वदेश चले गए और बाद में लौट तो दूसरे कार्यों मे लग गए, ऐसी दशा मे वह इसी समय तक का इतिहास लिख सके परन्तु एक जिज्ञासु और अध्ययनशील अंग्रेजी विद्वान होने के नाते उन्होंने इस प्रदेश की संस्कृति का भी विस्तृत अध्ययन किया जो रासमाला का चतुर्थ भाग है। भारत के विभिन्न प्रदेशों की संस्कृति, स्थान, काल एवं सम्पर्क भेद से यद्यपि विविध रूप से विकसित हुई परन्तु मूलभूत भारतीय संस्कृति इन सभी प्रान्तों की विविधता मे सूक्ष्म रूप में विद्यमान है। अतः किसी भी प्रान्त की संस्कृति के अध्ययन से भारतीय संस्कृति की आत्मा का दर्शन किया जा सकता है। फार्बस लिखित यह अध्ययन आवश्यक टिप्पणियों सहित पृथक् रूप से प्रकाशित हो रहा है।

●●

अनुक्रमणिका

अंबारिया ग्राम, 163, 164
—का ठाकुर अमरदोजी, 163, 164
अखैचन्द, 218, 219, 220
अखैराजजी, मालसिंह का पुत्र 78, 79, 84, 85
अखैराज, सिरोही का राजा, 155
अगरजा ग्राम, 118
अगरोजी ठाकुर, 116
अच्छूवा, 61
अजब कुंवरी सीसोदणी, 212
अजब वरदश्रृंगार (चारण विक्रमसी रचित पुस्तक), 116
अजबोजी (राव नारायणजी का पौत्र), 116,–118
अजीतसिंह (जोधपुर का राजा) 131, 132
अजीम खां, 107
अजीज कोका खान, शाही वजीर, 59
अज्जा गडवी, 66
अज्जाभाई, झाला, 64
अट्ठावीसी परगना, 40
अडालज ग्राम, 5, 34
अडावला पर्वत, 132, 134
अड़ास ग्राम, 4
अडेरण ग्राम, 170
अणघड ग्राम, 142
अणदसींघ (आनन्दसिंह, जोधपुर के अजीत सिंह का पुत्र), 136
अणहिल पुर, 15, 54, 120
अणहिलवाड़ा, 45, 100
अनोप कुंअर भटियाणी, 157
अनोपसिंह, दावड़ का, 140
अनोपसिंह राठौड़, हराड का ठाकुर, 159
अप्टन कौंसिल, वहाज, 37
अब्दुल अजीज खां, 10
अब्दुल्ला बेग, भड़ौच का अधिकारी, 8
अभयराज, 58
अभयसिंह/अभयसिंह कुंअर 9, 131, 133, 134, 160
अभयसिंह चांपावत, 144
अभयसिंह, राठौड़, महाराजा, मारवाड़ 8, 55, 135, 136, 203
अभयसिंह, सुदासणा का राणा, 161, 162
अभापुरा गांव, 164
अमरसिंह, 58, 60, 61, 103
अमरसिंह, उम्मेदसिंह का ज्येष्ठ पुत्र, 171
अमरसिंह, कूंपावत, 134, 139, 143
अमरसिंह, सुदासणा, 159, 160
अमरसिंह, पूंजाजी का पुत्र, 156
अमरसिंह, महाराजा भवानी सिंह का भाई, 149
अमरसिंह, राणा मानसिंह का भाई 169, 170
अमराजी, सधुवाजी बडवा का पुत्र 152, 154, 155
अम्बाजी, अम्बा भवानी, माता, 48 123, 167, 168
अरणेज (गांव) 99
अर्जुन राव गायकवाड़, 161
अर्जुनराव घोपड़ा, 161

अर्जुनसिंह, बासवाडा का एक जागीरदार, 61, 176
अर्सकिन, मिस्टर, 216, 221, 222, 228–231
अलाउद्दीन, 101, 120
अलाउद्दीन खिलजी, 153
अलीराजपुर, 79
अलेक्जेण्डर, मेजर, 27
अहमदखान, नवाब, 82
अहमदाबाद, 1, 5, 9–12, 17, 22, 23, 34, 40, 43, 45, 57, 58, 60, 71, 78, 83, 100, 111, 112, 120, 133, 135, 143, 153, 220, 229, 230
अहमदनगर, 6, 125, 126, 134, 146, 149, 151, 167, 197 207, 209, 222, 224, 226, 228, 231
अहमदशाह, 1, 54, 55, 83
आगी, 100
आवो खा, 117
आवलियारा, 127, 129, 150
आउट्रम कप्तान 227, 233–236 (बाद में ले० क० जेम्स आउट्रम)
आगा मोहम्मद, 29
आघाट, 65
आजम भाई, 66
आणंद कुंवर वारेचणी, 157
आणंद कुंवर बाघेली, 157
आता भाई (वसंत सिंह), 79, 80 84
आतो यवन, 84, 90
आनन्दराव गायकवाड़, 24, 26–30, 40–42, 71
आनन्दराव पंवार, 7
आनन्दसिंह, ईडर के महाराजा का वंशज, 151
आनन्दसिंह महाराजा की रानियां, 140
आनन्दसिंह, 132,–134, 137–139, 141, 144, 151
आना वा, यशस्वी, 88
आपाजी, आपा साहब, 24, 26, 144
आवा शेलूकर, 43
आबू, 168
आम्बला, 90
आमोद गांव, 115
आयरलैण्ड, 104
आरासुरी (अम्बा), 98
आसकरण, ईडर, 153
इंगलैण्ड, 5
ईगरटन, कर्नल, 18
इजारदार, 71
इंट्रेपिड जहाज, 37
ईडर, 9, 79, 116, 123, 125–127, 131, 133, 134, 136, 137, 146–151, 181, 182, 185, 189, 190, 194, 195, 197, 199, 201, 203, 205, 207, 217, 218, 226, 228, 234
ईडर का परगना, 138
का किला, 139, 140, 142, 144
ईडर के इलाके, 175
ईडरवाड़ा, 140, 144, 176
इण्डिया गजेटियर, 151
इन्दरसिंह जोधा, 134, 143
इन्दरसिंह, भवानीसिंह का भाई, ईडर, 149
इन्स, मिस्टर, 5
ईसबदास जी राठौड़, 61
उदेभाण जी, 108
उदेरण, उंडेरण ग्राम, 156

उदैराम जी जेठावत, घटियाल का ठाकुर, 134, 137, 143
उदयपुर, उदैपुर, 137, 138, 185
उदयपुर का महाराणा जवानसिंह, 167
उदयसिह, 203
उदैसिह, रणासन का ठाकुर, 138, 141
उदैसिह, सूरतसिह का पुत्र, 148
उमेदा खवासिन, 213
उम्मेदसिह, करणसिह का भाई, नागेल, 159, 160
उम्मेदसिह महाराज कुमार, ईडर, (लाल जी महाराज) 134, 175, 177, 179–184 193, 195, 199, 203, 205–208 219
उम्मेदसिह के पुत्र, 171
उम्मेदसिह, सरदारसिह का ज्येष्ठ पुत्र, 171
उंटडी गाव, 164
ऊडणी ग्राम, 126, 144
ऊदाजी, 59, 60, 186
ऊदाजी पँवार, 3, 7
ऊदा देथा पचम गाव का, 66
ऊनड़जी (उमर जी), 94
ऊमलियारा (के चौहान), 105
ऋषभदेव, 147
एडवर्ड चतुर्थ (इगलैण्ड का राजा), 202
एल्फिन्स्टन, माउन्ट स्टुअर्ट
एल्फिन्स्टन, मिस्टर, (गवर्नर) 130
ऐंदरा, 110
ऐजन कुंअरी, महाराजा रायसिह की पुत्री, 143
(म. माधवसिह, जयपुर, की पत्नी)
ओड, कमोद, 112
ओडा, 227
ओरियण्टल मेम्वायर्स, 1, 17, 18
ओलपाड़, 44
ओविङ्गटन, 14
कंदोरणा (कण्डोरना), 51
कच्छ, कच्छ का रण, 48, 50, 58, 69, 107, 132
कच्छ (के जाड़ेजा), 69, 96
कटोसण, 107, 111, 115–118
कड़ी, 25, 26, 29, 31, 32, 34, 35, 37–40, 87, 88, 112–114, 117, 129
कडेल गाव, 39
कणत्रीवास, 164, 165
कण्डोल की जागीर, 164, 165
कदवाहण, 110
कनका जी, टीटोई का ठाकुर, 177–181, 187, 189, 199
कन्ताजी भाण्डे (कदम भाण्ड), 3–6 9, 71, 75, 76
कमाल, 120
कमालउद्दीन, 24, 26, 28, 29, 55, 83
कमालुद्दीन खा, 36
कमाल मोहम्मद, 55, 56
कमालिया, 101, 102
करण जी, वीरमदेव का पुत्र, (राणा, दाता) 158–161
करणपुर गाव, 165
करमशी (वनिया) 107
कर्णसागर, 100
करणसिंह, महाराजा अहमदनगर, 168, 197, 209, 221, 228

कर्णसिंह, संग्रामसिंह का पुत्र, 149
करणीमाता, 132
कराल गाव, 127
करोड गाव, 129
कलोल, 26, 35
कल्याणमल, राव, ईडर, 153
कल्लूभाई देसाई, 65
कसबाती, मुसलमान, 54, 138
कॉकबर्न, कर्नल, 18
काज गांव, 110
कानोडी (ली), 110, 112
कादा राठौड़, 65, 66
काकरेज (के बाघेला), 105
काकरेज गाव, 107, 127, 165
काकसी ग्राली गाव, 97
काकाजो, 172
काका जेनारा, सोलकी, 66
काठियावाड, 22, 48, 58, 60, 73, 91, 187
काठियावाड़ गजेटियर, 105
कानजी थानेदार, 104, 208
कानजी रात, 105–108, 1·0, 113
कानड़देव, तरसगमा, 153
कानपुर, 110
कानेर, 67
कानोजी, 116, 118
कान्होजी राव, कान्हडदेव, राणा दाता, 24–26, 29, 30, 32, 34, 48, 167
कार्नवालिस जहाज, 37
कावरसिंह ब्राह्मण 6
काबुल, 5
कामटी, 101, 103, 119
„ , 107
काशी, 105
किशोरसिंह, 132
कीगविन रिवेलियन, 14
कीटिंग, कर्नल, 1, 15, 33
कीडी गाव, 218
कीम कटोद्रा गाव, 43
कीरतीगढ (कीर्तिगढ), 118
कीरताजी बारहठ, 163
क्रीग, लेफ्टिनेंट, 37
कुडाली गाव, 39
कुण्डल गांव, कुंडले, 81, 85, 86, 91, 155, 159
कुम्भा भाटी, 141
कुरजा (पहाडी), 107
कुवावा, 209, 220, 226
कुदाल कुंवर, 61
कुशिया जी झाला, 65
कूपावत, 126
कूंपोजी ठाकुर, कोली, 107, 112
कूकडिया ग्राम, 144
कूमाविशदार, 71
कूरा, 185
क्लार्क, विलियम, सर, 38, 40
क्रुइकशैंक, लेफ्टिनेंट, 232
क्यूमिन, 104
केड़ा (खेड़ा) परगना, 42
केदारसिंह, तरसंगमा, 153
केरवाडा, 115
केशरी का तालुकेदार, 56
केशा भाई, 65
केशर मकवाणा (का कुंअर हरपाल), 115, 118

केसरीसिंह, बीजापुर का, 140
केसरीसिंह, पोसीना का ठाकुर, 163
कैम्पवेल, 104
कैल्टिक, 104
कोइतिया, 110, 112
कोक वाव, 110
कोट, 99
कोट के राजा, 54
कोटड़ा (नापाणी), 97
कोटडा (मागाणी), 97
कोटडा दरवाजा (दांता), 167
कोटा, 206, 207
कोठड़ा गांव. 177
कोठारिया ग्राम, 97
कोठियो वखतो, राजपूत, 158
कोन्तीम्रो, 110
कोरल परगना, 40
कोरी गाव, 44
कोली ठाकुर (धरोई का), 223
खण्डणी, 72
खंडेराव दाभाड़े, 1, 3, 7 10, 25, 87
खंडेराव, महाराजा, 121
खम्भात, 2, 27, 28, 33, 37, 43, 54, 58, 72, 78, 79, 93
खवास, 104
खाभी (स्तम्भ), 99
खाटी गांव, 160
खानदेश, 44, 232, 233
खाभीवास, 164, 165
खास्की, 203, 204
खिडकी की लडाई, 1
खिनोड़ गांव, 171
खीरसरा, 97
खुमाणसिंह, हठिया जी का पुत्र, प्रतापसिंह का पौत्र, वांकानेर का ठाकुर, 144, 156, 170, 173, 174
खेडगांव, 178
खेडा, 4
खेमचन्द (कारभारी), 218, 220, 230
खेराला, 125
खेरालू (केराला), 64
खेरोज गांव, 163
खेरोड, 195–197
खोडीदान चारण, सिरोही, 180
खोरा गांव, 64, 66
गंगवा ग्राम, 155
गगाधर शास्त्री, 42, 44
गजरावाई, 25, 26
गजसिंह, राणा मानसिंह का पुत्र, 156, 157, 169, 171
गजेटियर ग्रॉफ इण्डिया, 116
गडवाडा, गढवाड़ा, 133, 150, 162, 163
गढवी ग्राणदा, 65
गणछेरू, गणछेरा गांव, 156, 159
गणपतिराव, 41
गम्भीरसिंह, महाराजा ईडर, 62, 134, 149, 168, 173–178, 185, 187, 194, 197. 198, 201, 204–206, 208, 209, 216, 218, 219
गरासिया, 54
गलोडा गांव, 223
गवरीदड, 197
गागड का सरदार, 54
गायकवाड का वश वृक्ष, 2
गारडन, 104

गारियाधार, 55, 56 94
गिरनार, 71
गुमानसिंह चांपावत, 144
गुमान सीसोदिया, 166
गुलाब कुंअर बा, 203, 207
गूजर वेदी गांव, 65, 66
गूमा गाव, 71
गेडी गाव 66
गेना बाई, 24, 69
गोकुल जी, 220
गोंडल, 96
गोडार्ड, जनरल, 16, 17
गोता गाव, 203, 204, 223, 228, 231
गोदड काठी, 114
गोधाणी, 161
गोपाल जी झाला, 64, 65
गापालसिंह ठाकुर, 187, 188, 194, 195, 197–202
गोरी पटेल, 106, 107
गोरखदास वडवा, 159
गोरल (के ठाकुर की मृत्यु) 206, 207, 231
गोरवाड, 134
गोरिम्भा, अरब, जमादार, 62, 63
गोलेतर राजा जी, 65
गोविन्दराव गायकवाड, महाराजा, 13, 14, 21, 22, 24, 26, 28. 41, 43, 48, 69, 129
गोसाइन (गोसाईं) का लश्कर, 33
गोहिलवाड, 86, 93
ग्लोसेस्टर, ड्यूक ऑफ, 202
ग्वालियर (मध्यभारत), 18
..., 143
घटेराणा, 112
घना राबा, 65
घरोई (का कोली ठाकुर) 223
घाटी ग्राम, 105, 111, 184
घाटोशाणा, 110
घूरील ग्राम, 193
घूंवा ग्राम, 144
घेलो जी गढवी, 170
घोघा समुद्र तट, 43, 55, 78, 81, 87, 93
घोडवाड (का ठाकुर), 231
घोडादरो तालाब, 225
घोडासर (के डाभी) 105
घोडियाता गाव, 157, 158
घोराड का ठाकुर, साहबसिंह 162
चन्दकुंवरी, चहुआणी, 213
चन्द्रसिंह जी झाला, 58, 61, 63
चन्दूर, 100, 107
चधुका कसवाती, 66
चम्बल (व नर्मदा के बीच के प्रदे... 10
चरोतर, 165
चादणी, 143, 145, 146, 1... 199, 220
चादणी का छुटभाई, 178, 180
चादा भाई, झाला, 65
चादेला, 132
चांदोजी नीवज, 153
चांपलपुर गाव, 150
चाचर, 100, 101, 121
चित्रासणी, सिरोही, 152–154, 169
चित्तोड, 194, 195

चिमना जी भ्प्पा, 6, 22
चीकली या चीखली परगना, 26, 40, 42
चीतल, 81, 85
चीबोड़ा गाव, 144
चुंवाल, 99, 104, 108, 110, 115, 127
चूडा, 43, 68, 69
चूडासमा, 71
चुनीनूपुरा (चूंडानीनुं पुरू), 110
चूरीवाड, 148
चोडवागड (चोड वाड), 50, 69
चौरासी परगना, 22, 42
छनियार, 110, 112
छप्पन, 136
छवडा परगना, 95
छरियाल, 112
छागोद गाव, 162
छाजूराम, 219
जगूजी, कुलपुरोहित, 133
जगतपाल, तरसगमा, 153
जगतसिंह, श्रभयसिंह का पुत्र, सुदामणा, 162, 163
जगतसिंह, राणा, दाता, 164-167
जगतो जी, श्रमरसिंह का पुत्र, 118, 156, 157
जटवाड, 88
जनको जी, गायकवाड़, 3, 142
जमनाबाई, खडेराव महाराज की रानी, 3
जम्बूसर, 9
जयपुर, 131
जयमल, राणा बाघ का भाई, दाता, 153
जयसिंह, जयसिंह देव, दाता, 152-155
जयसिंह, सवाई, महाराजा (जयपुर), 135
जवांमर्दखा बाबी, 83, 138
जवानसिंह, महाराणा उदयपुर, 167, 168
जवानसिंह, 209, 226
जसकुंवरी चहुवाणी, 212
जमदन, 93
जसपुर-बेलनू ग्राम, 157
जसवन्तसिंह, 107
जसवोजी, मानसिंह का पुत्र, राणपुर, 156, 157 169
जसवोजी, सुदासणा, 170, 171
जसवो जी के पुत्र, 170
जसा खसिया, कोली, 79
जसुबाई, धायवहन, 213
जस्सा जकाणा, 118
जहांनाबाद, 137
जागरापुर, 106
जाजमेर, 79
जाडेजा, जाडेचा' 52
जॉन चाईल्ड, सर गवर्नर, 14
जान मोहम्मद, श्ररब जमादार, 145
जामतसिंह, 196
जामनगर, 105
जम्बू, जाम्बू, 59
जार्जनामा, 42
जालिम सिंह, भवानी सिंह का भाई, मोडासा का ठाकुर, 134, 149, 150, 197, 201, 204, 209, 219, 224-226, 228, 230
जालिमसिंह, नाहरसिंह का पुत्र, 165, 168, 169

जालिया (देवाणी), 65, 97
जावा, 76
जिजूवाड़ा, *107, 114, 115*
जिनोर परगना, 18, 40
जिवाई भूमि, 66
जीया जी, जेठवा, राजपूत, 82
जीवन गढवी साहू खम्भलाव का, 66
जीवण तापडिया, 66
जीवणदास चापावत, 132, 137, 140, 142
जीवा कलाल, 165, 166
जीवा जी जेठवा, राणा (पोरबन्दर के) 85
जुमस्मात उल् मुल्क, 3
जूनागढ, 48, 55, 56, 59, 69, 82, 83, 90
जूनागढ़ (के नवाब), 114
जेठा जी, 66
जेठा पटेल, 111, 112
जेविवम (पुर्तगाली फिरंगी), 33
जेतपुर, 160
जेतपुर (का कूंपावत), 85
जेहोजी मकवाणा, 107
जैतमाल, दाता का राणा, 152
जैतसिंह भाटी, 144
जैतसिंह, भीडर का, 137
जैसलमेर, 131, 199
जैस्यघ, राजा सवाई जयसिंह, महाराजा जयपुर, 137
जोधा, *126*
जोधपुर, 9, 123, 132, 133, 149, 51
ोधपुर के राजा अजीतसिंह, 131
जोधपुर नगर, 171
जोराजी, पीथापुर के वाघेला सरदार, 61, 118
जोरावरसिंह कुंअर, मूंडेटी, 132, 137, 138, 140, 147
जोवास गांव, 147
झागरा का वन, 107
झार गढवी, 105
झालावाड़, *67–69, 88, 89*
टपसिकोर जहाज, 37
टीटोई ग्राम, 143, 150, 184–186, *189, 199, 220*
टीटोई के ठाकुर का लडका, लालजी, 189
टीकर, 102
टीकाघाड, 163
टोगो वनोल, गाव, 170
टोडा गाव, 160
ट्यूटॉनिक, 104
ठासरा परगना, 9
ठोडडा, 185–187, 199
ठोडड़ा का ठाकुर, 177
डंकन, मिस्टर, 22, 26, 27, 34, 37, 72
जेम्स कनिङ्घम, ग्रान्ट डफ, 1, 2
डभोई, 1, 7, 15, 17, 18, 19
डाकोर, 9
डांगरवाडा, 118
डावोल गांव, 171
डालसणा गाव, 171
डूंगरपुर, 176, 181, 189, 190, 230
डेकावाडा, 110

डेलामेन, कैप्टन, 223, 231
डेविड प्राक्टरलोनी, सर, 187
डेविड प्राइस, लेफ्टिनेन्ट, 39
डेविड वेडरबर्न, जनरल, 13
डोडीवाडा, 102
ढाणी, 100
तखतसिंह, ग्रहमदनगर, 226
तखतसिंह, रावल, 150
तखतसिंह, कर्णसिंह का पुत्र, बाद में जोधपुर का महाराजा, 149
तरमंगमा, 153, 155, 162, 172
तजकिरात उरसलातीन-ए-चगताई, 131
तलाजा, 78, 79, 91, 92
तापी नदी, 21
ताप्ती नदी, 16
तारंगा गाव, 171
ताराबाई, 11
तालवडा (कोली), 105
तालेगांव, 1
तुजुके जहांगीरी का रॉजर्स और बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद, 58
तुर्क, 117
तेजल गाव, 171
त्र्यंबक जी डेंगलिया, 43, 44
त्र्यबकराव दाभाडे, 3, 6, 10
थरा, 107
थाणां गांव, 159, 160, 163, 164
थामस, मेजर, 190
दरोवी, 230
दला, गढवी, 66
दलपतसिंह (राजकुमार देवलिया के), 189
दशलाणा, 110 112
दांगडवा, 110
द्राफा, 97
दांता, 98, 144, 150, 154, 157, 160, 163, 164, 187, 207
दांता की वंशावली, 152, 154
दादो, 110
दाम नगर, 95
दामाजी गायकवाड, शमशेर बहादुर, 2, 3, 9-13, 25, 71, 94, 102, 129, 133, 151, 157
दामाजी का छोटा पुत्र फतहसिंह, 99
दामोदर मोहब्बत सिंह बारहठ, 182, 195
दारावाडी, 107
दिल्ली, 76, 107, 131, 133, 157
दीपचन्द, दीवान, 118
दुर्जनसिंह, प्रधान, 198, 199, 204, 219
देतरोज, 103-106, 108
देरोल का राजा, 163
देवकरण, रावल, 66
देवकुंअर, बाई श्री, 61
देवलिया, 189, 193
देवीदास, 132
देवीदास वाघेला, गोधणी का ठाकुर, 159
देवीसिंह चौहान, 139
देशनोक, 132
देशोतर, 138, 141
देढोर, 231
दोहद, 3
दौलतकुंवर, 199, 212
दौलतराव, 18

दौलतसिंह, जोरावरसिंह का पौत्र, मूंडेटी, 148
ध्रांग्ध्रा, 58, 60, 66-69, 88
ध्रांग्ध्रा के राजाओं का वंशवृक्ष, 70
धूमा (की प्रसिद्ध पहाड़ियां), 222, 223, 227
धन्धुका, 43, 61
धन्धुका तालुका, 71
धनाल, 134, 162, 163
धनाली, 153, 157, 161
धनाली का ठाकुर, 152
धरडा, 97
धरोई गाव, 163
धर्मपुर, 79
धाघरपुर, 114
धाचार ग्राम, 155, 156
धीगाजी, पूजाजी का पुत्र, 156
धीरजी, खुमाणसिंह का पुत्र, वाकानेर, 175-192, 199
धीरतसिंह, अमरसिंह कूंपावत का पुत्र, 144
धोलका, 6, 54, 56, 58, 72, 93, 123
धोलका परगना, 41
धोलका के कसबाती, 55
धोलेरा, 71, 72
धोनवाल (की वंशावली), 89, 96
धोपद, 21
नखी तालाब, आबू, 168
नगराज धायभाई, 136, 137
नजीबउद्दीन, 10
नडियाद, 10, 15, 41, 43, 69
भाई, 110, 111
नर्मदा नदी, 7, 20
नवा नगर, 51, 97
नवावास, 150, 163
नांदोद, 1
नागेल (नांगल), 157, 159, 161, 165
नागौर, 131
नाथी पासवान, 213
नादरी गाव, 207, 208
नानजी डूंगरशी, 65, 66
नान्ही मारवाड, 230
नाना कोठारण गांव, 163
नाना फड़नवीस, 15, 18, 21, 22
नाना भाई नगरसेठ, 154
नाना मियां, 56, 57
नापाड़ (नापार) गांव, 43, 123
नारमन, 104
नारायण जी की छतरी, 108
नारायण जी, 108, 116
नारायणदास का चबूतरा, 108
नारायणदास, राव, 61
नारायणपुरा, 110
नारायणराव, 13, 15, 16, 65
नारायणराव, माधव, 120
नारायण सर, 133
नाहरसिंह, अभयसिंह का पुत्र, सुंदामणा, 162
नाहरसिंह कूंपावत, प्रधान, 150
नाहरसिंह, जगतसिंह का भाई, दाता, 164, 165, 267, 169
नाहरसिंह, पोमीना का ठाकुर, 163
निजाम उल मुल्क, 3, 7, 8
निरामाली गाव, 127

नीवाजखां, कमवाती, 56
नूर मोहम्मद, 79
नेंदरड़ी गांव, 163
नेक आलमखां, 8
न्हानसडा, 166
पंचासर, 100
पतजी, फतहसिंह का पुत्र, 172
पनार, 112, 115
पनार का ठाकुर, कुंपोजी मकवाणा, 111
परवडी, 64, 66
परभारी (किराए के). 129
परांतीज, 125, 135, 151
पलखडी गाव, 156, 170
पर्वतसिंह (मडू के ठाकुर का लड़का), 195, 196, 199, 201
पवैया, पावैया या हिजड़े, 102, 121
पहाड़खान, धनाली का, 160, 161
पहाडण गांव, 147
पहाडजी, ठोडडा का ठाकुर, 176
प्रहाडसिंह, 187, 189
पाटड़ी, 48, 50
पाटड़ी के देसाई, 88
पाटण, 12, 82, 85, 112
पॉटिन्ज़र, लेफ्टिनेंट, 224, 231
पाटिया वलेचा, भीलो का गाव, 184
"पाण्डुरङ्ग हरि" उपन्यास, 44
पाणोदरा गाव, 159
पादरा, 9
पानीपत, 25
पनीयाली गांव, 159, 170
पानोल गांव, 173, 174
पानौरा, 144, 222, 223, 225-227, 232, 234, 235
पामरी (रेशमी चादर), 106
पारकर (अंग्रेज), 33, 34
पाल, 97
पालनपुर, पाल्हनपुर, 9, 12, 133 157, 158, 160. 165, 168, 218, 227
पालनपुर, एजेन्सी, 97
पालनपुर का दीवान, पीरखान, 150
पालनपुर के राजनीतिक अधीक्षक, 210
पालया गांव, 179, 197, 198
पालया का ठाकुर रामसिंह, 176
पालीताना, 87, 93, 94
पालीयावल्ली, 64
पापडी गांव, 164
पिटलाद, पितलाद परगना, 6, 40, 43
पीताम्बर भवानी, शा, 66
पीरखान, पालनपुर का नवाब, 150
पीरम, 85
पीरमली, 231
पीलाजी गायकवाड, 3-6, 9, 25, 75, 76
(का पुत्र), 7, 8
पुंजपुर, 158, 160, 165
पुथू, 111
पुनादरा, 127
पुरन्धर (की सन्धि), 116
पूंजो जी, पूंजा, दाता, 152-156, 169
पूना, 21, 22, 43
पूना की सन्धि, 44
पूनासण गाव, 144
पेथलोदर गाव, 159
पेथापुर, 127, 143, 167
पेशवा, 6, 21, 146
पेशवा की वंशावली, 6, 7

पोरबन्दर के राणा जीवा जी जेठवा, 85
पोरवाडा, 138
पोल, 140, 205, 206, 223, 224
पोल के राव, 175
पोसीना, 123, 134, 150, 162, 195–197
पोसीना (के वाघेला), 138, 144
प्रतापगढ, 218
प्रतापसिंह चांपावत, 133, 137, 140, 142–144
पृथ्वीराज, चन्द्रसिंह का पुत्र, 58–61, 63, 64, 67
पृथीसिंह, 226, 228, 230, 231
पृथ्वीसिंह, गजसिंह का पुत्र, 157, 158, 171,
प्रेस्कॉट, लेफ्टिनेंट (पालनपुर एजेन्ट), 218
फकीरुद्दौला, 10, 11
फड़नवीस, 99
फतहसिंह, 13, 14, 16, 18, 21, 25, 130, 218, 219, 220, 226, 230
फतहसिंह, अमरसिंह का पुत्र, 172
फतहसिंह का पुत्र, अतरसिंह, मुहू, 178
फतहसिंह का पौत्र, गोपालसिंह, अतरसिंह का पुत्र, 178
फतहसिंह चांपावत, प्रतापसिंह का पौत्र, 144
फतहसिंह, मुहू का ठाकुर, 178
फतहसिंह, सुदासणा, 162
फतेहखान, दीवान पालनपुर, 168
फर्ग्युसन शियर, 131
फाजिलपुर, 4
...ों जगत, 221, 225, 231
फार्बस, अलैक्जेण्डर किनलॉक, 236
फार्बस, गुजराती सभा, 67
फार्बस, जेम्स, मि०, 1, 17–19
फूलकुंवर देवड़ी, 155
फ्रेजर, 104
फ्रांसिस, ईवी, लेफ्टिनेंट, 39
बकरी की लड़ाई का गीत, 67
बखतकुंवरी चावडी, 213
बखतसिंह, 61, 79, 81, 82, 84–87, 93, 132, 133
बखता, 90
बखता जी जीता जी, खाभीवास का ठाकुर, 164
बखतो जी, महावड़ का ठाकुर, 163
बच्चा, जमादार, 130
बच्चा जी पण्डित, 151
बडगांव, 18
बडनगर, 12
बडियावी ग्राम, 143
बड़ोदा, 7–9, 14, 17, 18, 21, 22, 25–27, 31–34, 40, 42–44, 87, 88, 114, 187, 189, 192, 206, 227
बडोद का ठाकुर मोहकमसिंह, 132
बाडोली, 140
बनास, 123
बनेसिंह, 111
बम्बई, 22, 78, 87, 130, 192
बम्बई का गवर्नर, 168
बम्बई गजेटियर, 105, 172
बलात, 99
बलोली, 185

बहादुरखा, पालनपुर का दीवान, 159-161

बहादुरसिंह कूंपावत, वडियावी का ठाकुर, 143

बहावलपुर, 131

बहुचरा, 99, 101, 102

बहुचरा, पुराण, 100

वासवाडा, 176, 193

वाकलकूं, 99

वाघ, राणा, ईडर, 153

वाघपुर (के राठौड़), 105

वाघेल, 100

बाजी भाई झाला, 66

वाजीराव पेशवा, 6-8, 10, 22, 43

वाजीराव (द्वितीय), 16

वादरवाडा, 232

बापा रावल, 79

वापू पँवार, 41

वापू मियां, 58

बाबा जी (अप्पा जी), 24, 26, 32-35, 36, 37, 39, 40, 48, 52

वावा जी, 69, 86-88, 90

वाबा जी, आपा जी, 129

बामणिया गाँव, 160

वामनवा गाँव, 184

बाम्बे गजेटियर वा० 9, भाग 1 पृ 519, 68, 130

जर्नल ऑफ दी वाम्बे ब्राच ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 172

बायड़ ग्राम, 149, 151

वायड़ (के ठाकुर), 125

वारेजडा, 65

बालयंत्र, 103

वालशासन, 110

वालसिनोर, 176

वालाजी बाजीराव, 11

वालाजी विश्वनाथ, प्रथम, पेशवा, 1

वालापुर की लड़ाई, 1

वावड़ी, 220

वावल कोठिया गाँव, 163

बीकानेर, 132

बीजापुर, 12, 43, 127, 135, 140, 149, 195

बुधसिंह, ठाकुर, 195-197

बुरहानखा निजाम शाह, 6

बुशियर, 13

बूडासन (बूडासण) गांव, 35, 38

बूत, 99

वेचर, 100, 102

वैथ्यून, कप्तान, 41

वैलेन्टाइन, मेजर, (बाद में कर्नल), 130, 185, 187, 188, 194, 201, 205, 206

वैलेन्टाइन, ले० क०, 178, 182-184

वोखार, 220

वोताद, वोटाद, 55, 93

वोरसद, 10, 133, 138, 140

ब्रह्मखेड़ गाव, 147

भंकोडा, 108, 110-112, 116

भग्गा रावा, 65

भगवानदास मेहता, 66

भगवान भाई, गायकवाड़ का सेना नायक, 63, 66

भडौच, 18, 20, 21, 27, 115

भडौच के नवाब, 13, 15, 16

भद्रमाला गाव, 158

भद्रिका, 73
भवजी प्रतीत, 164
भवजी जीताजी, 175
भवनाथ महादेव, 150, 195
भवानजी वाघेला हाथी भाई, 66
भवानसिंह, टीटोई का ठाकुर, *149*, 150
भवानीदास, 65
भवानीसिंह (लाल जी), 134, 199
भवानीसिंह, महाराजकुमार, महाराजा, ईडर, *146-149*
भागड, 71
भाई जी झाला, 64
भागचद जी गढवी, 159
भाडवा, 97
भाणजी राव, ईडर, 153
भाणपुर, 143
भाभरा कुलदेव, 63
भादर नदी, 62
भायातो, 92
भारतसिंह, 201
भाल प्रान्त, 61
भालूसणा गाव, 169
भावनगर, 48, 72, 76–79, 81, 86, 87, 91, 93, 207
भावजी, झाला, 64
भावसिंह 76–78, *81, 85, 94*
भावापीर, 15
भावा मिया, 56–58
भास्कर राव, 18, 20
भीखा जमादार, 165
तलाव, 71
गह (उदयपुर के राणा), 185
भीमाल, 150
भीलोड़ा गांव, 176, 181, 185, 187, 227
भुज, 107
भूतावड गाव, 181
भूतावास गांव, 164
भूपतसिंह, भाकोडा का ठाकुर, 34, 38, *110–113*
भेटाला गाव, 144
भोज (*मालवाधिपति*), 3
भोजराज रावल, 170
मगल पारख, 24, 30, 31
मडोवर, 132
मक्का, 73
मच्छुकांठा, 96
मणीयाल ग्राम, 143
मदनशाह, 118
मदारशाह की टूंक, 140
मयानाथ जी गढवी, 159
मयाराम, 66
मरतोली का मानू, 118
मरू, 76
मल्हार राव, *25–27* 29, 31, 33–35, 37, 41, 48, 58, 69, 86, 88
मल्हार राव गायकवाड़, 112–114
मल्हार राव होल्कर, 121, 129, 138
मलिक उच्छा, धनवाड़ का तालुकेदार, 56
मलिक फतह मोहम्मद, *56*
मलिक मियां, 58
मलिक मुहम्मद, 55
महमूद बेगडा, 116
महमूद सुलतान (दूसरा), 153
महमूदाबाद, 5
महाद जी (पीला जी के भाई,) 9

महादजी सिंधिया, 17, 18, 20, 21
महाराव, 96
महावड गाव, 163
मही, 78
महीकांठा, 48, 78, 79, 91, 92, 105, 115, 123, 127–130, 154, 168, 189, 190, 192, 201, 227, 231, 233–235
मह, मुह्र, 143, 144, 150, 151, 194, 195, 201
माइल्स मेजर, 133, 165, 168, 178, 182, 201, 218
मांकड़ी गांव, 155
मांगोजी (हरपाल का तीसरा पुत्र), 59
माइल, 111
माडुवा, 115, 127
माणक जी, 13
माणसा, 127
माणिकनाथ बावा, 172
माणिक बुर्ज, 172
मातर, 4, 43
माता की तूंबडी, 132
मायासूल, 194
माथुर, जे० एल० (लेखक), 45
माधवराव पेशवा, 13
माधवराव (प्रथम), 15, 21
माधवराव (द्वितीय), 16
माधवसिंह, महाराजा, जयपुर, 143
माधा भाई, 94
मानदास, 204
मानपुर, 226, 232
मानसा गांव, 183
मानसिंह चौहान, मामा, 132, 133, 140, 141, 143, 203
मानसिंह सीसोदिया, 144
मानसिंह, पूंजा जी का पुत्र, 156
मानसिंह, अभयसिंह का कुंअर, 162
मानसिंह (जोधपुर महाराजा), 206
मानाजी, 21
मानाजीराव गायकवाड, 100, 102, 103
माना जेठवा, 90
मानामाई, गोरमाई, 72
मारवाड 81, 132, 133, 185, 190, 199, 204
मारवाड़ का राजा अभयसिंह, 8
माल जी झाला, 64, 65
मालवा, 3, 10
मालाबार, 20
मालिआ, 48
मालिया, 50, 68, 89, 97
माही (मही), 4, 5
मिगुएल डीसूजा, सर, 72
मियाणा, 68
मीरजी सेठिया, 219
मीरात-ए-अहमदी, 58
मीरासण, 199
मीरू (सिंधी जमादार), 197, 199
मुकुन्दराव, गायकवाड़, 26, 38
मुनईगाव, 144
मुनीमखां, सूरत का शासक, 3
मुरादबख्श, 133, 151
मुल्कगीरी, 50
मुल्लां फीरोज, 42
मुहम्मद शाह, बादशाह, 3

मूंडेटी, 144, 185, 186, 197, 203–207, 209, 219–221, 224, 225, 227, 228, 230, 231
मूंडेटी का ठाकुर मानसिंह, 147
मूंडेह (महुवा), 43
मूनिया गाव, 140
मूली के परमार, 55
मूली लाडेरी, 97
मूलू बीबी, 57
मूलो आशा, पटेल, 66
मूलोजी झाला, 64
मेगणी, 97
मेघजी, तरसगमा, 153
मेघराज, 94, 118
मेघराज बाघावत, बारहठ, 158, 159
मेघा माई झाला, 65
मेघाण, 114
मेपजी, चूडासमा, 61, 62
मेरासण (वेरणा) गाव, 143
मेम गांव, 144
मेवाड़, 79, 125, 144, 147, 184, 226
मेवासीयों (उपद्रवी जातियां), 127
मेहमदपुर गाव, 157
मेहर जी, *71*
मेहवास, 54
मेहरू सिन्धी, 165
मैकडोनल्ड, कप्तान, 37, 104
मैक्नीपॉड, 104
मैकिन्टाश, 104
पा, 122
ासहा गांव, 164, 165
मोडासा, 125, 125, 134, 142, 143, 149, 151, 220
मोनपुर, 138
मोमनवास गांव, 164
मोमिनखां, नजीबउद्दौला, 9-12, 138
मोरबी, मोरवी, *48*, *89*, *96*
मोरशिया ग्राम, 61
मोरार राव (दासी पुत्र), 41
मोरिज, मेजर, 231
मोवा, 97
मोशिये जीन (मूसा जान), 22
मोहकमसिंह (बड़ोद का ठाकुर), 132, 133
मोहकमसिंह जोधा, 137, 140
मोहकमसिंह वाघेला, 153
मोहब्बतखाँ (का लडका), 84
मोहबत बारहठ 149
मोहबतसिंह ठाकुर, मुदासणा, 167, 172
मोहबतसिंह, फतहसिंह का पुत्र, 172
मोहब्बतसिंह, 195, 198
मोहम्मद शाह, 131
मौले मलाम, 115
यदुनाथ सरकार, प्रोफेसर, 45
यशपातिल दामाड़े, 1
यशवन्तराव, 10
यशवन्तराव (त्र्यम्बक राव का पुत्र दामाड़े) 8
रंगाजी सरदार, 10
रेटोडा गाव, 181
रघुजी कदमभाण्डे, 7
रघुनाथ, गोटा का जागीरदार, 147
रघुनाथ, भण्डारी, 131

रघुनाथ राव, 11, 16
रघुनाथ महीपतिराव (काका जी), 23, 130
रणछोड जी (का प्रसिद्ध मन्दिर), 9
रणवटी' दस्तावेज, 64
रणशीपुर, 172
रणासन, 221
रतनजी भाना, 64
रतनपुर गाव, 165, 203, 228
रतनसिंह, 9, 10
रत्नसिंह, करणसिंह का पुत्र, 160
रतनसिंह का पुत्र मार्वसिंह, 76
रतनसिंह, पावड़ी का ठाकुर, 163
रतनसिंह, सुदासणा, 161
रतना राठौड़, 223
रतलाम, 208
रमलसर, रमलेश्वर, रमणेश्वर सरोवर, 134 144, 195
रहठाण, 93
राहियो बनिया, 157
राघोवा, 1, 11–15
राजकोट, 96
राजपीपला, 1, 115
राजपुरा, 97
राज भारती, 226, 227
राजा जी, 61
राजाराम (शिवाजी का पुत्र), 1, 11
राजुल, 82, 85
राणकदेवी का मन्दिर, 61
राणपुर, 43, 93, 157
राणोजी सिन्धिया, 138
राधनपुर, 12, 156, 170
राधनपुर का नवाब, 168
रानी के महल (ईडर), 147
राबर्ट ग्राण्ट, सर, 232
रामदान नक्कारची, 139
रामपुर रोतिहा, 25
रामभाण जी, पेथापुर का गूजर, 152
रामराजा, 79
रामशाह, 79
रामसिंह, 108, 110
रामसिंह जी, झाला, चूडासमा, 64, 65, 66
रामा भाई, 62, 64
रायगढ, 142, 191
रायचद, पडित, 137
रायसल जी, 71
रायसिंह, महाराजा, 132–134, 136, 138, 140, 142–145, 151
राव जी, 23–25, 27–31, 40, 41, 130, 134, 138, 140, 144
राव वच्चा पण्डित, 134
रावल देवकरशणवाला पानाशीण गाव का, 66
राहतलाव बदर, 71, 72
रिचार्ड तृतीय, 202
रुस्तमअली, 4, 76
रूपाल, 138
रूपाल (के ठाकुर), 220, 228, 230, 231
रोजका गाव, 61, 62
रोडा गाव, 155
रोहीचा, 132
रोहीडा गाव, सिरोही, 134
लश्तर, लश्तर, 24, 5

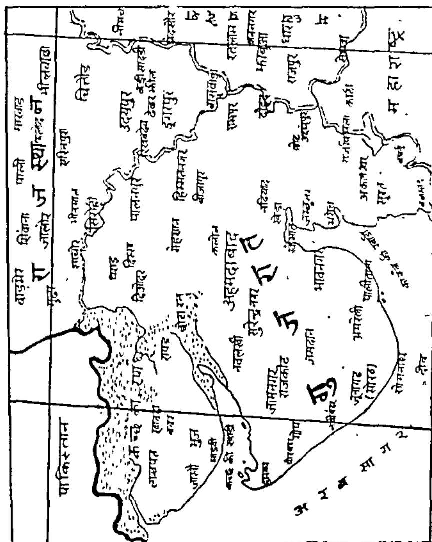
लखू सेठ, 227
लताड, 88
लाखाजी, भाला, 64
लाखा भाई, 62, 64
लाखोजी ठाकुर, 94
लाठी, 93, 94
लाडखान, धनाली का ठाकुर, 160, 161
लार्डनर, कप्तान, 230
लालकुंवरी श्राहड़ी, 213
लालजी साहब, 194
लालजी, धीरजी का पुत्र, 180
लालजी महाराज, उम्मेदसिंह महाराज कुमार, ईडर, 183
लालजी पुरोहित, 187
लालजी (टीटोई ठाकुर का लडका), 189, 190
लालमियां, 116
लालसिंह, ऊदावत, 133, 134, 143
लीबज (नींवाज), 155
लीमडी, 59, 62, 63, 64, 111
लीमडी के महाराणा, 65–69, 72, 88
लूणावाडा, 3, 123, 127, 141, 176
लेंवो, 117
लेविस, लेफ्टिनेन्ट, 229
लेंग, कर्नल, महीकाठा का पोलिटिकल एजेन्ट, 169
लोधीका, 97
लोलियाना, 66
लोवाट, लार्ड, 105
लोवेल, 37
वखनापुर, 221, 230
... तालुका, 172
वडाली, 97, 221, 223, 226
वडूसण गांव, 159
वढवाण, बढवाण, 58–65, 67–69, 88, 111
वदन कुंवरी, 213
वना, पासवान, 213
वरसोडा गांव, 127, 183, 203, 221
वराली गाव, 175
वलभीपुर, 79
वल्लभ भट्ट (मेवाडा ब्राह्मण), 100
वला ग्राम, 93, 94
वलासण, 203, 204
वसाई गाव, 155–157, 171, 181, 185
वॉकर, मेजर (कर्नल), 27–32, 34–38, 41, 42, 48, 50, 51, 53, 54, 58, 67, 68, 72, 78, 79, 81, 87, 91, 96, 120
वाँकानेर, 58, 61, 67, 69, 88, 144, 173, 181, 185, 192
वाजसूर काठी, 85
वाण, 133
वात्रक नदी, 127, 129
वालाक जिला, 79, 91
वासग राणा, 65
विक्रमशी चारण, 116, 118
विक्रमसिंह, वारहठ, 103
विजैपाल, 115
विट्ठल राव, 51
विलियम, इरविन, मिस्टर, 131
शत्रुंजय, 87
शमशेरखां, पालनपुर के दीवान का भाई, 150
शमशेरखां, डीसा का दीवान, 164

शमशेरखाँ, वरगांव का दीवान, 168
शान्ताजी, कूंपोजी का पुत्र, 112
शान्ताजी, केसर का पुत्र, सांथल का, 115, 116, 118
शामचन्द गाधी, 167
शामल वेचर, 24
शामला, 187
शायर, शायरा (गांव), 96
शाहे आलम के रोजे, 22
शाहजी (पालीताना), 94
शिवराम गार्दी, गरदी, 26, 33, 38, 47, 129, 130
शिवसिंह, आनन्दसिंह का पुत्र, 134, 141–148, 151, 203
शिवाजी, 74, 75
शिवाजी का वंशवृक्ष, 12
शिवाजी के पुत्र, 1
शीग्रानी, 59, 60
शीलादित्य, 94
शीलासण गांव, 181
शीशराणा गाव, 150, 157, 161
शुजाअतखाँ, 3, 4
शेल साहिब, 66
शेखडोजी, 59
शेडो अथवा सोढोजी, 58
शेर मियाँ, 56, 57
शेरसिंह, अमरसिंह कूंपावत का पुत्र, 144, 203, 204, 206, 225, 228, 230, 222
श्री रणछोड जी, डाकोर, 26
श्यामलदास, कविराजा, 135
संखलपुर, 102
संखेडा की गढ़ी, 41
संग्राम जी झाला, 64, 65
संग्रामसिंह, महाराणा, 134, 135, 137
संग्रामसिंह, भवानीसिंह का भाई, 149
सचाणा (सचाना), 59
सकतसिंह देवडा, नीमाज, 158
सतारा, 1, 10, 11, 113
सधुवाजी वडवा, 152
सबलसिंह, सूरजमल का पुत्र, चांदनी, 61, 147, 177, 178
सबलसिंह के पुत्र, 177
'सभासद बखर' पुस्तक 45
सम्भाजी, 1
सम्राज पन्त, 6
सयाजी राव (पूर्वनाम गोपालराव), 3 13
सरखेज, 112
सरदार कुंवर वाघेली, पेथापुरी, 158
सरदारसिंह, कण्डोल का ठाकुर, 164
सरदारसिंह, जसवो जी का पुत्र, 170, 171
सरदारसिंह के पुत्र, 171
सरदोई ग्राम, 38
सरबुलन्दखा, 3, 5, 6, 8
सरवैया जाति, 79
सर्व संग्रह (कडी प्रान्त), 102
सलखनपुर, 98, 100
सलख राजा, 99
सलावतखाँ 85
सवाईसिंह चांपावत, 132, 137, 140, 143
सहायक सेना, 49
साणंद, 54, 111
सातलपुर, 97

साथल, 116, 118
सावर, 86
सांवलिया ग्राम, 146
सातोदड बावडी, 97
सादडा, 185, 205
साध्वी, 204
साबरकाठा के ठाकुर, 140
साबरमती, 105, 127, 12
सामलदास कोडिया, 152
सामल बेचर, 31
सामलिया सोढ, 150
सामा जी गढवी, 155
सायला, 58, 68, 69, 88
सायसल जी सत्ताजी, 72
सारंग जी, 94
सालबाई की सन्धि, 16, 18, 21, 27
साहबसिंह भाटी, धोराड का ठाकुर, 159
साहू राजा, 3, 5–7, 73–76
सिद्धपुर, 226–228, 234, 235
सिद्धराज, 65
सिन्धु नदी, 78
सिरेता, 35
सिरोही, 131, 134, 155, 168, 180, 197, 206, 221
सिहोर, 76, 81, 84, 87, 88, 90, 99
सीश्रोली गाव, 177
सीकर, 131
सीसांग चांडली, 97
सी० वी० वैद्य, 52
सुन्दर जी, अधिकारी, 36, 39
सुम्रोजी, गढवी, 155
सुदासणा, 156, 157, 159–162, 167
सुदासणा (दाता) विषयक टिप्पणी, 169
सुलतान, पृथ्वीराज का पुत्र, 61
सुगोली, 132
सुवेर, 196
सुजाजी, भालूसणा का ठाकुर, 162
सूरजमल, चाँदणी का ठाकुर, 118, 145–147, 199, 203, 205–209, 220–227, 231, 232, 234, 235
सूरत, 4, 13, 14, 16, 20–22, 25, 26, 33, 40, 42
सूरत के सिदी (सिन्धी) किलेदार, 78
सूरतसिंह, रघुनाथ का पुत्र, गोरा का जागीरदार, 147, 148
सूरसिंह, 94
सेजकटी, 94
सेना खासखेल शमशेर बहादुर, 13
सेलूकर (शेलूकर) आपाजी, 22, 57
सैंबीलाव ग्राम, 71
सैयद बुलाकी, 66
सैलाना (के ठाकुर), 208
सैसलजी, गरासिया, चूडासमा, 71
सोनगढ, 9
सोनेग, सनेलिया का राय, 150
सोमकुंअर बाई, 61
सोरठ, 75, 81, 85, 90
सोरठ के राव 71
सोलाणू गाव, 170
सौराष्ट्र प्रायद्वीप, 73
स्काटलैण्ड (की हाईलैण्ड शाखा) 104,
स्टेनमोर पहाड़ी 19
स्टोरी ऑफ दी रामायण 52
स्वराज्य कर, 3

हठिया जी, अमरसिंह का पुत्र, 156, 157, 170
हडाद–पोसीना, 195
हडाद गांव, 163, 166
हनुमन्तराव, 26, 27, 29, 112, 113
हमीदखां (निजाम उल्मुल्क का चाचा), 3, 4, 5
हमीरसिंह (सुघर का) *219, 228*
हमीर जी, 65
हमीर झाला, 64
हरखा सवाई, 118
हरपाल कुंअर, 58, 59, 115
हरभूमजी, लीमडी के राजा, 62–64
हरसोल गांव, 151, 178, 229, 230
हरिसिंह, नाहरसिंह का पुत्र, 63–65, 67, 108, 165
हलवद, 58–60, 65–69, 102, 111 114
हाकले, डब्ल्यू॰ बी॰, 44
हाडी माता का मन्दिर, 61
हाथी जी गढिया, 163
हाथी सोढ, 151
हादी कामवरखां, मुहम्मद, 131
हालो जी, 72
हालार, 90, 96
हिंगलाज, 149
हिम्मत बहादुर, 25
हिम्मतसिंह, 230
हिरदे नारायण, 138
हिस्ट्री ऑफ मरहठाज. 1
हरिजी खवास, लखतर के मंत्री, 69
हेनरी पोलचर, लेफ्टिनेन्ट, 39
हेनरी रूम, लेफ्टिनेन्ट, 39
हेमद *84*
हेमूं, अगरजा का, 118
हैक्टर (जहाज), 14
हैदर कुली, नवाब, 157
हैदराबाद सिंध, 173

आधुनिक गुजरात


पाकिस्तान
राजस्थान
बाड़मेर
सिंवाना
पाली
जालोर
भीलवाड़ा
सिरोही
चित्तौड़
उदयपुर
डूंगरपुर
पालनपुर
डीसा
दियोदर
मेहसाना
हिम्मतनगर
बीजापुर
कच्छ का रण
भुज
अहमदाबाद
नवलखी
सुरेन्द्रनगर
गुजरात
जामनगर
राजकोट
भावनगर
जूनागढ़
(सोरठ)
अमरेली
सोमनाथ
दीव
खेड़ा
नदियाद
खंभात
सूरत
दोहद
रतलाम
राजपुर
महाराष्ट्र
अरब सागर



श्री गोपाल नारायण बहुरा का जन्म १६११ ई० में जयपुर के एक प्रतिष्ठित पारीख ब्राह्मण कुल मे हुआ। बचपन से ही साहित्यानुरागी श्री बहुरा ने आगरा विश्वविद्यालय से १६३५ मे संस्कृत मे एम ए. किया और पैतृक जागीर की देख भाल करते रहे। रियासत के जागीरदार होने के कारण आपने तत्कालीन जयपुर राज्य की सेवा की, जहा संयोग से पोथीखाना की जिम्मेदारी आप पर रही। इसी बीच साहित्य की ओर रुझान होने के कारण साहित्य-सेवा भी करते रहे। आपकी साहित्यिक प्रतिभा एव सर्जनात्मक प्रकृति को पूर्ण विकास का अवसर तब मिला जब आपने स्व. मुनि जिन-विजय जी के निर्देशन मे प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान का निर्माण किया। प्राचीन साहित्य को पुनः प्रस्तुत करने का श्रेय तो आपको है ही राजस्थानी परपराओं और लोकसाहित्य के भी आप कोष हैं।

आपकी प्रकाशित कृतियों मे लगभग तीस पुस्तकें एव अनगिनत लेखादि हैं।